संस्कृत - कथा साहित्य एक अध्ययन

(Sanskrit Katha Sahitya Aek Adhyyana)

(इलाहाबाद विश्वविद्यालय की डी. लिट्. उपाधि हेतु प्रस्तुत)
शोध प्रबन्ध

निर्देशक
डॉ० हरिशङ्कर. त्रिपाठी
वरिष्ठ रीडर, संस्कृत विभाग
इलाहाबाद, विश्वविद्यालय
इलाहावाद

शोधकर्ता
डॉ० मोहम्मद शरीफ़
एम० ए०, डी० फिल् (संस्कृत)
इलाहाबाद, विश्वबिद्यालय
इलाहाबाद

संस्कृत विभाग
इलाहाबाद विश्वबिद्यालय इलाहाबाद
१९९३

प्राक्कथन

प्रारम्भ से ही संस्कृत के प्रति मेरी विशेष रूचि रही है यही कारण था कि हाई स्कूल से लेकर के एम0 ए0 तक मेरा ऐच्छिक विषय रहा है । और डी0 फिल0 भी संस्कृत विषय पर किया । उसके उपरान्त डी0 लिट0 विषय पर शोध कार्य करने की जिज्ञासा उत्पन्न हुई इस दिशा में प्रवृत्त होने की प्रेरणा मुझे पूज्यनीय गुरूजनों से प्राप्त हुई ।

प्रस्तुत शोध निबन्ध में संस्कृत कथा साहित्य एक अध्ययन का विवेचन हुआ है । इस शोध प्रबन्ध के निर्देशन का दायित्व डा0 हरिशंकर त्रिपाठी, वरिष्ठ रीडर, संस्कृत विभाग, इलाहाबद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद का रहा है । इस शोध प्रबन्ध के शीर्षक को निर्धारित करने का श्रेय भी उन्ही को है अपने अथक परिश्रम एवं कुशल निर्देशन से वे मुझे निरन्तर प्रोत्साहित करते रहे । अपने अतिव्यस्त जीवन में भी इसका परीक्षण कर तथा उपयोगी मार्ग-दर्शन करके इसे व्यवस्थित रूप में प्रस्तुत करने में सहायता दी , जिसके फलस्वरूप इस शोध कार्य को वर्तमान रूप में प्रस्तुत करने में सक्षम हो सका । यूँ तो पूरे प्रबन्ध में ही उनका प्रभाव व्याप्त है, उनके सराहनीय योगदान के लिए मैं जीवन पर्यन्त कृतग्य रहूँगा । मैं अपने पूज्यपाद गुरूवर प्रो0 सुरेश चन्द्र पाण्डेय, विभागाध्यक्ष, संस्कृत विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद के प्रति भी अत्यन्त आभारी

हूँ क्योंकि उनकी सत्प्रेरणाएं एवं शुभाशीर्वाद से शोध ग्रन्थ कार्य के सम्बद्ध ग्रन्थियों का कुशलतापूर्वक समाधन हो सका ।

इस शोध प्रबन्ध को प्रस्तुत करने में मुझे अनेक ख्यातिलब्धि विद्वानों की कृतियों से जो बहुमूल्य सहयोग मिला है, ऐसे उन सभी ग्रन्थकारों के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करना अपना परम कर्तव्य समझता हूँ ।

मैं अपनी पूज्यनीया सुसंस्कृता स्नेहमयी माता-पिता एवं अपने अग्रजों का, जिनके सत्प्रयत्नों से मेरे जीवन की आधार-शिला रखी गई है एवं सुदृढ़ हुई है, उन्हें बारंबार श्रद्धासुमन अर्पित करता हूँ । बहुबिध सहाय प्रदान करने वाली डा० श्रीमती शाहीन शरीफ जो संप्रति शिवली नेशनल पी० जी० कालेज आजम गढ़ में संस्कृत विभाग में वरिष्ठ प्रवक्ता एवं अध्यक्षा के पद पर प्रतिष्ठित हैं, को इस शोध प्रबन्ध की पूर्ति के लिए अनेकशः धन्यवाद देता हूँ क्योंकि उन्होने घर गृहस्थी के विशाल अनराब जाल से मुझे सर्वथा निश्चिन्त रखा और ग्रन्थसार के लिए सर्वविध सौविध्य प्रदान किया । अपनी पुत्री फरहत फातमा को स्नेह देता हूँ क्योंकि मेरे पढ़ाई के समय भी उसने मुझे सहयोग दिया ।

मो० शरीफ

§ डा० मोहम्मद शरीफ §
एम०ए० डी०फिल०, संस्कृत विभाग,
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद।

विषयानुक्रमणिका

विषयानुक्रमणिका

क्रमसं0	विषय	पृ0 सं0
1.	प्रथम अध्याय	
	संस्कृत कथा साहित्य की उत्पत्ति और विकास	1 - 13
2.	द्वितीय अध्याय	
	वैदिक साहित्य में कथाएं	14 - 88
3.	तृतीय अध्याय	
	ऐतिहासिक कथाओं का अध्ययन	89 - 127
4.	चतुर्थ अध्याय	
	पौराणिक कथाओं का अध्ययन	128 - 178
5.	पंचम अध्याय	
	जातक कथाएं.	179 - 222
6.	षष्ठ अध्याय	
	संस्कृत साहित्य में लोक कथाओं एवं नीतिकथाओं का अध्ययन	223 - 317
	परिशिष्ट :	
	सहायक ग्रन्थो की नामावली	318 - 323.

.....

प्रथम - अध्याय

=============

संस्कृत कथा साहित्य की उत्पत्ति और विकास

प्रथम-अध्याय

संस्कृत कथा साहित्य की उत्पत्ति और विकास

भारतीय कथा साहित्य विश्व कथा साहित्य में सर्वश्रेष्ठ कथा साहित्य का उद्गम श्रोत मानी जाती है। भारतीय साहित्य की विश्व साहित्य के लिए जो देन है उसमें संस्कृत कथा साहित्य का विशेष महत्व है। भारतवर्ष के विविधरंगी वातावरण में विस्मय का स्थान तथा प्रसार बहुत अधिक है। प्राची क्षितिज पर सुनहली छटा छिटकाने वाली तथा प्रभापुंज को बिखेरने वाली उषा का दर्शन जैसा आश्चर्य दर्शक के हृदय में उत्पन्न करता है, वैसा ही विस्मय उत्पन्न करता है नैशनील नभोमण्डल में रजतरश्मियों को बिखेरने वाले तथा नेत्र में शीलतामयी छटा फैलाने वाले शीतरश्मि का उदय। दोनो ही कौतुकावह हैं, विस्मयवर्धक है, मानव की इस कौतुकमयी प्रकृति की चरितार्थता के निमित्त भारतीय साहित्य में एक नवीन परम्परा का उदय हुआ जो कथा के नाम से अभिहित की गई है। सामान्य कौतुकवर्धक कथाओं का उदय प्रत्येक देश के साहित्य में हुआ है। मानव की स्वाभाविक प्रकृति को चरितार्थ करने का यह व्यापक साहित्यिक प्रयास है परन्तु संस्कृत साहित्य के साथ कथा का कुछ विशेष सम्बन्ध है विश्व में कथा की उद्गम भूमि संस्कृत ही है। संस्कृत साहित्य में कथाएं केवल कौतुकमयी प्रवृत्ति को

चरितार्थ करने के लिए नहीं, अपितु धार्मिक शिक्षण के लिए भी प्रयुक्त की गई है । धार्मिक सम्प्रदायों में कथा का उपयोग अपने सिद्धान्तों के प्रचार-प्रसार के लिए किया है। ये सम्प्रदाय अपनी कथा कहानियों के लिए प्रसिद्ध हैं । जिनका उद्देश्य केवल धार्मिक तत्वों का विवरण देना न होकर व्यवहारिक उद्देश्य होना भी तात्पर्यों में नही है । यही से कथाओं ने पश्चिमी तथा पू र्वी देशों की यात्राकर वहाँ के साहित्य में घर कर लिया है इन कथाओं में नाटक या महाकाब्यों की भाँति प्रख्यात पौराणिक अथवा ऐतिहासिक पात्रों तथा कथानकों का उपयोग नही हुआ वरन शुद्ध काल्पनिक जगत का चित्रण किया गया है। उसमें कहीं कुतूहल है, कहीं घटना वैचित्र्य है कहीं हास्य व विनोद है । कहीं गम्भीर उद्देश्य है और कहीं सरस काव्य की मधुर झलक भी है । इस प्रकार कथा एक पृथक विधा है ।

संस्कृत कथा की उत्पत्ति का इतिहास अत्यन्त प्राचीन है वस्तुतः कहानी की उत्पत्ति मानव के विकास से सम्बद्ध है । प्रारम्भ में कहानी का रूप मौखिक रहा है। कहानी का इतिहास मनुष्य के मन एवं मस्तिष्क की कहानी प्रस्तुत करता है । हम इस युग की कल्पना नही कर सकते, अब मानव को आनन्द देने वाली कहानियों का उदय न हुआ हो[1]। कहानियों ने ही सर्वप्रथम मनुष्य के चित्त को संसार के प्रपंच, नित्य के

---

1. वैदिक कहानियाँ , बलदेव उपाध्याय, पृष्ठ-2 ।भूमिका।

क्लेश तथा दुःख से दूर हटकर उसे विशुद्ध आनन्द की उपलब्धि की ओर अग्रसर किया है। सभ्य जातियों की तो बात ही न्यारी है, असभ्यता के पंक में धंसकर जंगली जीवन बिताने वाली जातियां - कहानी कहकर अपना तथा अपने कुटुम्बियों का मनोविनोद किया करती हैं। बलदेव उपाध्याय "कथा" का उदय मानव की कौतुकमयी प्रकृति की चरितार्थता बताते हैं।[1] आदिम मानव ने अपने मनोभावों की अभिव्यक्ति के निमित्त कतिपय स्वानुभूत प्रसंगों का वृत्त-कथन अपने साथियों के समक्ष किया और अनुभव किया कि उन्हे सुनने में काफी लोगों की बड़ी रूचि हैं।

अतः अपने को अभिव्यक्त करने तथा दूसरें की अभिव्यक्ति के प्रति सहृदय होने में कहानी के विचार का इतिहास छुपा हुआ है। जिज्ञासा और आत्माभिव्यक्ति प्रवृत्ति से सम्बद्ध होने के कारण कहानी साहित्य की महत्त्वपूर्ण विधा के रूप में लक्षित की जा सकती है। अपने प्रारम्भिक काल में कथन और श्रवण की रूचि से सम्बन्ध होने के कारण कहानी मनोरंजन और आत्मपरितोष का माध्यम थी, लेकिन कालक्रम में व्यष्टि और समष्टि की आभ्यंतरिक जीवनानुभूतियों एवं वस्तुजगत के प्रमाणिक सत्य को शब्द देने की गम्भीर और

---

1. संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृष्ठ 8

मौलिक दायित्व का उसे निर्वाह करना पड़ा । नीति और उपदेश सुधार और आत्मोन्वेषण की सीख देने तथा मनोरंजन करने के क्रम में युग-सत्य की भी एकांकी अभिव्यक्ति का उसे माध्यम बनना पड़ा ।[1] प्रारम्भ में सम्भवतः कथा का उद्देश्य केवल कथा ही रहा होगा । कालान्तर में कथा कहानियों के अभिप्राय से हटकर ज्ञान के क्षेत्र से संबद्ध होने लगी ।

भारत मेंकथाएं मनुष्य को कौतुकमयी प्रवृत्ति को चरितार्थ करने के अतिरिक्त धार्मिक शिक्षण के लिए भी प्रयुक्त की जाती थी । यही कारण है कि भारतीय कथा साहित्य का विश्व साहित्य में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है । कुछ अंशों में भारतीय कथा साहित्य विश्व कथा साहित्य का जनक कहा जा सकता है । कथा के भ्रमण का प्रारम्भ भारतभूमि से माना जाता है, जहाँ से वह समस्त सभ्य देशों के साहित्य में व्याप्त हो गई । इन साहित्यिक साधन की उपयोगिता सर्व प्रथम भारत के ही संसार के समक्ष प्रदर्शित की है । अतः मानव के चित्त विनोद का प्राथमिक साधन होने से कहानियों की महत्ता किसी भी देश या युग में कम नही है । प्रारम्भ में भारत से विदेशों

---

1. कथा एकादशी, सम्पादक- विजयपाल सिंह, पृ0 9

में कथाओं का परिभ्रमण मौलिक रूप से यात्रियों एवं व्यापारियों के द्वारा हुआ, किन्तु बाद में विभिन्न कथा-ग्रन्थों के विभिन्न-भाषीय अनुवादों द्वारा इनका प्रचार एवं प्रसार विदेशों में हुआ । लिखित कथा- ग्रन्थों से पूर्व भी लोगों के मनोरंजनार्थ कथाओं का प्रचलन हो चुका था । इसके अतिरिक्त कुछ पशुकथाएं धार्मिक उपदेश तथा व्यवहार- ज्ञान के उद्देश्य से लिखी गई ।

अतः कथा का कोरे मनोरंजन से हटकर ज्ञान के क्षेत्र से संबद्ध होना कथा लेखन के इतिहास में एक महत्वपूर्ण सोपान था । साहित्यिक विधा के रूप में कथा का प्रचलन कब से प्रारम्भ हुआ, यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता । कथा साहित्य के अन्तर्गत इन कथाओं का समावेश किया गया है, उन्हे चार भागों में विभक्त कर सकते हैं । अद्भुत कथा, लोक कथा, कल्पित कथा, और पशु कथा ।

संस्कृत कथा साहित्य को मुख्यतः दो भागों में बांटा जा सकता है - निहित कथा, जिसमें उपदेशात्मक पशुकथाएं सन्निविष्ट हैं । और लोक कथा इसके अन्तर्गत अद्भुत कथा और कल्पित कथा भी आ जाती है । ऋग्वेद में संवाद सूक्तों के रूप में कथा के मूल तत्व सुप्तावस्था में अवश्य पाये जाते हैं किन्तु उन्हें कथा की संज्ञा नही

दी जा सकती है । ऋग्वेद में मानवेतर जीवों को मानव का प्रतिनिधि बनाया गया है और उनसे वैयक्तिक सम्पर्क स्थापित किया गया है । ऋग्वेद के सा 7-103 सूक्त में वर्षाकालीन मेढकों की ध्वनि की तुलना ब्राह्मणों के वेद पाठ से की गई है । इतना ही नही इन्हें वर्ष भर तपस्या करने वाली व्रती ब्राह्मण कहा गया है ।[1] ऋग्वेद ॥10-108॥ में देवशुनी सरमा और पणियों का संवाद प्रस्तुत किया गया है । इसमें सरमा ॥ कुतिया॥ पणियों ॥ कृपणों॥ को उपदेश देती हैं कि वे धन दान दें । पणि सरमा को मित्र और बहिन कहकर पुकारती हैं । इससे जीव-जन्तुओं के साथ आत्मीयता का बीज प्रकट होता है । यही कथा साहित्य का बीज है । यास्क ने निरूक्त में "इत्येतिहासका:", कहकर इन्द्र-वृत्त-युद्ध आदि को कथा का रूप दिया है। वृहदेवता में और शात्यायन कृत सर्वानुक्रमणी की षड्गुरू शिष्य कृत वेदार्थ दीपका टीका में इन कथाओं का विस्तृत रूप प्राप्त होता है । पन्द्रहवी शताब्दी ईस्वी के या द्विवेद ने नीतिमंजरी में वैदिक आख्यानों को

---

1. संवत्सरं शशयाना ब्राह्मणा व्रतचारिण:
   वाचं पर्जन्यजिन्वितां प्रमण्डूका अवादिषु ।। ऋ0 7-103-1

नीतिकथा के रूप में प्रस्तुत किया है इसमें उपदेशात्मक अंश पंचतंत्र आदि की भांति पद्य में हैं और कथा गद्य में दी गई है । द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया: ॥ऋ01-164-20॥ में प्रकृति को वृक्ष और जीवात्मा तथा परमात्मा को उस वृक्ष पर बैठे हुए दो पक्षी बताया है ।

ब्राहमण ग्रन्थों में ये कथाएं अपने विस्तृत रूप में प्राप्त होती हैं । ऐतरेय ब्राहमण ॥7-13॥ में कथा के साथ उपदेशात्मक पद्यों का भी समावेश है । उपनिषदों में जीव-जन्तु कथाएं और विकसित रूप में है । छान्दोग्योपनिषद[1] में एक व्यंग्य कथा में भोजन के लिए कुत्ते अपना एक नेता चुनते हैं उसी में दो हंसों के वार्तालाप से रैक्व का ध्यान आकृष्ट होता है ।[2] छन्दोग्य में ही ज्वाला के पुत्र सत्यकाम को बैल, हंस और मृद्गु ॥एक जलचर पक्षी॥ ब्रहम विद्या का उपदेश देते हैं ।[3] महाभारत में पशु कथाओं और विकसित रूप में मिलती हैं । शान्तिपर्व तथा अन्य पर्वों में पंचतंत्र के लिए उपयोगी प्रचुर

---

1. छन्दोग्य 1-12-2
2. वही 4-1
3. वही 4-5, 7, 8

सामग्री मिलती है । इसमें सोने के अण्डे देने वाली चिड़िया की कथा, धार्मिक बिल्ली की कथा चतुरशृगाल की कथाएं हैं । रामायण में नीतिकथाओं का का संक्षिप्त उल्लेख मिलता है । तृतीय शताब्दी ईशापूर्व भरहुत स्तूप पर पशु कथाओं का नाम उत्कीर्ण मिलता है । पतंजलि ॥150ई0पू0॥ ने कथा सूचक लोकोक्तियों " अजाकृपाणीयम" काकोकूलीयम" जैसी नीति कथाओं का उल्लेख किया है । बौद्धों की जातक कथाएं 380 ई0पू0 के लगभग विद्यमान थी । इनमें बुद्ध के उपदेशों का संकलन गाथाओं के रूप में तथा उनका स्पष्टीकरण कथाओं के रूप में हुआ है। इनमें बोधित्व के वानर, मृगादि के रूप में जन्म से सम्बद्ध कथाएं हैं । जिनका पंचतंत्र की कथाओं से अत्यन्त साम्य है । बौद्ध जातक ग्रन्थों के अनुकरण पर जैनों ने जातक ग्रन्थ लिखे हैं । महाभारत के उपाख्यानों, उपनिषदों की रूपक कथाओं तथा जातक कथाओं की परम्परा का विकसित रूप पुराणों में मिलता है ।

पंचतंत्र में कल्पित कथाओं का विस्तार मिलता है किन्तु उसमें कलात्मक एवं साहित्यिक तत्वों का सर्वथा अभाव है । पंचतंत्र के समानान्तर कोई रचना कभी रही होगी । इसकी कल्पना नही की जा सकती । इसकी अधिकांश कथाएं स्वतंत्र प्रकृति की हैं । संस्कृत साहित्य में धार्मिक वांग्मय के बाहर केवल लौकिक प्रयोजन से

रचित कथा साहित्य के स्वतंत्र ग्रन्थों की रचना कब से प्रारम्भ हुई होगी, यह निश्चय पूर्वक नही कहा जा सकता । केवल इतना ही कहा जा सकता है कि ईसा की पाँचवी शताब्दी के बहुत पहले से ही कथा साहित्य का प्रणयन प्रारम्भ हो गया होगा । तब से लेकर भारतीय इतिहास के मध्यकाल के प्रायः अन्त तक संस्कृत मे कथा साहित्य का सृजन होता रहा ।

इस दीर्घकालिक परम्परा में अनेक कथा-ग्रन्थों का प्रणयन हुआ । लौकिक कथा ग्रन्थों में गुणाढ्य -रचित वृहत्कथा प्रमुख है जो मूल रूप में आज उपलब्ध नही है किन्तु इसके क्षेमेन्द्र रचित वृहत्कथा मंजरी सोमदेव रचित "कथा सरित्सागर- दो संस्करण उपलब्ध होते है इनके अतिरिक्त स्वतंत्र कथा ग्रन्थों में पंचतंत्र, हितोपदेश, सिंहासनद्वात्रिंशिका, शुकसप्ततिकथा तथा वैतालपंचविंशतिः इत्यादि प्रमुख है ।

विक्रम चरित्र से सम्बद्ध - ||| अनन्त रचित वीरचरित

|2| शिवदास रचित शालिवाहनचरित

|3| अज्ञात लेखक कृत विक्रमोदय,

मेरूतुंग कृत प्रबन्ध चिन्तामणि, राजशेखर कृत प्रबन्धकोश, क्षेमेन्द्र रचित त्रिषष्टिशलकापुरुषचरित, सिद्धर्षि रचित उपमितिभावप्रपंच कथा, प्रभाचन्द्र

कृत प्रभावाकचरित, सोमचन्द्र रचित कथामहोदधि ॥ जैन कथाएं॥ जगन्नाथमित्र कृत कथा प्रकाश, कथाकोष, राजवल्लभ कृत चित्रसेन - पद्मावती कथा, समयसुन्दर कृत कालिकाचार्या कथा, कविकुंजर, कृत राजशेखरचरित, विद्यापति रचित पुरुषपरीक्षा, आनन्द रचित माधवानल कथा, अज्ञात लेखक कृत मुक्तचरित, श्रीवर - रचित कथा कौतुक नारायण बालकृष्ण कृत ईस्वनीतिकथा, कल्यानमल्ल कृत सुलेमतचरित नारायण शास्त्री रचित कथा लतामंजरी, स्वामी शास्त्री कृत कथावली कथाकुसुम मंजरी शिवदास कृत कथार्णव, कृष्णराव कृत कथा पंचक, पाण्डुरंग कृत विजयपुर कथा इत्यादि । किसी साहित्य के मध्य स्पष्ट विभाजन रेखा नही अंकित की जा सकती, यह तथ्य संस्कृत साहित्य के पक्ष में इतना ही सत्य है जितना किसी भी अन्य साहित्य के सम्बन्ध में ।

कथा और आख्यायिका का भेद ॥ तथा इनके अर्थबोध की उचित संज्ञा का निर्धारण आज भी नही हो पाया है । यद्यपि कथा के वंशजों की जातियों के विभाजन किए गये हैं किन्तु उनमें भी वे सफल नही हुए है ।[1]

---

1. एस0 के0 डी0 बुलेटिन आफ दी स्कूल आफ ओरियन्टल स्टडीज, लन्दन जिल्द 1, पृष्ठ 507

एस0 के0 डे के अनुसार कथा और आख्यायिका का भेद-निरूपण एक अत्यन्त कठिन कार्य है ।[1] इनका जितना भी भेद- निरूपण किया गया है, वह अपूर्ण, अव्यापक और संकुचित है । प्रायः " आख्यायिका" का प्रयोग वर्णनात्मक कथा के अर्थ में "कथा का प्रयोग वार्तालाप, कहानी आदि के अर्थ में किया जाता है फिर भी इनके मध्य विभाजन - रेखा अंकित करना सुगम नहीं है ।[2] संस्कृत में आख्यायिका अंग्रेजी के "एनेक- डोट" को कहते हैं, जिसे हिन्दी में लघु कथा की संज्ञा से समिहित किया जाता है । कथा को अंग्रेजी में "टेल" कहते हैं जिसका मुल ध्येय मुख्यतः मनोरंजन होता है ।[3] इन दोनो का विभाजन विभिन्न काव्य- शास्त्री ग्रन्थों में भी किया गया है किन्तु इस विभेद पर विद्वानों में मतैक्य नहीं है ।[4] पतंजलि । पाणिनी पर 4, 3, 87 वृत। ।। आख्या- यिका में उन ग्रन्थों के उदाहरण प्राप्य हैं जो उपन्यास हैं जैसे- सुमनोचरा, मैमरथी ।

वाण अपने ग्रन्थ कादम्बरी को कथा और हर्षचरित को आ- ख्यायिका कहते हैं, पंचतंत्र में छोटी- छोटी कहानियों को कथा कहा

---

1. कीथ, हिस्ट्री आफ संस्कृत लिटरेचर, पृ0 245.
2. हिस्ट्री आफ संस्कृत लिटरेचर, पृ0 204
3. काव्यदर्श, 1, 23-28

   ध्वनिआलोक, 3-7
4. विन्टरनित्स, पृ0 306

गया है । कथासरित्सागर में भी कहानियों को कथा ही कहा गया है, परन्तु आख्यायिका शब्द से भी अभिहित किया गया है । क्षेमेन्द्र के अनुसार लम्बी कहानी को कथा और लघु को आख्यायिका कहते हैं । संस्कृत साहित्य में उपलब्ध कथाओं का विशेष महत्व है तथा अधिकांश पाश्चात्य विद्वानों ने संस्कृत साहित्य की अन्य विधाओं में कथाओं पर विशेष रूप से ध्यान आकर्षित किया है ।

संस्कृत के कथा साहित्य का भण्डार अत्यन्त विशाल है जिनमें अनेक आश्चर्यजनक घटनाएं और कथाएं निकलती जाती है ।[1] संस्कृत कथा के अन्तर्गत कल्पित कथायें, ऐतिहासिक कथायें, पौराणिक कथाएं नीति कथायें, तथा उपाख्यान आदि अन्तर्भूत हैं । विन्टरनित्स महोदय ने भारतीय साहित्य की वर्णनात्मक विधा को निम्नलिखित भागों में विभक्त किया है ।

॥1॥ जैन कथा :- वे कथाएं जिनका ध्येय धार्मिक प्रचार एवं उत्थान है, जिनमें जातक तथा अन्य बौद्ध एवं जैन कथा-ग्रन्थ सम्मिलित हैं ।

॥2॥ नीति कथा :- ऐसी कथाएं जो नैतिक अथवा धार्मिक उद्देश्य से अनुप्राणित हैं । ये मौखिक रूप से प्रचलित थी । इनका प्रचार केवल संस्कृत में ही नही वरन् सभी लोकप्रिय भाषाओं में हैं ।

॥3॥ मनोरंजात्मक कथा:- वे कथाएं जिनका मुख्य उद्देश्य मनोरंजन था । पहले ऐसी कथायें प्राकृतिक में म लिखी जाती थी, कालान्तर में संस्कृत में लिखी जाने लगीं । जैसे- बृहत्कथा, वैतालपंचविंशतिः,

---

1. विण्टरनित्स, पृ0 302

वृहत्कथा मंजरी तथा कथासरित्सागर आदि ।

अतः इस अध्याय में संस्कृत कथा साहित्य के विवेचनार्थ ऋग्वेद के संवाद सूक्तों, ब्राह्मणगत कथाओं, उपनिषदों के आख्यानों महाभारत के उपाख्यानों, पौराणिक उपाख्यानों, जातक कथाओं के लेकर स्वतंत्र रचनाओं के रूप में उपलब्ध कथा ग्रन्थों, जैसे- पंचतंत्र, हितोपदेश, कथा सरित्सागर, वैतालपंचविंशतिः, शुकसप्ततिः, सिंहासनद्वात्रिंशिका को अध्ययन का विषय बनाया गया है । संस्कृत कथा साहित्य अत्यन्त विशाल एवं समृद्धि है जिसमें विश्व के समस्त देशों के साहित्य को प्रभावित किया है । साहित्यिक विधा के रूप में कथा का प्रचलन कब से प्रारम्भ हुआ, यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता, किन्तु कथा साहित्य का उद्गम वैदिक साहित्य से माना जाता है ।

xxxxxxxxxxx
xxxxxxxxx

द्वितीय - अध्याय

वैदिक साहित्य में कथायें

द्वितीय - अध्याय

वैदिक साहित्य में कथायें

§क§ ऋग्वेद के आख्यान :-

ऋग्वेद का अधिकांश भाग देवों की स्थिति एवं प्रार्थना रूप है, किन्तु फिर भी उसमें विविध आख्यानों का भी सन्निवेश हुआ है । ऋग्वेद के ये आख्यान अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। ऋग्वेद के इस आख्यान-साहित्य से ही उत्तरकालीन नाटकों, वीरगाथात्मक काव्यों, इतिहासों, पुराणों तथा अन्य कथा- साहित्यों का उद्गम प्रतीत होता है । ऋग्वेद में बीजरूप में उपलब्ध बातें परवर्ती ब्राह्मण आदि ग्रन्थों में पुष्पित एवं पल्लवित दृष्टिगोचर होती है। इन्हीं का अपेक्षाकृत विस्तार अधिक महाभारत एवं पुराणों में परिलक्षित होता है। इस दृष्टि से आख्यान - तत्व ऋग्वेद में बीजरूप से स्थित एक महत्वपूर्ण विषय है । ऋग्वेद के आख्यान मूलतः काल्पनिक § अर्थवाद§ रचनायें हैं । इनमें प्रायः यह प्रयत्न किया गया है कि किसी गूढ़ दार्शनिक, आध्यात्मिक या नैतिक विषय को, उसके प्रति अरूचि को दूर करने के लिए, आलंकारिक आख्यान के रूप में प्रस्तुत किया जाये । यह प्राचीन भारतीय परम्परा रही है कि किसी गूढ़ या सूक्ष्म विषय को समझाने के लिए किसी कथा या उदाहरण का आश्रय लिया गया है ।

महाभारत और भागवतपुराण में भी इस तथ्य की ओर स्पष्ट निर्देश किया गया है कि वेद के गूढ़ार्थ को सरल और रोचक बनाने के लिए ये आख्यान । इतिहास पुराण । बनाये गये हैं । इनके द्वारा वेद का रहस्य समझना चाहिए ।[1]

।क। इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत ।

।ख। भारतव्यपदेशेन ह्याम्नायार्थश्च दर्शितः ।। [1]

।भागवत पुराण 1-4-28।

अतः ऋग्वेद में उपलब्ध आख्यान मनोवैज्ञानिक दृष्टि से ही महत्त्वपूर्ण हैं क्योंकि इनका मुख्य प्रयोजन किसी गूढ़ार्थ को स्पष्ट करके उसे सरल एवं सुग्राह्य बनाना है । इन आख्यानों द्वारा किसी शिक्षा अथवा उद्देश्य का कथन भी अभीष्ट रहता है ।

मीमांसकों का कथन है कि केवल आख्यान के प्रदर्शनार्थ इस साहित्य का सृजन नहीं हुआ है । अपितु यह आख्यान साहित्य - प्ररोचना मात्र है ।[2] इन आख्यानों को इनकी प्रकृति एवं वर्णन शैली के आधार पर चार वर्गों में रख सकते हैं - संवादात्मक, वर्णनात्मक दानस्तुतिपरक तथा देवों के विविध कार्यों से संबद्ध ।[3] विण्टरनित्स

---

1. कपिलदेव द्विवेदी आचार्य, संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास, पृ0 40-41
2. डा0 राजकिशोर सिंह, वैदिक साहित्य का इतिहास, पृ0 57.
3. डा0 हरिशंकर त्रिपाठी "शतपथ कथा एतरेय ब्राह्मण की कथाओं का आलोचनात्मक अध्ययन ।शोध ग्रन्थ । पृ0 23. संस्कृत विभाग इ0वि0इ0

के अनुसार इन संवाद सूक्तों की संख्या लगभग 20 है । ओल्डेन वर्ग ने इन्हें आख्यान की संज्ञा दी है और उन प्राचीन आख्यानों को अव-शेष कहा है जो प्रारम्भ में गद्य-पद्यात्मक थे । इनके पद्यबद्ध कथोपकथन ही सुरक्षित रह सके और उनका गद्य भाग सर्वथा विस्मृत एवं विलुप्त हो गया । बहुत थोड़ी कथायें ही ब्राह्मणों में, महाकाव्य साहित्य में अथवा टीकाओं में अवशिष्ट हैं । डा० श्रोदर, डा० हर्टेल तथा डा० सिल्वा लेवी ने इन संवादों को नाटक का अवशिष्ट अंग कहा है । जो कुछ भी हो, प्रतीत यही होता है कि ये सूक्त अन्तत: आख्यानात्मक हैं तथा अंशत: नाटकात्मक पूर्णत: एक वस्तु नहीं है

ऋग्वेद का पुरूरवस उर्वशी का संवाद सूक्त माना गया है । 18 पद्यों में निबद्ध या आख्यान एक मर्त्य और अप्सरा के मध्य संवाद रूप में है - पुरुरवा-उर्वसी का चार वर्ष प्रणय संबन्ध रहता है । उनका आयु नामक पुत्र भी होता है अंत में उर्वसी पुरुरवा को छोड़कर चली जाती है । पुरुरवा शोकाविभूत हो आत्महत्या के लिए उद्यत हो जाता है । उर्वशी उसे समझाती है और आत्महत्या करने से रोकती है । उसका कथन है कि स्त्रियों का प्रेम चिरस्थायी नहीं होता और वे केवल धनोलुप होती है । [1]

---

1. ऋग्वेद 10/95

शतपथ ब्राहमण में यही कथा और भी विस्तृत रूप में मिलती है । [1] इस संवाद सूक्त का गूढार्थ यह निकाला गया है कि पुरूरवा सूर्य है और उर्वशी उषा उसकी प्रेयसी है । सूर्य के सामने आते ही उषा लुप्त हो जाती है । प्रो० गोल्डनर, राठ, गोल्डस्टुकर, म्यूर, आदि इसी मत के समर्थक हैं । ग्रिफिथ [2] ने प्रो० मैक्समूलर और गोल्ड-स्टुकर का इस विषय में यह मत उद्धृत किया है । यजुर्वेद में सूर्य का गान्धर्व और उसकी किरणों को अप्सरा कहा गया है । डा० कपिल देव द्विवेदी [3] के अनुसार इस कथानक की संगति निम्नलिखित रूप से अधिक उपयुक्त होगी । पुरूरवा । मेघ, पुरू-अधिक, रव-शब्दकर्ता। को प्रेमिका उर्वशी । विद्युत, उरू - अत्यधिक, अशी-व्याप्त। नामक अप्सरा । जलसंचारिणी। है । [4] दोनो का आयु ।अन्न, दीर्घायुत्व, का दाता । [5] नामक पुत्र होता है । वर्षाकाल के बाद उर्वशी ।विद्युत । पुरूरवा ।मेघ। को छोड़कर चली जाती है ।।लुप्त हो जाती है ।

यजुर्वेद में विद्युत का संगत उर्वशी से बताया गया है । [6] इस

---

1. पुरूरवो मा मृथा मा प्रपप्तो मा त्वा वृकासो अशिवास उक्षन्।
   न वै स्त्रैणानि सख्यानि सन्ति, सालावृकाणां हृदयान्येता ।।
   ।ऋ० 10-95-15 ।

2. शतपथ ब्राहमण ।।•5•।

3. ग्रिफिथ ऋग्वेद - 10-95 पर नोट

4. सूर्योगन्धर्वस्तस्य मरीचयोऽप्सरसः । । यजुर्वेद 18-39 ।

5. संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास, पृ० 43-44

6. अप्सरा अप्सारिणी । अपि वाऽप्स इतिरूपनाम। निरूक्त 5/13।

कथा का अभिप्राय यह है कि मेघ और विद्युत के संबन्ध से वर्षा होती है और उससे आयुवर्धक अन्न उत्पन्न होता है । इसी कारण यह अलंकारिक वर्णन कहा जाता है । ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के दशवें मंत्र में यम-यमी का रोचक संवाद मिलता है । यम और यमी भाई-बहन हैं यमी अपने भाई के साथ विवाह करने का आग्रह करती है जिसके वंश परम्परा बनी रहे । किन्तु यम देव नियमों की ओर संकेत करके उसका आग्रह अस्वीकार कर देता है । तथा उसे किसी अन्य से प्रेम करने का संकेत करता है ।[1] यम यमी संवाद की नाटकीय शैली अत्यन्त रमणीय है ।

यद्यपि आख्यान का अन्त अत्यन्त स्पष्ट है । यम को दिन और यमी को रात्रि माना गया है । अर्थात दोनो समय के नियामत होने के कारण भाई बहन हैं । ऊषा और संध्या के व्यवधान के कारण ये कभी नही मिल सकते । इसके द्वारा शिक्षा दी गई है कि भाई-बहन का वैवाहिक संबन्ध वर्जित है । सोम- सूर्या सूक्त का परिगणन भी ऋग्वेद[2] के आख्यान काव्य के अन्तर्गत किया जाता है । सूक्त का विषय सूर्य की पुत्री सूर्या ॥ऊषा॥ का सोम ॥चन्द्रमा॥ के साथ विवाह है । इसमें 47 ऋचाए हैं ।

इस संवाद सूक्त में निहित मंत्रों द्वारा वैवाहित रीति - रिवाजों का वर्णन है ।[3] इस सूक्त के द्वारा गृहस्थोचित शिक्षा के साथ-

---

1. सरमा-पणि संवाद ॥10-108॥
2. श्यावश्व सूक्त ॥5-61॥, 3. विश्वामित्र नदी संवाद॥3-33॥

में क्या द्वन्द्व होता है और अन्त में विजय किसकी होती है इसका चित्रण अत्यन्त रोचक है । द्यूत का व्यसन किस प्रकार गृहशान्ति को भंग कर देता है, यह एक करुण कहानी है । जुआरी जुए के कारण अपनी सती पत्नी का भी परित्याग कर देता है उसकी दशा अत्यन्त सोचनीय हो जाती है । वह द्यूत न खेलने का संकल्प करता है, किन्तु पासों की ध्वनि उसका संकल्प भंग कर देती है उसकी पत्नी, माता-पिता सब उससे घृणा करते हैं । वह स्वयं ऋण से आक्रान्त रहता है । रात्रि में दूसरे के घर चोरी करने जाता है और वहाँ की सुख-शान्ति देखकर अपने लिए संताप करता है । अंत में वह अत्यन्त परितप्त होकर द्यूत न खेलने एवं कृषि करने की सलाह देता है ।

अतः इस नैतिक आख्यान से जुए से हानि एवं कृषि से लाभ की शिक्षा दी गयी है । इस संवादात्मक आख्यानों के अतिरिक्त वर्णनात्मक तथा आत्मकथात्मक कथाओं की संख्या 23 है । वस्तुतः वर्णन कथात्मक शैली में हुआ है तथा ये ही ब्राह्मणों में उपलब्ध अनेक कथाओं की मूलाधार है । अतः इनका परिगणन भी कथा के अन्तर्गत किया जा सकता है । इनमें जुआरी की कथा आत्मकथात्मक शैली का उदाहरण है । गृत्समद और नचिकेता की कथाएं वर्णनात्मक कथा संवादात्मक के बीच की है । कथाओं की तालिका निम्न है :-

1. वशिष्ठ विश्वामित्र 53, 7/33

2. श्यावाश्व आत्रेय 5/22

3. कक्षीवत और स्वनय 1/125

4. दीर्घतमस 1/148

5. गृत्समद 2/12

6. सोमावतरण 3/43

7. त्रयरूण और वृष्णान

8. अग्निजन्य 5/11

9. सप्तग्नि और वद्रिवती 5/78

10. ऋजिस्वन और अतियाज 6/53

11 सरस्वती और वद्धश्व

12. वृहस्पति जन्म 6/71

13. सुदास 7/18, 33, 83

14. नचिकेतस् 10 / 135

15. सृष्टियुत्पत्ति 10/129

16. हिरण्यगर्भोत्पत्ति 10/121

17. देवापि और शान्तनु 10/98

18. पुरूषोत्पत्ति 10/90

19. सूर्या विवाह 10/85

20. प्रजापति उषस् 10/61/5-7

21. असमाति और पुरोहित 10/57-60

22. नहुष 7/95

23. जुआरी 10/34

ऋग्वेद में इन विस्तृत कथानकों के अतिरिक्त राजाओं से सम्बद्ध दानस्तुतियां भी मिलती है। जिनकी संख्या सर्वानुक्रमणी के अनुसार 22 है।"

चतुर्थ कोटि की कथाएं देवों के व्यक्तिगत कार्यों से संबन्धित हैं इनका सूक्ष्मोल्लेख मात्र मिलता है जैसे- विष्णु का त्रेधा- विक्रमण, वृत्र वध,[1] इन्द्र का कुशिक की गाधि के रूप में जन्म,[2] असुरपुर का भेदन, शुष्ण का बध,[3] कुत्स की रक्षा तथा दस्यु की सहायता[4] इत्यादि। अतः ऋग्वेद में उपलब्ध आख्यान अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं क्योंकि इन्हे ही परवर्ती कथाओं का बीजरूप माना जाता है। ऋग्वेद में

---

1. 1/32
2. ऋग्वेद 1/10/11
3. ऋग्वेद 1/11/7
4. ऋग्वेद 1/33/14/-15

प्रार्थनाओं और स्तुतियों के मध्य अनेक आख्यानों का भी समावेश हुआ है । इनका महत्व न केवल काव्य - सौन्दर्य अथवा साहित्यिक दृष्टि से है अपितु उनका विषय ऐहिक तथा आमुष्मिक दोनो ही है । यदि इनका गूढार्थ समझा जाय तो प्रत्येक आख्यान कतिपय सार गर्भित अर्थों से समन्वित प्रतीत होता है ।

|ई| ब्राहमण ग्रन्थों में उपलब्ध कथाएं :-

ब्राहमण साहित्य अति विस्तृत एवं पूर्णतः समृद्ध साहित्य है । "ब्राहमण शब्द का तात्पर्य है- यदि यज्ञ विज्ञान के संदिग्ध स्थलों की किसी प्रामाणिक आचार्य द्वारा व्याख्या [1]। एक अन्य व्याख्या के अनुसार "ब्राहमण" शब्द ब्रहम के व्याख्यापरक ग्रन्थों का नाम है । ब्रहम शब्द स्वयं अनेकार्थ है, जिसमें एक अर्थ है - मन्त्र, वेद में निर्दिष्ट मंत्र ।[2] मुख्यतः इस ब्राहमण साहित्य में यज्ञ विधियों का विस्तृत विवेचन है । वस्तुतः ब्राहमण साहित्य सर्वांग-सम्पन्न है। इसमे न केवल उत्कृष्ट धार्मिक विचार और आध्यात्मिक विकास ही उपलब्ध होता है। अपितु उत्कृष्ट कथा साहित्य भी प्राप्त होता है ।

---

1. डा० शान्ता शर्मा, ब्राहमण साहित्य में उपलब्ध सामाजिक एवं सांस्कृतिक तथ्यों का समीक्षात्मक अध्ययन |शोधप्रबन्ध|, पृ० 38

2. शतपथ - 7, 1, 1, 5 "ब्रहम वैमन्त्र"

चारों वेदों में सम्बद्ध उपलब्ध ब्राहमणों की संख्या अनेक है इनमें 15 ब्राहमण तो प्रकाश में आ गये है और 23 अन्य अनुपलब्ध ब्राहमणों को यत्र-तत्र नामोल्लेख मात्र मिलता है । उपलब्ध ब्राहमण निम्न हैं :- §1§ ऐतरेय, §2§ कौषीतकि, §3§ तैतरीय, §4§ शतपथ, §5§ ताण्ड्य, या पंचविंश, §6§ षडविंश, §7§ साम विधान, §8§ आर्षेय, §9§ धैवत, §10§ छान्दोग्य, §11§ संहितोपनिषद, §12§, वंश, §13§ जैमिनीय , §14§ गोपथ, §15§ जैमिनीयोपनिषद ।

वैदिक साहित्य में ब्राहमण" मुख्य रूप से कर्मकाण्ड परक ग्रन्थ है । यज्ञविधि, जो अत्यन्त जटिल एवं दुरूह है, का विवेचन ही इनका प्रमुख प्रतिपाद्य है । यज्ञ प्रक्रिया का शुद्ध अनुष्ठान नितान्त अनिवार्य था क्योंकि स्वल्प त्रुटि भी प्राणघातक हो सकती थी । लेखन एवं मुद्रण - कला का पर्याप्त विकास न होने के कारण यह कार्य और भी कठिन हो गया था। अतः इतने महत्वपूर्ण और क्लिष्ट विषय के विवेचन एवं उसे बोधगम्य बनाने के लिए तद्युगीन विद्वानों को आख्यानों का आश्रय लेना पड़ा । किसी रहस्यात्मक अथवा जटिल विषय के सरलीकरण के लिए कथाओं का आश्रय लेना अति-पुरातन पद्धति है । वस्तुतः पुराकथाशास्त्र का उद्गम भी प्रकृति की विभिन्न शक्तियों और गंभीर घटनाओं की व्याख्या का ही प्रयास है । आकाशीय ग्रह नक्षत्रों की गतिविधि, झंझावत और बाह्य संसार

की उत्पत्ति तथा रचना विधान संबन्धी विचारों इत्यादि द्वारा प्रस्तुत बौद्धिक कठिनाइयों का उत्तर पुराकथाओं में आख्यानों अथवा कथाओं के रूप में व्यक्त होता है ।[1]

ब्राहमण साहित्य में भी यत्र-तत्र अनेक लघु एवं बृहद् आख्यान उपलब्ध होते हैं शतपथ-ब्राहमण में कथा के अर्थ में "आख्यान" शब्द का प्रयोग हुआ है । कथा कहने वालों को "आख्यानविद्"[2] कहते हैं । ये आख्यानविद् बहुधा वेदोक्त संवादात्मक कथाएं जैसे- उर्वशी पुरूखा की कथा की कथा यम-यमी संवाद , सूर्या सूक्त आदि प्रमुख आख्यान सुनाते थे । कालान्तर में यह कार्य सूत और मागध लोग करने लगे । मानव मन की यह सहज प्रवृत्ति है कि क्लिष्ट एवं दुरूह कार्यों से उसका मन शीघ्र ही विरक्त हो जाता है । एवं उस कार्य की ओर प्रवृत्त होने का उत्साह भी शिथिल हो जाता है । इसी मनोवैज्ञानिक तथ्य दृष्ट में रखते हुए वैदिक कार्यों में जीवन की वास्तविकताओं एवं क्लिष्टताओं तथा यज्ञों के जटिलता से विरक्त मन को सरस बनाने के लिए आख्यानों का सृजन किया । यही कारण है कि ब्राहमण साहित्य में प्रत्येक महत्वपूर्ण एवं क्लिष्ट विषय को बोधगम्य बनाने के लिए

---

1. ए०ए० मैक्डोनल वैदिक माइथोलोजी, अनु०- रामकुमार राय प्रकाशक - चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 1961

2. ऐतरेय 3/25

आख्यानों का सृजन किया । यही कारण है कि ब्राहमण साहित्य में प्रत्येक महत्वपूर्ण एवं क्लिष्ट विषय को बोधगम्य बनाने के लिए लघु आख्यानों का प्रयोग हुआ है ।

ब्राहमण साहित्य में इतस्ततः विकीर्ण ये आख्यान उसके शुष्क एवं नीरस विषय को सरस एवं रोचक बना देते हैं तथा पाठक के लिए ग्रीष्मकालीन आतप में इधर-उधर बिखरे मेघखण्डों के समान सहायक सिद्ध होते हैं ब्राहमण साहित्य में यह संकेत भी प्राप्त होता है कि अध्यापन के मध्य गुरुजन तथा कथाओं का उपयोग करते थे, यह पाठ को रोचक बनाने के लिए ही किया जाता है। उदाहरणार्थ गोपथ-ब्राहमण में ओंकार का महत्व प्रदर्शित करने के लिए कथाविधि का प्रयोग हुआ है । एक बार यशोधरा के इन्द्रनगर के सम्बन्ध में देवताओं और असुरों में संग्राम हुआ देवता हार गये । उन्होंने ब्रहमा के ज्येष्ठ पुत्र ओंकार की अध्यक्षता में युद्ध करके जय प्राप्ति का विचार किया । उसने पूछा कि "मुझे इसके बदले क्या दोगे ? तब देवताओं ने उसे सर्वकार्यों का अग्रणी बनाया और कहा कि समस्त वेदपाठ एवं देवयज्ञ आदि बिना प्रणवोच्चारण के प्रारम्भ नहीं होंगे तदन्तर ओंकार की सहायता से देवतागण विजयी हुए ।[1]

---

1. गोपथ - 1, 1, 23.

उदुम्बर काष्ठ की महत्ता सिद्ध करने के लिए कहा गया है कि एक बार सब देवताओं ने एक स्थान पर बैठकर अन्य रस का परस्पर वितरण किया वहाँ पर अन्न-रस के गिरने से जो वृक्ष उत्पन्न हुआ उसे उदुम्बर कहते हैं ।[1] यद्यपि विधि - विधानों के स्वरूप की व्याख्या ही इन आख्यानों की जननी है किन्तु कभी- कभी इनसे भिन्न रोचक साहित्यिक आख्यान भी मिलते हैं । इनका यज्ञों से अत्यल्प संबन्ध भी होता है । इनमें से कुछ आख्यान दीर्घ हैं, कुछ लघु एवं कुछ केवल संकेत मात्र ही हैं । ये संकेतात्मक कथायें ही परवर्ती पौराणिक कथाओं की जन्मदाता है तथा दशावतार की कथाओं का मूल श्रोत भी ब्राहमणों में उपलब्ध ये आख्यान ही माने जाते हैं ।

ब्राहमण ग्रन्थों का प्राण याज्ञिक कर्मकाण्ड है अतः इन कथाओं का कर्मकाण्ड में ही पर्यवशान होना नितान्त स्वाभाविक है। इन कथाओं का उद्देश्य यज्ञों , तत्सम्बन्ध कर्मों एवं उपकरणों की उत्पत्ति, संगति तथा प्ररोचना है । उदाहरणार्थ - देवासुर-स्पर्धा में जलों द्वारा कुत्रवत [2] आख्यान में इष्टि के प्रारम्भ में ही जलाहरण ॥ अपां प्रणयम॥ क्यों होता है , यह बताया गया है । जब देवतागण यज्ञ का वितन्वन कर रहे थे तो असुरों और राक्षसों ने घेर

---

1. तैतरीय 1, 1, 3, 10 - 12

2. शतपथ ब्राहमण 1, ,1, 1, 17

लिया जिससे यज्ञ में बाधा हो । तब देवों ने जल रूपी वज्र को राक्षसों से रक्षित उपायस्वरूप देखा । ये जल जिधर से गमन करते है अर्थात जहाँ रूक जाते हैं वहाँ समूल नाश कर देते हैं देवों ने इस वज्ररूप जल का आश्रय लेकर निर्भयपूर्वक यज्ञ सम्पन्न किया । अतः भयरहित अविनाशशील वातावरण में यज्ञ करने के लिए वज्ररूप तत्प्रतीत "अपा" प्रणयनम्" । जलाहरण। किया जाता है ।

इसी भाँति यज्ञ का मृगरूप में भागना [1], देवों द्वारा वाणी का दोहन[2], सुपर्णी कद्रु आख्यान [3], प्रजापति द्वारा अपनी कन्या के साथ सम्बन्ध, [4] देवासुर - स्पर्धा और श्रद्धादेव मनु, [5] ऋतुओं को देवत्व प्राप्ति एवं यज्ञ में स्थान, [6], इन्द्र वृत्र युद्ध [7], इत्यादि अनेकानेक कर्मकाण्ड परक परीक्षणात्मक कथाएं हैं । मानवों में यज्ञ संस्था के प्रति श्रद्धा उत्पन्न करके उनमें देवताओं सूचक नैतिकता की प्रतिष्ठा करना भी इन कथाओं का उद्देश्य है । देवों की भाँति मनुष्य भी

---

1. शतपथ ब्राहमण 1, 1, 4, 1
2. शतपथ ब्राहमण 4, 6, 9, 16
3. शतपथ ब्राहमण 3, 6, 2, 1-20
4. शतपथ ब्राहमण 1, 7, 8, 1-8
5. शतपथ ब्राहमण 1, 1, 4, 14-17
6. एतरेय ब्राहमण 13 / 6

सत्यनिष्ठ हो , वे भी यज्ञ, तप और मंत्र के द्वारा अभ्युदय करें, यह सदुद्देश्य भी इन कथाओं में परिलक्षित होता है । इन कथाओं में ही मर्त्य ऋतुओं की कथा है । जिन्होंने अपने सद्गुणों एवं कर्मठता द्वारा दिव्य स्थान प्राप्त किया था ।[1] अतःमनुष्य के लिए भी ऐसा कर सकना असम्भव नही है - यह संकेत कथा द्वारा निर्दिष्ट है इस प्रकार कर्मकाण्ड परक होते हुए भी इन कथाओं का नैतिक मूल्य भी अत्यन्त महत्वपूर्ण कथा है और यही इनकी मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि है ।

आख्यान यज्ञ के समय प्रयुक्त होने वाली काष्ठ से सम्बन्धित है । ये कलेवर में अत्यन्त लघु है । जैसे- एक बार अग्निदेवों के समीप से चला गया और एक वर्ष पर्यन्त अश्वरूप धारण करके अश्वत्थ वृक्ष के नीचे रहा । यही अश्वत्थ का अश्वत्थत्व है । इसी प्रकार एक आख्यान के अनुसार द्युलोक में सोम नृप की बल्ली थी ।गायत्री छन्द उड़कर गया और उसे ले आया उसके पंख टूट गये । वही पर्ण §पलाश § हैं ।[2] एक बार देवों ने इसी के नीचे बैठकर ब्रहमचर्या की थी। अतः इसका महत्व और भी बढ़ गया । सुन्दर वस्तुओं को

---

1. एतरेय ब्राहमण ।3/9

2. शतपथ ब्राहमण ।, 7, ।, 9.

सुनने के कारण इसका नाम सुत्रवा रखा गया ।[1] यज्ञ में प्रयुक्त होने वाले उपकरणों से सम्बन्धित इन आख्यानों का वस्तुओं के महत्त्व को प्रमाणित रूप देना था ।

ब्राह्मण ग्रन्थों में वाणी से सम्बन्धित अनेक आख्यान उपलब्ध होते हैं । जो अत्यन्त रोचक एवं शिक्षाप्रद हैं । श्रेष्ठता प्राप्त करने के लिए मन और वाणी की कलह की कथा शतपथ ब्राह्मण[2] में सन्निहित है । मन एवं वाक् में एक बार विवाद हो गया कि इन दोनो में कौन श्रेष्ठ है । दोनो को अपनी - अपनी श्रेष्ठता का अभिमान था । निर्णय हेतु दोनो प्रजापति के समीप गये प्रजापति ने मन को वाणी से श्रेष्ठ बताया क्योंकि वाणी मन के उद्गारों का उच्चारण करती है । इस अपमान से वाणी को अत्यंत खेद हुआ । वाणी ने प्रजापति से कहा कि तुमने मेरा निरादर किया अतः प्राणापत्य कर्म में मैं अनुक्त रहूँगी । यही कारण है कि प्राणपत्य कर्म में मन्त्रोच्चारण नही होगा । एक कथा[3] के अनुसार गायत्री छन्द सोम को देवताओं के पास ले जा रहा था

---

1. तैत्तिरीय ब्राह्मण 1, 1, 3, 9-11
2. शतपथ ब्राह्मण 1, 4, 5, 8-12
3. शतपथ ब्राह्मण 3, 2, 4, 2-6

कि गन्धर्वों ने उसका अपहरण कर लिया देवताओं ने वाक् को भेजा क्योंकि गन्धर्वलोक स्त्रीकामा होते हैं । गन्धर्वों ने उसके लिए वेदो का पाठ किया किन्तु वह उनके पास नहीं गई । तब देवों ने वीणा बनायी और बजा- बजा कर कहने लगे ," हम इस प्रकार बजायेंगे, हम इस प्रकार तुझे पसन्द करेंगे वह देवों के पास चली आयी परन्तु वह व्यर्थ ही आयी । क्योंकि जो लोग स्तुति और प्रार्थना करते थे §अर्थात् वेद-पाठी गन्धर्व§ उनसे हट कर गाने - बजाने वालों के पास आ गयी । इसीलिए स्त्रियां आज तक व्यर्थ बातों में फंसी रहती है । जैसे वाणी ने किया वैसे ही अन्य स्त्रियां भी करती है और जो गाता बजाता है उसी पर वे मोहित हो जाती है ।[1]

इस कथा का प्रतीयमान उपदेश स्त्री-स्वभाव का प्रकाशित करता है । वाक् और यज्ञ से संबन्धित एक आख्यान[2] स्त्रियों की स्वाभाविक वृत्तियों और चेष्टाओं की ओर संकेत करने के साथ ही साथ वैदिक शब्दों के अशुद्ध उच्चारण से उत्पन्न म्लेच्छ भाषा का उद्भव भी निर्दिष्ट करता है । इस कथा के अनुसार ब्राह्मण

---

1. पं0 गंगा प्रसाद उपाध्याय, शतपथ ब्राह्मण भाग-प्रथम, पृ0 381-382

2. शतपथ ब्राह्मण 3. 2. 1. 19-27

को यज्ञ में नितान्त शुद्ध मन्त्रोच्चारण ही करना चाहिए इसी भाँति पंचविंश ब्राह्मण[1] में आई एक कथा के अनुसार वाणी एक बार देवताओं के पास से चली गयी और जल में प्रविष्ट हो गई देवताओं के माँगने पर जलों ने उसे लौटा दिया । वह पुनः वृक्षों में प्रविष्टि हो गई । देवताओं के याचना करने पर भी वृक्षों ने उसे नही लौटाया । इस प्रकार उन्होंने वृक्षों को काट गिराया किन्तु वाणी तब भी नही निकली । वह चतुर्था विभक्ति हो गई इसी प्रकार की अनेकों वाक् कथाएं आयी हैं ।

इन सभी कथाओं में वाणी को स्त्री रूप में चित्रित किया गया है और उसकी स्त्री स्वभाव से समता प्रदर्शित करते हुए अनेक रोचक तथ्यों का प्रतिपादन किया गया है । फलतः स्त्री मनोविज्ञान की दृष्टि में रखकर ही इन आख्यानों का सृजन तत्कालीन मनीषियों ने किया है । पंचविंशति ब्राह्मण[2] में संकेत प्राप्त होता है कि इन्द्र ने दधीच ऋषि को अस्थियों को लेकर उनसे अपना वज्र बनाया था ।

इस कथा में उस पौराणिक कथा का संकेत है जिसमें इन्द्र ने दधीच ऋषि से उनकी अस्थियां माँगकर वज्र बनाया था ।

---

1. पंचविंश ब्राह्मण 6. 5. 10-13

2. पंचविंश ब्राह्मण 12. 8. 6

यही दधीच ऋषि आगे चलकर दान की महिमा से सम्बन्धित स्थलों पर सबसे आगे प्रतिष्ठित किये गये । जैमिनी तथा पंचविंश ब्राह्मण भी आख्यानों की दृष्टि से महत्वपूर्ण है । अधिकांश आख्यान सामोत्पत्ति एवं सामद्रष्ठा से संबन्धित है कुछ आख्यान सृष्टि विषयक है किन्तु उल्लेखों में दार्शनिक तथ्य अल्प तथा आख्यात्मक प्रवृत्ति विशिष्ट रूप से है ।

अथर्व संहिता से संबद्ध गोपथ ब्राह्मण में भी अनेक सृष्टि - विषयक आख्यान हैं । इनमें अर्थवन ऋषि तथा ब्रह्म पुरोहितादि का महत्व समझाया गया है । शतपथ ब्राह्मण में श्री सम्बन्धित आख्यानों की संख्या अति विशाल है । उदाहरणार्थ प्रजापति की तपस्या से क्रमशः जल, मृत, सिकता, पत्थर, लौह और सुवर्णादि की उत्पत्ति [1], रूद्रोत्पत्ति[2], प्रजापति का विराट स्वरूप[3], त्रित, द्वित, एकत आप्त्यों की उत्पत्ति,[4] समुद्र जल एवं कुशोत्पत्ति [5]

---

1. शतपथ ब्राह्मण 6. 1. 39
2. शतपथ ब्राह्मण 6. 1. 3. 8-16
3. शतपथ ब्राह्मण 7. 1. 2. 1
4. शतपथ ब्रह्मण 1. 2. 3. 1-5
5. शतपथ ब्राह्मण 1. 1. 3. 4-5, 8-9

सृष्टि के पूर्व जल से हिरण्यमय अण्डे की उत्पत्ति[1], मृत्यु से जल-पृथ्वी रूप अग्नि, वाक् और अश्वादि की उत्पत्ति,[2] अग्नि के वीर्य से हिरण्य की उत्पत्ति,[3] हस्ति एवं मार्तण्डोत्पत्ति,[4] गवेयुवकों की उत्पत्ति,[5] अश्वोत्पत्ति,[6] न्यग्रोधीपत्ति[7] आदि - आदि ।

ब्राह्मण ग्रन्थों की रचना के मूल उद्देश्य के अनुरूप ये कथायें यज्ञ के किसी न किसी अंग की व्याख्या के लिए प्रयुक्त हुई हैं जैसे अश्वोत्पत्ति की कथा अश्वमेध का उद्देश्य का प्रतिपादित करती हैं । न्यग्रोधोत्पत्ति से संबद्ध कथानक क्षत्रिय द्वारा सोम के स्थान पर न्यग्रोध भक्षण का कारण बताता है । सृष्टि के पूर्व जल से हिरण्यमय अण्डे की उत्पत्ति द्वारा दर्शपूर्णमास की प्रशंसा की गई है । त्रित, द्वित और एकत आप्त्यों की उत्पत्ति, निनयन कर्म का प्रयोजन निर्दिष्ट करती है । इसी प्रकार आख्यान के

---

1. शतपथ ब्राह्मण 11. 1. 6. 1
2. शतपथ ब्राह्मण 10. 6. 5. 1
3. शतपथ ब्राह्मण 2. 1. 1. 5
4. शतपथ ब्राह्मण 3. 1. 3. 3-4
5. शतपथ ब्राह्मण 9. 1. 1. 8
6. शतपथ ब्राह्मण 13. 3. 1. 1
7. ऐतरेय ब्राह्मण 35/4

द्वारा कोई न कोई प्रयोजन अवश्य सिद्ध होता है यदि इन यज्ञीय - प्रक्रियाओं को सैद्धान्तिक रूप से ही प्रतिपादित कर दिया जाता तो उन्हें समझाने में तो कठिनाई होती ही, बहुत संभव है कि कोई उनके वाचन का भी प्रयत्न न करता और शनैः-शनैः उनका अस्तित्व ही समाप्त हो जाता है । किन्तु यह उनमें उपलब्ध कथाओं और आख्यानों का ही प्रभाव परिलक्षित होता है । जिसने इन्हें रोचक बनाने के साथ साथ सरल और सुगम भी बना दिया है यही कारण है कि ये आख्यान आज भी महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं और तत्कालीन आचार्यों के मनोविचार को सिद्धि करने के साथ साथ ही आधुनिक मनोविज्ञान की दृष्टि से भी उपादेय सिद्ध होते हैं ।

शतपथ ब्राह्मण में नेत्रविहीन च्यवन ऋषि और उनकी पत्नी सुकन्या को संबन्धित एक रोचक आख्यान है ।[1] अश्विनी कुमारों की कृपा से यौवन और नेत्र प्राप्त हुए । यह वृत्तान्त जहाँ एक ओर वाक्येय विधा का रहस्योन्मेष करता है, वहीं दूसरी ओर नारी की सहज कौतूहल वृत्त का, पति परायणता का और

---

1. शतपथ ब्राह्मण 4. 1. 5. । और आगे जैमिनी 3/120-128

इन सबसे बढ़कर पिता की इच्छा एवं आदेश पालन का तथा दूसरों की रक्षा एवं मंगल कामना के लिए अपने जीवन को उत्सर्ग कर देने का जीवन उदाहरण है यदि च्यवन वैदिक ऋषि की गरिमा है तो सुकन्या सच्चे अर्थों में आदर्श वैदिक नारी है । इसमें उत्तम चरित्र, उदार हृदय, पतिपरायणता आदि गुण मूर्तिमानरूप में प्रतिष्ठित हैं । उसी की साधना के फलस्वरूप च्यवन पुनर्यौवन को प्राप्ति करते हैं ।

यही कथा गुरुजनों के प्रति अपराध करने के दुष्परिणामों की ओर भी संकेत करती हैं । कथाएं याज्ञिक कर्मकाण्ड की व्याख्या के साथ-साथ किसी न किसी नीति या सदाचार को भी प्रतिपादित करती है । इस दृष्टि से इनकी उपादेयता द्विगुणित हो जाती है क्योंकि इनके रचयिताओं का उद्देश्य मनुष्य को धर्म के साथ साथ सदाचार की ओर प्रवृत्ति करना भी था इसी प्रकार के अन्य आख्यानों में पुरूरवा-उर्वशी का आख्यान[1] शुनःशेपोपाख्यान[2], नचिकेतो पाख्यान[3], यम-यमी का आख्यान [3]

---

1. ऐतरेय ब्राहमण 33/1.6
2. तैत्तिरीय ब्राहमण 3.11.8।
3. पंचविंश 12.10.22

नाभानेदिष्ट मानव की कथा [1], सत्य और असत्य से सम्बन्धित आख्यान[2], तथा सत्यकाम जाबाल की कथा आदि विशेष उल्लेखनीय है । ऋग्वेद [3] में पुरूरवा तथा उर्वशी की संवादात्मक कथा उपलब्ध होती है । नाटकसंहिता [4] में भी इसका उल्लेख है, किन्तु कथा का विस्तृत रूप शतपथ ब्राह्मण में ही उपलब्ध होता है निरूक्त[5] में मेघ तथा विद्युत को क्रमशः पुरूरवा एवं उर्वशी कहा गया है ।इस कथा के द्वारा उत्तराणि एवं अधराणि विधान का निर्देश। किया गया है, क्योंकि पुरूरवा ने अश्वत्थ की उतराणि और शमी की अधराणि बनाकर अग्नि उत्पन्न की थी और गन्धर्व लोक पहुँच गया था । अतः अश्वत्त की उपराणि और शमी की अधराणि होना चाहिए इसके साथ ही इस प्रेम कथा से भोगलिप्सा के प्रति मनुष्य की अत्यधिक अनुरक्त के दुष्परिणामों की ओर संकेत भी,पाप्त होता है ।

---

1. ऐतरेय ब्राह्मण 22/9
2. शतपथ ब्राहमण 3. 120-128
3. ऋग्वेद 10. 9. 5
4. काठकसंहिता 8/10
5. निरूक्त 10/46

ऋग्वेद[1] में वरुण के पाश से शुनःशेप की मुक्ति की कथा मिलती है ऐतरेय ब्राह्मण[2] तथा शाकल्यायन श्रौतसूत्र[3] में इसी का विस्तृत रूप उपवर्णित है। आगे चलकर इस कथा का विकास रामायण, महाभारत, भागवत, देवीभागवत आदि पुराणों में भी द्रष्टव्य है। ऐतरेय ब्राह्मण में उपलब्ध कथा संक्षेप में इस प्रकार है कि इक्ष्वाकुवंशीय राजा हरिश्चन्द्र निःसंन्तान थे। उन्होंने वरुण देवता की कृपा से पुत्रप्राप्ति तो की किन्तु इस शर्त पर कि उसे आपके लिए बलि कर दूँगा। वरुण की कृपा से उन्हे रोहित नामक पुत्र प्राप्त हुआ किन्तु जब बलि देने का अवसर आया तो वे टालमटोल करने लगे। वरुण ने उन्हें पुनः पुनः स्मरण कराया। किन्तु उन्होंने पुत्र की बलि नहीं दी जब रोहित शस्त्रधारी हो गया तो पिता ने पुत्र से बलि की बात कही यह सुनते ही रोहित गृह त्याग कर वन में चला गया वरुण के क्रोध से राजा को उदररोग हो गया। रोहित प्रतिवर्ष वन से लौटकर गाँव में आताऔर वहाँ मनुष्य देहधारी इन्द्र उसे चलते रहने के लिए प्रेरित करते वह पुनः लौट जाता।

---

1. ऋग्वेद 1.24.12-13 तथा 5.2.9
2. ऐतरेय ब्राह्मण 33.1.6
3. शा० श्रौ० 15.20.1

इसी भाँति पाँच वर्ष व्यतीत हो गये छठे वर्ष उसकी भेट क्षुधापीड़ित सुवयश के पुत्र अजीगर्त से हुई । उसके तीन पुत्र थे - शुनःपुच्छ, शुनःशेप और शुनोलांगुल रोहित ने सौ गायों के बदले एक पुत्र की मांग की जिससे बलि दी जा सके । अन्त में शुनः शेप को लेकर रोहित पिता के समीप बलि देने के लिए गया । अजीगर्त ने पुनः सौ गायों के बदले उसे यूप से बांधा और पुनः उतनी ही गायें लेकर स्वपुत्र बध के लिए भी तत्पर हो गया । यह देखकर शुनःशेप ने अनेक देवों का स्मरण किया और अन्त में वरुण की ही कृपा से वह पाशमुक्त हो गया तथा हरिश्चन्द्र का उदर भी कृश हो गया । तब से वह विश्वामित्र का पुत्र बन गया और देवराज विश्वामित्र कहा जाने लगा ।

अतः विजय प्राप्त करने वाला राजा हत्याओं के पाप से बचने के लिए यह आख्यान सुने और जो सन्तानकामी हैं उन्हे भी इस कथा के श्रवण से अवश्य शन्तानप्राप्त होगी । इसीलिए राजसूय याग में अभिषेचनीय दिन मध्याह्न में शैनःशेप कथा का श्रवण - विधान है । इस प्रकार इस कथा में जहाँ एक पिता अपने पुत्र की रक्षा के लिए स्वयं रोग ग्रस्त हो जाता है वहीं दूसरी ओर अजीगर्त धन के लोभ में पुत्र का बध तक करने को तत्पर हो जाता है ।

इस प्रकार देवता भी उसी की सहायता करते है जो कर्तव्य-

निष्ठ होकर माता-पिता और गुरूजनों का आदेश पालन करते हैं । अतः मनुष्य को मात्र पितृ-भक्त तथा देवनिष्ठ होना चाहिए । यही शिक्षा इस आख्यान से प्राप्त होतीहै॥

कठोपनिषद में उपलब्ध नचिकेतोपाख्यान से समता रखते हुए भी यह कुछ भिन्न है यह भेद तृतीय वर्ष से संबन्धित है । उपनिषद में पुनर्जन्म से मुक्ति के लिए ब्रहमतत्व का गूढ़ विवेचन किया गया है और ब्राहमण में इसका पर्यवसान यज्ञ में होता है । यह आख्यान दृढ़ निश्चय और विश्वास, सतिथि-माहात्म्य, भोगों से अनाशक्ति तथा दान-महिमा विषयक तथ्यों को निरूपित करता है । अतिथि सत्कार भारतीय संस्कृत का प्रमुख अंग है ।

यही कारण है कि मृत्यदेव यमराज भी अपने द्वार पर अतिथि रूप से विद्यमान बालक नचिकेता को तीन दिन तक बिना भोजन के रह जाने से तीन वर प्रदान करते हैं । पिता को दान में अदोग्ध्री गाय देने से उत्पन्न दुःख के कारण वह स्वयं को भी दान में देने के लिए तत्पर हो जाता है । पिता क्रोध वश जब उसे यम को देने के लिए कहते हैं तो वह वास्तव में यम सदन का पहुँचता है । और मृत्यु विषयक रहस्य से संबन्धित प्रश्न का समाधन ज्ञात करके ही संतुष्ट होता है ।

यम द्वारा दिये गये अनेक प्रलोभनों की भी वह अवहेलना कर देता है इस आख्यान के द्वारा दृढ़ भक्ति तथा दृढ़ निश्चय युक्त एवं श्रद्धा समन्वित मनुष्य के लिए कुछ भी ज्ञात करना या प्राप्त करना असम्भव नही है । यम-यमी की कथा द्वारा भाई-बहन के संबंध की पवित्रता उपदिष्ट करके भारतीय मर्यादा की पूर्णतः रक्षा की गई है । नामानेदिष्ट मानव की कथा आर्यजनों की सत्य के प्रति निष्ठा प्रदर्शित की गई है ।

सत्यवादिता का महत्व सत्यकाम जाबालि की कथा द्वारा भी प्रदर्शित किया गया है कथा में बताया गया है कि ब्राहमणत्व-प्राप्ति जन्म से नही अपितु गुण से होती है। ब्राहमण-कुल में जन्म होना ही ब्राहमण कहलाने के लिए प्रयाप्त नहीहै अपितु सच्चा ब्राहमण वही है जो सत्यवादी और श्रद्धालु हो । जाबाल के पुत्र सत्य काम ने माँ से कहा कि मैं ब्रहमचारी होना चाहता हूँ किन्तु सर्वत्र सर्वप्रथम सर्वप्राणी एक ही प्रश्न करत हैं कि तेरा वंश क्या है? माँ ने उत्तर दिया कि " पुत्र यह तो मुझे भी ज्ञात नहीं, मैं जब युवा थी मुझे नही मालूम कि मैं कैसे गर्भिणी बन गई और तेरा पिता कौन है ? मुझे केवल इतना ज्ञात है कि मेरा नाम जाबाल है- तेरा नाम सत्यकाम है - तुम सत्यकाम जाबाल है वह गौतम हारिद्रुमत के आश्रम में गया आचार्य ने वही प्रश्न किया - " तुम किसके पुत्र हो ? सत्यकाम ने अपनी माँ का उत्तर दुहरादिया जिसे श्रवण कर आचार्य

के मुख से स्वतः निकल पड़ा " तुम सचमुच ब्राहमण हो, सच कहने में तुम्हे तनिक भी भय नही हुआ तुम ही स च्चे ब्राहमण और ब्रहम लोक के सच्चे अधिकारी हो ।" इस प्रकार सत्यकाम जाबाल ने सत्यवादिता से वह पद प्राप्त किया जा अनेक उच्चकुलोत्पन्न भी नही प्राप्त कर पाते ।

शतपर्थ ब्राहमण[1] ने सत्य एवं असत्य से सम्बन्धित एक आख्यान आया है- सुर और असुर दोनो प्रजापति की सन्तान थे अतः दोनो ने पिता के गुणों को ग्रहण किया । दोनो ही सत्य और असत्य संभाषण करते। थे उनमें कोई भेद नही था तब देवों ने असत्य को त्याग कर सत्य का आश्रण ग्रहण किया । अतः वह सत्य, जो असुरों में था, असुरों को त्याग कर देवों के समीप चला गया, और वह असत्य जो देवों में था, देवों को त्याग कर असुरों के समीप चला गया तब से देवता केवल सत्य और असुर असत्य बोलने लगे जब देवता अभ्यासपूर्वक सत्य - संभाषण करने लगे तो उनका अनादर हुआ और वे निर्धन भी हो गये, अतः जो सत्य बोलता है वह तिरस्कृत और निर्धन रहता है । किन्तु अन्त में उसकी समृद्धि अवश्य होती है । क्योंकि देवताओं ने भी समृद्धि प्राप्त की थी।

---

1. पं0 गंगा प्रसाद उपाध्याय, शतपथ ब्राहमण § द्वितीयों भागः § पृ0 364.

दूसरी ओर केवल असत्य का आश्रय लेकर असुरों ने खूब उन्नति की, इसी भांति जो असत्य बोलता है वह खूब समृद्धि प्राप्त करता है, किन्तु अन्त में उसका पतन अवश्य होता है । क्योंकि असुर भी अंत में नष्ट हो गये सत्य मार्ग का अनुगमन नितान्त कठिन है और उसमें अनेक कष्टों का सामना करना पड़ता है ।

अन्त में विजय सदैव सत्य की ही होती है । अतः सदैव सत्य का ही आश्रय ग्रहण करना चाहिए । पुनश्च सत्य देवाश्रित है और असत्य असुराश्रित है । अतः असत्य का अवलम्बन ही श्रेयस्कर हो सकता है । ब्राहमण साहित्य में उपलब्ध कथाओं का एक वर्ग संवाद शैली के रूप में है । इनको ब्रहमोद्य" कथाओं के नाम से भी अभिहित किया गया है । "ब्रहम" से संबद्ध कथाये ब्रहमोधपरक कही जाती है ।

इसी गूढ़ विषय पर दो विप्र-व्यक्तियों का संवाद प्राप्त होता है ब्रह्मविषय विचारों को स्पष्ट और सुगम बनाने के लिए भी प्रायः इस शैली का प्रयोग किया गया है । शतपथ ब्राहमण में ऐसी अनेक कथाएं हैं । उदाहरणार्थ- वीर शातपर्णेय और महाशाल जाबाल[1], अतः आद्य-सम्बन्ध तथा पुरुष की अर्करूपतः

---

1. शतपथ ब्राहमण - 10. 3. 3. . 1-8

उद्दालक और वैश्ववसव्य[1], वाजश्रवा पुत्र और सुत्रवा कौश्य[2] अग्निहोत्रा जनक और याग्यवल्क्य[3], दर्शपौर्णमास: उद्दालक और स्वैदायन शौनक[4], नरक्लोक और कर्मसिद्धान्त वरुण और भृगु,[5] संवत्सर मीमांसा : प्रोति और उद्दालक,[6] याज्ञवल्क्य मैत्रेयी संवाद[7] तथा याज्ञवालक्य और वाचक्नवी गार्गी[8] इत्यादि अनेक ब्राह्मणोंपरक संवादात्मक कथाएं हैं। दृष्टान्त-स्वरूप याज्ञवल्क्य और वाचक्नवी गार्गी संवाद में पृथ्वी से आकाश पर्यन्त अन्तर्वहिमार्ग से स्थित सम्पूर्ण भूत से दो वाह्यभूत है। उसका ज्ञान प्राप्त कर निराकरण करते हुए निरूपणिक साक्षात सर्वान्तर आत्मा का उपदेश है।

याज्ञवल्क्य से वाचक्नवी गार्गी ने पूछा " याज्ञवल्क्य, यह जो कुछ भी है सब जल में ओतप्रोत है। जल किसमें ओत प्रोत है? याग्वल्य ने उत्तर दिया - वायु में।

---

1. शतपथ ब्राह्मण 10.3.4.1
2. शतपथ ब्राह्मण 10.5.5.1
3. शतपथ ब्राह्मण 10.3.1.2
4. शतपथ ब्राह्मण 11.2.7.1
5. शतपथ ब्राह्मण 11.6.1.1
6. शतपथ ब्राह्मण 12.2.2.14 §7§ शतपथब्राह्मण 12.2.2.14
8. शतपथ ब्राह्मण 14.6.

गार्गी, वायु किसमें ओत प्रोत है? "याज्ञ0 "गन्धर्वलोकोमें ।"

गार्गी, आदित्य लोक किसमें आतप्रोत है? याज्ञ0 चन्द्रलोकोमें

गार्गी, चन्द्रलोक किसमें ओतप्रोत है? याज्ञ0 " नक्षत्रलोकों में,

गार्गी, गन्धर्व लोक किसमे ओतप्रोत है ? याज्ञ0" आदित्यलोको में"

गार्गी, नक्षत्रलोक किसमें ओतप्रोत है? याज्ञ0, देवलोकों में §

गार्गी, देवलोक किसमें ओतप्रोत है? याज्ञ0 , इन्द्रलोक में"

गार्गी, इन्द्रलोक किसमें ओतप्रोत है? याज्ञ0, " प्रजापतिलोक में"

गार्गी, प्रजापति लोक किसमें ओतप्रोत है? याज्ञ0" ब्रहमलोक में"

गार्गी, ब्रहमलोक किसमें ओतप्रोत है? " इस पर याज्ञवलक्य ने कहा कि " हे गार्गी , अति प्रश्न मत करो । तेरा मस्तक न गिर जाय, जिसके विषय में अति प्रश्न नही करना चाहिए, उसके विषय में तू अति प्रश्न कर रही है। तू अतिप्रश्न मत कर ।" तब वाचक्नवी गार्गी चुप हो गई ।

उपरोक्त उदाहरण से स्पष्ट है कि इन ब्रहमोध कथाओं की शैली अत्यन्त सरल और स्पष्ट है तथा इनका अध्ययन भी रोचक है । अतः इतने गूढ़ विषयों को अत्यन्त सरल रीति से समझाने के लिए तत्कालीन मनीषियों अत्यन्त उपयुक्त और उत्तम मार्ग ढूढ़

निकाला था ।

इससे यही तथ्य प्रतिपादित होता है कि वे मानव मन के सूक्ष्म पारखी थी और इसीलिए मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि से समन्वित ये कथाएं अधुनातन समय में भी महत्वपूर्ण स्थान रखती हैं । इसके साथ ही कतिपय ऐतिहासिक कथाएं भी ब्राह्मणों मे उपलब्ध होती है इनका प्रयोग मुख्यतः कर्मकाण्ड के प्रसंग में ही हुआ है जैसे कवष, ऐलूष [1] की कथा अपोनप्त्रीय सूक्त प्रशंसा के लिए प्रयुक्त हुई है वृहद्युम्न प्रसारिण और सुचिवृक्ष गोपलायन [2] की कथा, देवी एवं दैविका दोनो के साथ पुरोडास देने से पुत्रादि की प्राप्ति होती है। यह विनियोग करती है । इंगिरा और शर्यातिमानव [3] की कथा द्वारा वैश्वदेव निष्विद्सूक्ति प्रशंसा है । इडोपाख्यान [4] द्वारा इडाकर्म में देवता और उसकी उपांशुरूपता का विधान है । विदेहमाधव [5] की कथा यह बताती है कि सामेनी ऋचाएं घृतवती क्यों होती हैं ?

---

1. ऐतरेय ब्राह्मण 8/1
2. ऐतरेय ब्राह्मण 15/4
3. ऐतरेय ब्राह्मण 30/4
4. शतपथ ब्राह्मण 1. 8. 3. 34
5. शतपथ ब्राह्मण 1. 4. 1. 10-19

ब्राहमण भी कथाओं का आगार है। जिसकी कथाएं कहानी कला की दृष्टि से अत्यन्त परिष्कृत और मनोरंजक है। इनमें से अधिकांश कथाएं विभिन्न सामों से सम्बन्धित है जैसे -कण्व नार्षद [1] की कथा त्रिशांक साम से सम्बन्धित है दीर्घजिहवी असुरी और कुत्सन की कथा सौमित्र साम से तथा इन्द्र और कुत्स की कथा सौत्रवस साम से सम्बन्धित है ।

कुछ कथाएं ऐसी है जिनका प्रयोजन ब्राहमणों का कर्मकाण्डात्मक वर्णन ही नहीं है अपितु जो परिष्कृत आख्यायिका परम्परा और मानव- रूचि को सूचित करती है । इस दृष्टि से मनु और मत्स्य का आख्यान [2] अत्यन्त रोचक है । कथा यह है कि मनु द्वारा सन्ध्यावंदन के लिए आचमन करते समय जल में एक छोटी से मछली निकली और कहने लगी कि इस समय मुझ पर दया करके आप मुझे छोड़ दीजिए । इस उपकार के बदले समय पढ़ने में आपकी सहायता करूंगी । मनु ने कहा कि तू मेरी किस विपत्ति रक्षा करेगी । इस पर मछली बोली कि एक जलप्लावन आने वाला

---

1. जैमिनी ब्राहमण 3/198-201, पंचविंश 14.6.8

2. शतपथ ब्राहमण 1.8.1

है , जिसमें समस्त प्राणी नष्ट हो जायेंगे किन्तु मेरी सहायता से केवल आप बचे रहेंगे । मनु ने पूछने पर कि मैं तुम्हारी रक्षा कैसे करूँ वह बोली कि हमारे वंश में बड़ी मछलियाँ छोटी मछलियों का भक्षण कर डालती है अतः अभी आप मुझे जलपूर्ण एक घट में रख दीजिए । जब मैं बड़ी होने लगूँ तो जलाशय में डाल दीजिएगा । जब उससे भी बड़ी हो जाऊँ तो समुद्र में डाल दीजिएगा । इस प्रकार मेरी रक्षा हो जायेगी ।

मनु द्वारा ऐसा ही करने पर जब वह छोटी से मछली पूर्ण मत्स्य बन गई तो उसने कहा कि अमुक वर्ष, जल सम्प्लव होगा अतः आप एक पोत निर्मित करिए और जब जल बढ़ने लगे तो उसी में बैठ जाइएगा । उस समय मैं आपके किसी सुरक्षित स्थल पर ले चलूँगी मतस्य के कथनानुसार ठीक समय पर जलसम्प्लव आया । वह मत्स्य भी स्वकथनानुसार मनु के पोत को उच्चरातल की ओर ले गई और बोली की मेरा वचन पूर्ण हो गया है । अब आप इस पोत को इसी वृक्ष से बाँध दीजिए किन्तु इतना ध्यान रखिएगा कि पानी उतरते- उतरे जहाज सूखे में ही न रह जाय । मनु ने वैसा ही किया और अपनी रक्षा की ।

इस कथा में शकुन्तला और दुष्यन्त के विषय में भी संकेत मिलता है कि इसके अनुसार नाडपित नामक स्थान पर शकुन्तला ने भरत को जन्म दिया था ।[1] यह दुष्यन्त का पुत्र था इस कथा को कालिदासकृत नाटक " अभिज्ञानशाकुन्तलम" के कथानक का मूल स्रोत माना जा सकता है । स्वर्भानु नामक असुर द्वारा आदित्य को आवृत्त कर देने की कथा [2] कुछ अन्तरों सहित प्रायः सभी ब्राह्मणों में उपलब्ध होती है । । अत्रि ऋषि ने देवताओं की प्रार्थना पर अंधकार को दूर किया । ऐसा माना जाता है कि वर्तमान समय में राहु-केतु द्वारा सूर्यग्रहण की कथा का मूलस्रोत यही कथा रही होगी ।

शतपथ ब्राह्मण में उपलब्ध अनेक महत्वपूर्ण नीतिकथाओं और रूपकों का आकलन किया है । इनमें प्रमुख हैं - अग्नि, इन्द्र और आप्त्य की कथा [3] इन्द्र और वृत्त की कथा [4] , पुरूरवा-उर्वशी की कथा [5], मन और वाक के कलह की कथा,[6] ऋतुओं

---

1. शतपथ ब्राह्मण ।3. 5. 4. ।4
2. पंचविंशति 4. 5. 2. गोपथ 2. 3. 19, शतपथ 5. 3. 2. 2
3. शतपथ ब्राह्मण ।. 2. 3
4. शतपथ ब्राह्मण ।. 2. 4. ।
5. शतपथ ब्राह्मण , §6§ शतपथ ब्राह्मण ।. 4. 5. 8-12

असुरों और देवताओं का आख्यान [1], त्वष्टृ, वृत्र और इन्द्र का आख्यान[2] गायत्री, सोम और धनुर्धारी का आख्यान[3], विष्णु के इन पक्षों से संबद्ध कथा [4] देवताओं में कलह से संबन्धित आख्यान[5], यम का आख्यान [6], बारहवें युप की कथा [7], वैश्वानल और अश्वपति कैकेय का आख्यान [8] नाम और रूप की कथा[9], श्री और प्रजापति का आख्यान,[10] भृगु और वरुण की कथा,[11] सिंह द्वारा साम्राज्य गाय का हनन [12], वर्ष में दिनों की संख्या[13], नमुचि और इन्द्र की कथा[14] इत्यादि ।

---

1. शतपथ ब्राहमण 1.6.1
2. शतपथ ब्राहमण 1.6.3
3. शतपथ ब्राहमण 1.7.1
4. शतपथ ब्राहमण 1.9.3.9.5.6.4.1.6.7.2.10.6.7.4.1.
5. शतपथ ब्राहमण 3.4.2
6. शतपथ ब्राहमण 3.6.1.8
7. शतपथ ब्राहमण 3.7.2
8. शतपथ ब्राहमण 10.6..1
9. शतपथ ब्राहमण 10.2.3 §11§ शतपथ ब्राहमण 11.6.1
10. शतपथ ब्राहमण 10.4.3 §12§ शतपथ ब्राहमण 11.8.4
13. शतपथ ब्राहमण 12.20.2 §14§ शतपथ ब्राहमण 12.7.3

कथाएं नैतिक मूल्यों से अनुप्राणित हैं । "दध्यङ् आर्थवण का आख्यान राष्ट्रीय मण्डल के लिए जीवनोत्सर्ग का सन्देश देता है । सौभरि काण्व कथा महान जनों की संगति ही श्रेयस्कर है, इसका प्रतिपादन करती है । देवापि शांतनु ने गुरुजनों की उपेक्षा का दुष्परिणाम अंकित है ।

ब्राह्मणगत कथाओं का वैज्ञानिक आधार यही है कि ये मानव-मन को अपनी ओर आकृष्ट करके, उसे सत्कर्मों में प्रवृत्त होने का, सदाचार तथा सद्धर्म का उपदेश देती है । यद्यपि इनका प्रणयन तत्कालीन परिस्थितियों और मानव के मानसिक-स्तर के आधार पर ही किया गया था किन्तु इनके द्वारा उपदिष्ट तात्विक बातें और शिक्षाएं तथावधि ग्रहण की जा सकती है । पं० जवाहर लाल नेहरू [1] के शब्दों में :-

"If people believed in the factual contents of of these stories, the whole thing was absurd and ridiculous But as soon as one ceased believing in them, they appeared in a new light, a new beauty, a wonderful flowering of a richly endowed imagination full of human lessons."

---

1. Discovery of India, Pg. 83. Jawahar Lal Nehru.

संस्कृत साहित्य में आत्रेयी, अपाला और घोषा की कथाए भक्ति-विह्वल नारी के हृदय की निश्छलता और भोलेपन की तथा देवताओं के भक्त प्रेम की प्रतीक है । अगस्त्य - लोपामुद्रा और अन्तेवासी संवाद में जहाँ शिष्य में अपराध को स्वीकार करने की क्षमता है वहीं अगस्त्य में भी क्षमा की भावना । कण्व और प्रगाथ के आख्यान में नारी की सहज वात्सल्य भावना, मातृत्व की साध और पुरुष हृदय की शंकालुता और अंतत: उसकी उदारता का चित्र है । इन्द्र द्वारा असंग को नारी धर्म की शिक्षा में भारतीय नारी-जीवन के प्राण लज्जा का संदेश है । [1]

ब्राह्मण साहित्य में इसी प्रकार की अनेक कथाए विद्यमान हैं। इस दृष्टि से इनको कथाओं का आगार" भर कहा जा सकता है । यह कथा - भाग भी इनका सर्वाधिक आकर्षक अंश है । यद्यपि कथाओं का मुख्य प्रयोजन पुरुष की यज्ञीय विधियों ें प्ररोचना है किन्तु साथ ही उनमें विविध शिक्षाएं उपदेश भी प्राप्त होते हैं । इतना ही नही परवर्ती कथाओं के आदिस्रोत ये आख्यान ही माने जाते हैं ।

अत: इनका महत्व केवल इसी दृष्टि से नही है कि ब्राह्मणगत कर्मकाण्ड परक यज्ञों में विनियुक्त करते हैं अपितु इसके साथ ही इनसे कुछ ऐसे सन्देश भी प्राप्त होते हैं जो मानव-जीवन को उन्नत बनाने में अत्यन्त सहायक सिद्ध हो सकती हैं ।

---

1. डा० हरिशंकर त्रिपाठी, "शतपथ और ऐतरेय ब्राह्मणों की कथाओं का आलोचनात्मक अध्ययन, इ०वि०वि०इ०.

§ग§ उपनिषदों में उपलब्ध आख्यान :-

उपनिषद में वेद का अंतिम अंश होने के कारण ये साहित्य वेदान्त के नाम से अभिहित किया जा सकता है । वैदिक साहित्य में उपनिषदें सबसे अर्वाचीन रचनाएं मानी जाती हैं । ब्राहमण-साहित्य यदि गृहस्थ्य-जीवन में होने वाले कर्म-काण्ड की व्याख्या है तो आरण्यक एव उपनिषद निरवच्छन अरण्य में ब्रहमचर्य से परिपूत वानप्रस्थियों के लिए गंभीर बौद्धिक-चिन्तन है। वस्तुत: यह साहित्य आध्यात्मिक मानसरोवर है जिसमें अवगाहन कर भारतीय मनीषी ही नही विदेशी दार्शनिक भी अलौकिक आनंद का अनुभव करते हैं । जर्मनी के प्रसिद्ध दार्शनिक आर्थर शोपेनहर,[1] पाल डासन[2] तथा फ्रेडरिक श्लेगल[3] आदि उपनिषदों की विचारधारा के अत्यन्त प्रभावित थे । इसी प्रकार फ्रेंच विद्वान कजींस, सैंडरूज, हकस्ले आदि विद्वान विश्व के सम्पूर्ण ज्ञान का मूल उपनिषदों को बताते हैं ।

---

1. यह अनुपम ग्रन्थ आत्मा की गहराइयों को हिलकोर डालताहै । जीवन भर में मुझे यही एक आश्वासन प्राप्त हुआ है और मेरे मृत्युपयन्त यह आश्वासन रहेगा ।

डा0 राजकिशोर सिंह, वैदिक साहित्य का इतिहास, पृ0 209

2. फिलासफी आफ उपनिषद नामक अपनी पुस्तक में लिखा है कि "उपनिषदों में जो दार्शनिक सूक्ष्म है ।

स्वामी विवेकानन्द उन्ही उपनिषदों की निर्मल ज्योत्स्ना के द्वारा समस्त यूरोप और अमेरिका को परितृप्त किया था। वस्तुतः उपनिषदों के समान शान्ति, आनन्द और कैवल्य प्रदान करने वाला विश्व में कोई भी ग्रन्थ नही है ।

भारतीय साहित्य परम्परा में उपनिषद शब्द के लिए एक दूसरा शब्द भी मिलता है जिसका अर्थ है " गुप्त प्रच्छन्न" । उपनिषद की व्युत्पत्ति उप + नि + सद् धातु से हुई है । जिसका अर्थ है किसी के चरणों में बैठना अथवा शिष्य का गुरु के समीप रहस्य ज्ञान की प्राप्ति के लिए बैठना । इसलिए कहीं- कहीं उपनिषदों में संकेतिक हैं कि इस ज्ञान को अपात्र व्यक्ति को नहीं देना चाहिए । छान्दोग्योपनिषद [4] में एक कथन है कि यह ब्रह्मज्ञान ज्येष्ठ पुत्र तथा विश्वस्त शिष्य के अतिरिक्त किसी को नही देना चाहिए । भले ही वह ससागरा बसुन्धरा व रत्नों का अक्षय कोष ही क्यों न प्रदान करें । इसका आशय यही है कि किसी अपात्र व्यक्ति को इस ज्ञान का उपदेश नही देना चाहिए ।

---

3. "उपनिषदों के सामने यूरोपीय तत्व-ज्ञान प्रचण्ड-मार्तण्ड के सामने टिमटिमाता दिया है, जो अब बुझा, तब बुझा ।"

4. ऋग्वेदीय - कौषीतकि और ऐतरेय
   कृष्ण यजुर्वेदी - तैत्तिरीय, कंठ और श्वेताश्वतर
   शुक्ल यजुर्वेदी - बृहदारण्यक और ईश । 1. 3. 2

उपनिषद वांड्.मय अति-विशाल है जिसमें कुछ उपनिषदें अति प्राचीन है । और कुछ अर्वाचीन । इन उपनिषदों की कुल संख्या 22 के लगभग मानी जाती है किन्तु शंकराचार्य का भाष्य केवल बारह उपनिषदों पर ही उपलब्ध होता है । ये उपनिषदें हैं -

सामवेदीय - छान्दोग्य और केन

अथर्ववेदी - प्रश्न, मुण्डक और माण्डूक

कृष्ण यजुर्वेदी महानारायण तथा मैत्रायणी उपनिषदों को मिलाकर इनकी संख्या 14 हो जाती है । और इन्हे ही भारतीय दर्शन का मूल आधार माना जाता है । शंकराचार्य ने ब्रहमसूत्रभाष्य में जिन 12 उपनिषदों का उल्लेख किया है उनमें मैत्रायणी तथा माण्डूक का उल्लेख नही है ।

उपनिषदों में मूलभूत सिद्धान्त ब्रहम और आत्मा है, जिन पर औपनिषादिक दार्शनिक भवन खड़ा हुआ है । इन गूढ़ तत्वों का रहस्योद्घाटन आत्मसात करना अति कठिन है । इसी कारण योग गुरू योग्य शिष्य को ही इसका अधिकारी समझता है और उपदेश देता है । जब अति कठिन स्थल पर शिष्य की बुद्धि तत्वग्रहण करने में असमर्थ हो जाती है तो उसे समझाने के लिए कथा अथवा आख्यान का आश्रय लिया जाता है । उपनिषदों में उपलब्ध ये आ-

ख्यान अत्यन्त गूढ़ एवं क्लिष्ट विषय को भी सरल एवं ग्राह्य बना देते हैं ।

उपनिषदों में उपलब्ध आख्यानों की यही मनोवैज्ञानिक पृष्ठ-भूमि है इन आख्यानों में कतिपय स्थल पशु- आख्यायिकाओं की पूर्व छाया भी प्रस्तुत करते हैं जिनमें किसी व्यंग्य अथवा नैतिक संदेश की ओर संकेत करने के लिए पशुओं को मनुष्यों की भांति बोलता या व्यवहार करता हुआ व्यक्त किया गया है । उदाहरणार्थ हम देखते हैं कि सत्यकाम को सर्वप्रथम एक बैल ने उसके बाद हंस ने और उसके बाद एक जलपक्षी ने उपदेश किया था।[1] छान्दोग्योपनिषद में हमें पुरोहितों की भांति मन्त्रोच्चारण करने तथा भोजन के लिए भूंकने वाले कुत्ते[2] का सजीव चित्र मिलता है । इन कथाओं एवं पशु आख्यायिकाओं में परवर्ती कथा- साहित्य के बीज देखे जा सकते हैं ।

समवेदिय छान्दोग्योपनिषद महत्वपूर्ण प्राचीन उपनिषदों में से एक हैं । इसमें ज्ञान और उपासना दोनों ही विषयों का बड़ा

---

1. छान्दोग्योपनिषद 4, 1, 5, 7, 8
2. 1. 3 §प्रथम प्रपाठक- द्वितीय खण्ड§

बृहदारण्यक-उपनिषद-प्रथम अध्याय- तृतीय अध्याय ।

सुन्दर विवेचन है । उन्हे सुगमता से समझाने के लिए स्थान - स्थान पर कई आख्यायिकाऐं भी दी गई हैं । जिनसे उन विषयों के हृदयंङ्गम होने में सहायता मिलने अतिरिक्त कई प्रकार की शिक्षाएं भी प्राप्त होती है । सर्व प्रथम प्राणोपासना की उत्कृष्टता करने वाली आख्यायिका है । एक बार जब प्रजापति की सन्तान देव और असुरों में लड़ाई हुई तो देवताओं ने असुरों का पराभव करने के लिए "उद्‌गीथ" को ग्रहण कर लिया । उन्होने शरीर में रहने वाले प्राण- शक्ति , वाणी, चक्षु, श्रोत्र तथा मन का क्रमशः उद्‌गीथ का प्रतीक मानकर उसकी उपासना की किन्तु वे सभी असुरों द्वारा पापविद्ध कर दिये गये ।

अन्ततः देवों ने मुख में रहने वाले प्राण को शरीर में उद्‌गीथ का प्रतीक मानकर उसकी उपासना की और सोचा कि इससे हम असुरों का पराभव कर देंगे । अन्य इन्द्रियों में स्वार्थ की याचना है, मुख में स्वार्थ की भावना नहीं है। मुख जो लेता है, अपने पास कुछ न कुछ रखकर सब में बांट देता है। प्राण भी दिन-रात चलता हुआ, आँख, कान, नाक, आदि सभी इन्द्रियों को सजीव बनाये हुए है। जब असुर मुख में रहने वाले प्राण अथवा "मुख्य-प्राण" को पाप-विद्ध करने पहुँचे , तो ऐसे नष्ट हो गये जैसे कठोर पत्थर से टकराकर

मिट्टी का डेला नष्ट-भ्रष्ट हो जाता है । तात्पर्य यह है कि उच्चघोष से ओंकारोच्चारण करने से पाप का स्पर्श नहीं होता क्योंकि मुख तथा प्राण में स्वार्थ का सम्पर्क नहीं है ।

उद्गीथसंज्ञक ओंकारोपासना से सम्बद्ध आख्यायिका [1] में उपदिष्ट है कि केवल ओंकार का पाठ ही पर्याप्त नहीं, उसका मर्म भी समझना चाहिए । देव मृत्यु-भय से त्रयी-विद्या में जा छिपे और उन्होंने वेद को छन्दों से अपने को आवृत्त कर लिया इस आच्छादन के कारण ही छन्दों को "छन्द" अर्थात आच्छादित करने वाला कहा जाता है । जैसे जल में छिपी मछली को कोई देख ले, वैसे ऋक, साम0, यजु, में छिपे देवों को मृत्यु ने देख लिया । केवल वेदमन्त्रों के पाठ के आधार पर देव मृत्य से बचना चाहते थे, किन्तु यह उनकी भूल थी यह ज्ञात होने पर कि मृत्यु ने उन्हे देख लिया है, वे ऋक, साम0 यजु से ऊपर "स्वर" में - अर्थात भगवान के नाम की धुन में प्रविष्ट हो गये, उसमें जा छिपे । तभी तो ऋचाओं के मर्म को पाकर " ओइम" का दीर्घ स्वर उच्चारण किया जाता है। " ओइम" यही स्वर है, जो

---

1. छान्दोग्य, - प्रथम प्रपाठक - चतुर्थ खण्ड

"अक्षर" है, "अमृत" है, "अभय" है । इसी में लीन होकर देवगण अमृत तथा अभय हो गये ।

उपासक इस भांति ओंकार की महिमा को जानता हुआ अक्षर की स्तुति करता है, वह इस अमृत , अभय, अक्षर स्वर में लीन हो जाता है । उसमें लीन हाकर जैसे देव अमृत हो गये, वैसे वह भी अमृत हो जाता है ।

"स य एतदेव विद्वानक्षरं प्रणौत्येतदेवाक्षरं स्वरममृतम भयं प्रविशिति तत्प्रविश्य यदमृता देवास्तदमृतो भवति।।5।।

उपस्ति चाक्रायण की कथा [1] को समझाने के लिए कही गई है। हभ्य ग्राम के निवासी उषस्ति यज्ञ-यज्ञा.दि कर्मकाण्ड में अतिकुशल थे एक बार कुरुदेश में, वहाँ वे रहते थे, बोलो और पत्थरों की वर्षा होने के कारण ऐसा अकाल पड़ा कि उन्हे कई दिनों तक निराहार रहना पड़ा । जब प्राणसंकट उपस्थित हुआ तो उन्होने एक हाथीवान के अन्न मांगा उसके पास कुछ उड़द थे परन्तु वे भी उच्छिष्ट थे । इसलिए उन्हें देने में उसे कुछ हिचक हुई। परन्तु उषस्ति ने उन्ही का भक्षण कर प्राण रक्षा की जब वह उच्छिष्ट जल देन लगा तो उन्होने " यह उच्छिष्ट" है ऐसा कहकर जलग्रहण करना अस्वीकार

---

1. छान्दोग्य 1. 10-11

कर दिया । इस पर हाथीवान ने शंका की कि क्या झूठे उड़द खाने से उच्छिष्ट भोजन का दोष नही हुआ । तो इस प्रकार उच्छिष्ट जल के लिए निषेध करके उन्होने यह आदर्श उपस्थित कर दिया कि मनुष्य आचार सम्बन्धी नियमों की उपेक्षा भी कभी कर सकता है जब कि उसके अतिरिक्त प्राणरक्षा का कोई अन्य उपाय ही न हो । शौध उद्गीथ का वर्णन करते हैं कि - स्वा अर्थात कुत्ता भी उद्गीथ का ही मानो गान कर रहा है। उद्गीथ के महत्व का ही निदर्शन करते हुए " शौवसामसम्बन्धी उपाख्यान[1] में कहा गया है कि ऋषि मुनि ही नहीं पशु-जगत भी उद्गीथ की उपासना कर रहा है ।

आख्यायिका यह है कि एक बार बक दाल्भ्य या शायद मित्रा का पुत्र ग्लाव स्वाध्याय हेतु- एकान्त स्थल में गया । वहाँ उसने देखा कि एक सफेद कुत्ते के समीप अन्य कुत्ते आकर कहने लगे कि हे भगवन् ऐसा गाना गावों जिससे हमें अन्न प्राप्त हो, क्योकि हम क्षुधार्थ हैं ।

कुत्तों की ध्वनि ऐसी प्रतीत हो रही थी मानों वह कह रहे हों - " ओम" की कृपा से हम खाते हैं, " ओम" की कृपा से हम पीते हैं, देव, वरुण, प्रजापति, सविता हमारे लिए यहाँ अन्न

---

1. छन्दोग्य 1. 12

लाते हैं । अन्न के स्वामिन " ओम" हमें अन्न दीजिए ।" सफेद कुत्ते ने उनसे अगले दिन आने को कहा । ऋषिपुत्र यह वार्तालाप श्रवण कर अगले दिन पुनः वहाँ गया उसने देखा कि जैसे उद्गाता लोग बहिष्पवमान स्तोत्र से प्रभु का स्तुति गान करते हुए सम्मिलित होकर चलते हैं, वैसे ही वे सब कुत्ते एकत्रित होकर बैठ गये तथा "हिंकार" करने लगे, मानों ओंकाररोपासना अथवा उद्गीत बान कर रहे हैं ।

इस प्रकार जो वा गी की हिमा को जानता है उसे ऋषि मुनियों तथा जीव जन्तुओं के " हिंकार" आदि निरर्थक नही प्रतीत होतें जो साम गान की महिमा को जानता है वह अन्नवान हो जाता है । राजा जानश्रुति और रैक्य का उपख्यान [1] भी सरलता से समझने के लिए तथा विद्यादन और ग्रहण की विधि प्रदर्शित करने के लिए है ।

इस आख्यायिका द्वारा श्रद्धा , अन्नदान और अनुद्धत्व§विनय§ आदि का विद्याप्राप्ति में साधनत्व भी प्रदर्शित किया गया है । प्राचीन काल में जानश्रुति पौत्रायण नामक एक राजा था। वह श्रद्धा-पूर्वक दान देता था तथा उसने विभिन्न स्थानों पर धर्मशालाएं बनवाकर

---

1. छन्दोग्य 4. 1-3

उनमें अतिथियों के भोजनादि का यथोचित प्रबन्ध कर दिया था । एक बार राज्य में कुछ हंस§अथवा परमहंस महात्मा§ उसके यहाँ टिके उनमें से एक ने दूसरे से कहा कि - ये भद्रायन । जानश्रुति पौत्रायण का यश अति उज्ज्वल रूप से फैल रहा है उससे टक्कर न ले बैठना, कहीं वह तुझे अपने तेज से भष्म न कर दें । दूसरे ने उत्तर दिया - तुम इस साधारण राजा को ऐसे कह रहे हो जैसे वह गाड़ीवाला रैक्य ऋषि है । पहले ने उस ऋषि के विषय में जिज्ञासा व्यक्त की । तब दूसरे ने उत्तर दिया जैसे द्यूतक्रीड़ा में "कृ" नामक पासे के द्वारा जीतने वाले पास अन्य सभी पासे आ जाते हैं वैसे ही प्रजा को कुछ भी सत्कर्म करती है । वह उस रैक्व को प्राप्त हो जाता है। तथा यह भी सुना गया है कि जो व्यक्ति इस रहस्य को जानता है, वही रैक्य जानता है, वही कुछ जानता है ।

राजा ने भी यह वार्तालाप सुना और प्रातः काल अपने सारथि को रैक्व ऋषि का पता लगाने के लिए भेजा उसने बहुत अन्वेषण के उपरान्त एक गाड़ी की छाया के नीचे दाद को खुज-लाते हुए रैक्य ऋषि को देखा और राजा को सूचित किया । तब जानश्रुति पौत्रायण असंख्या बहुमूल्य रत्न, गौएं इत्यादि लेकर ऋषि के समीप गये और बोले कि इन उपहारों को ग्रहण कीजिए और

निज उपास्य देव का मुझे उपदेश दीजिए । ऋषि ने राजा का तिरस्कार कर लौटा दिया । जानश्रुति पुनः अनेक उपहारों सहित स्वकन्या को भी लेकर उपस्थित हुए । इस बार भी रैक्य उनके उपहार देख कर क्रोधित हुए किन्तु कन्या के मुख की लाज रखने के लिए उपदेश देने को बाधित हो गये, तथा उनको संवर्ग का उपदेश दिया । उनके अनुसार "संवर्ग" अर्थात लय-स्थान दो ही है - " ब्रह्माण्ड" के देवों में " वायु" तथा पिंड की इन्द्रिय में "प्राण" ।

इस संवर्ग की स्तुति के लिए भी एक आख्यायिका का निरूपण किया गया है जिसमे कहा गया है कि " वायु तथा ट प्राण के समान "भोक्ता" बन रहे, " भोग्य" बन कर नही । संसार को अपने अंदर समेटे, दूसरों में न सिमटता फिरे, जुए के "कृत" पासे की तरह ऐसा पासा फेंके कि अन्य सभी पासे इसी में आ जाय । सबको हरा दे, सबको " अन्न" बना दे, " भोग्य " बना दे स्वयं संसार का भोक्ता संसार का राजा बन कर रहे- यह गाड़ीवान रैक्व ऋषि की संवर्ग विधा है ।[1]

जाबालि की कथा एक श्रद्धा और तप का ब्रहमोपासना में अंगत्व प्रदर्शित करने के लिए हैं । कहते हैं कि ऐक बार जाबालि के

---

1. छान्दोग्य 4, 4-9

पुत्र सत्यकाम ने ब्रह्मचर्य धारण करने की इच्छा से अपना गोत्र पूछा उसकी माता ने कहा कि मैं स्वयं तेरा गोत्र नही जानती । मुझे केवल इतना ज्ञात है कि मेरा नाम जाबालि और तेरा नाम सत्य-काम है ।

अतः गुरु के पूछने पर तू अपने को जाबाल सत्यकाम कहना सत्यकाम गौतम हारिद्रुतम के आश्रम में गया और ब्रह्मचर्य दीक्षा की याचना की । मुनि द्वारा गोत्र पूछे जाने पर उसने मातृ-बचनों को दुहरा दिया । उसके स्पष्ट भाषण से गौतम अत्यन्त प्रभावित हुए और उपनयन संस्कार कर दिया । गुरु ने उसे चार सौ दुर्बल एवं कृश गौएं दी और कहा कि तू इनके पीछे जा । उन्हे ले जाते समय सत्काम ने कहा जब तक इनकी संख्या एक सहस्र नही हो जायेगी मैं नही लौटूगां वन में विचरण करते हुए सत्यकाम को, बैल, अग्नि, सूर्य§हंस§ तथा वायु § द्वार। ब्रह्म ज्ञान को उपलब्धि हुई इस प्रकार सत्यकाम अपनी सत्यनिष्ठा के बल पर गुरु उपदेश प्राप्त कर स्वयं आचार्य बन गये और उनके आश्रम में भी अनेक ब्रह्म-चारी दीक्षा पाने लगे । सत्यकाम से शिष्य उपकोशल के हृदय में भी जो ज्ञानोदय हुआ उसका भी आख्यायिका[1] रूप में वर्णन है ।

---

1. वही 4. 10

उपनिषदों में कहीं-कहीं " आत्मा" को "प्राण" अर्थात " जीवन तत्व भी कहा जाता है । ऐसे स्थलों पर उस प्राण को चैतन्य के साथ एकात्म कर दिया गया है । प्राणशब्द एक बचन में" आत्मा" के अर्थ में प्रयुक्त होता है तथा बहुबचन में इन्द्रियों के अर्थ में । साहित्य में कथा यह है कि एक बार प्राण तथा इन्द्रियों में विवाद उत्पन्न हुआ कि कौन श्रेष्ठ है । निर्णय के लिए वे प्रजापति के समीप गये । उन्होने कहा कि महान वही है जिसके न रहने पर आवश्यकता और भी बढ़ जाये । अतः सर्वप्रथम वाणी गई किन्तु शरीर का कार्य यथावत चलता रहा क्योंकि गूंगे भी तो जीवित रहते हैं तदुपरान्त क्रमशः आंख, कान, तथा मन भी चले गये किन्तु जीवन में इससे कुछ बाधा ही उपस्थित हुई, मृत्यु नहीं हुई क्योंकि अन्धे, बहरे, तथा बिचार-शून्य व्यक्ति भी जीवित रहते हैं। अन्ततः सभी इन्द्रियां लौट आयीं अब प्राण की बारी थी किन्तु उसके जाने को उद्यत होते ही अन्य इन्द्रियों की दशा सोचनीय हो गई इससे प्राणी की श्रेष्ठता ही सूचित हुई । यही कारण है कि शेष इंद्रियो को बहुबचन में "प्राणा" तो कहा जाता है किन्तु श्रवासि, मनासि, आदि बहुबचन में नही कहे जाते ।

इस कथा द्वारा वस्तुतः प्राण के समान महान् बनने की प्रेरणा

दी गई । मुमक्षु पुरुषों के वैराग्य के लिए ब्रह्मा से लेकर स्तम्ब-पर्यन्त संसार की गतियों का वर्णन करना चाहिए - इसके लिए श्वेतकेतु तथा जैबलि प्रवाहण के पांच प्रश्नों को आख्यायिका रूप से निबद्ध किया गया है ।

उपनिषदों में प्रायः सर्वत्र ही विश्व तथा अन्तरात्मा में एक निस्सीम एकात्मता की प्रतिष्ठा की गई है।, "तत्वमसि" की अनुभूति इसी एकतत्व का परिणाम है । इसे समझने के लिए "श्वेतकेतु" तथा उद्दालक आरूणि का उपाख्यान [2] संवाद रूप में वर्णित है । विन्टरनित्स [3] ऐसे संवादों को भारतीय मनीषियों की सूक्ष्म - पर्यवेक्षण शक्ति का परिचायक मानते हैं । श्वेतकेतु उद्दालक आरूणि का पुत्र था। पिता ने पुत्र को गुरुगृह जाने का उपदेश दिया। वहाँ

---

1. छन्दोग्य 5.3.-10 यह कथा बृहदारण्यकोपनिषद 6.2 मे भी मिलती है ।

2. वही 6. ।

3. इन संवादों में सबसे आकर्षक वस्तु जो हमें आकृष्ट करती है, वह है, इतने गंभीर, दार्शनिक तथा आध्यात्मिक विषयों में उन प्राचीन भारतीयों की उत्सुक अन्वेषण-वृत्ति- जो सदा §वस्तु§ के बहिरंग तथा सीमित न रहकर वस्तु के अन्तस्तत्व तक पहुँचने के लिए कुतुहलता से भरी होती थी ।"
प्राचीन भारतीय साहित्य, पृ0 198 अनु0-लाजपत राय ।

उसने 12 वर्ष तक शास्त्रों का अध्ययन किया और अपने का सर्वशास्त्रज्ञ समझता हुआ पितृगृह वापस आया । यह देख उसके पिता ने कहा कि तुम अत्यन्त अहंकारी तथा ज्ञाननवोंद्धत हो गये हो किन्तु क्या तुमने वह ज्ञान भी प्राप्त किया, जिसके ज्ञान मात्र से अश्रुत, श्रुत, अमत मत तथा अविज्ञात विज्ञात हो जाता है जैसे मृन्निर्मित कोई भी वस्तु के नाम के अनुसार "घड़ा" मूर्ति कहलाती है ।, उसकी मूल प्रकृति को मिट्टी ही होती है उसे नहीं परिवर्तित किया जा सकता अथवा, लोहे, स्वर्ण या ताम्र की विभिन्न वस्तुए बनाने पर भी जैसे उनकी मूल-प्रवृत्ति अपरिवर्तित रहती है अर्था।। नाम भेद से वस्तु में प्रकृति भेद नही हो जाता , वैसे अश्रुत से श्रुत सम्बन्धिनी विधा भी है । यह श्रवण कर श्वेतकेतु ने उत्तर दिया कि निश्चय ही मेरे गुरू को इसका ज्ञान नही था अन्यथा वे अवश्य ही मुझे इसका उपदेश देते ।

यद्यपि कुछ विद्वान मानते हैं कि आरम्भ में केवल असत्य हीथा किन्तु असत्य से सत्य की उत्पत्ति होना असंभव है, अतः आरम्भ में एक मात्र अद्वितीय सत्य ही था । यह सत् ही सदा आत्मा में प्रविष्ट रहता है , किसी प्राणी की मृत्यु का अर्थ है कि वह पुनः सत् में मिल गया जिस प्रकार एक मधुमक्खी विभिन्न पुष्प-रसों के मिश्रण से मधु - निर्मित करती है किन्तु उनकी विभिन्नता का आभास उसमें नही होता उसी प्रकार मृत्योपरान्त प्राणी उस आदि सत् में लीन

हो जाता है जिससे विभिन्न प्राणियों की दृष्टि एवं विविधता पुनः परिलक्षित नही होती । और इसे ही दर्शन-शास्त्र में आत्मा कहा गया है । श्वेतकेतु ने कहा है कि अभी कुछ और स्पष्ट कीजिए तक पिता ने उसके लिए गूलर का फल तोड़ लाने को कहा उस फल को तोड़ने पर उसके दाने बिखर गयेक फिर एक दाने को तुड़वा कर आरुणि पूछते हैं कि इसमें क्या है ? श्वेतकेतु कहता है, कुछ नही इस पर आरुणि उपदेश देते हैं कि जिस प्रकार फल के अणुभाग से न्यग्रोध वृक्ष की सत्ता का आभास या ज्ञान नही हो सकता, किन्तु उसी गुण से उस विशाल वृक्ष की सत्ता है , उसी प्रकार परमतत्व की सत्ता है जो अप्रत्यक्ष अविज्ञात होते हुए भी सर्वव्यापक है ।

अतः और अधिक स्पष्टीकरण के लिए पिता ने पुत्र को एक नमक की डली दी और उसे पानी में घोलने को कहा । घुल जाने पर लवण की दृश्यमान सत्ता तो समाप्त हो गई किन्तु उससे जल का स्वाद नमकीन हो गया जो उसके अस्तित्व का सूचक था। यही अवस्था हमारे जीवन की है । आत्मा का दर्शन इन स्थूल नेत्रों द्वारा नही हो सकता किन्तु वह सर्वान्तिर्यामी है, सभी में समान रूप से अन्तर्व्याप्त है । अतः उपरोक्त कथानक में अत्यन्त गूढ़ एवं क्लिष्ट विषय को अत्यन्त रोचक एवं सरल शैली में समझाया गया है जिससे बालि बुद्धि भी उसे सरलतापूर्वक ग्रहण कर सके ।

वस्तुतः इन कथानों का उद्देश्य ही उन्हे सुविज्ञेय एवं सरल बनाता है इसी भांति नारद और सनत्कुमार" से सम्बन्धित आख्यायिका [1] परा-विधा की स्तुति के लिए है । सर्वविद्यासम्पन्न तथ कर्तव्यनिष्ठ देवर्षि नारद को भी जब अनात्मज्ञ होने के कारण शो क हुआ तो फिर पापकर्मी एवं अल्पज्ञों की तो बात ही क्या ? आत्मज्ञान से बढ़कर कल्याणकर अन्य कोई साधन नही है - यह प्रदर्शित करने के लिए ही इस आख्यायिका का पतन किया गया है । सम्पूर्ण विज्ञान रूप साधनों की शक्ति से सम्पन्न होने कर भी नारद को आत्मतोष नही हुआ , अतः वे उत्तम कुल विद्या, आचार और नानाप्रकार के साधनों की सामर्थरूप सम्पत्ति होने वाले अभिमान का परित्याग कर श्रेयः साधनकी प्राप्ति के लिए सनत्कुमार के समीप एक साधारण व्यक्ति की भांति गये इससे श्रेयः प्राप्ति में आत्मविद्या का निरतिशय साधनत्व सूचित होता है । सत्कुमार ने नारद को जो उपदेश दिया उसके विश्लेषण करते हुए प्रो० सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार का कथन है - " वर्तमान मनोवैज्ञानिक मन के तीन विभाग करते हैं , "ज्ञान", "इच्छा", "कृत" जिन्हे अंग्रेजी में जानना

---

1. छान्दोग्य 7. 1-26

2. प्रो० सत्यव्रत " एकादशोपनिषद §प्रथम भाग§, पृ0 603-604 प्रकाशक विजय कृष्ण लखनपाल एण्ड कम्पनी देहरादून ।

कहते हैं । ऋषि ने इस उपाख्यान में " मन, "संकल्प", "चित्त", शब्द का इन्ही तीनों के लिए प्रयोग किया है इस उपदेश में ऋषि एक श्रृंखला से चलते हुए पहले नारद को उच्चतम" मानसिक-स्तर§ पर ले गये है, फिर वहाँ से "भौतिक-स्तर" पर ले आये हैं, क्योंकि मानसिक का आधार भौतिक ही तो है । फिर भौतिक से उठकर वे नारद को " आत्मिक-स्तर" पर ले गये जिसमें सत्य, "विज्ञान", "मति", "श्रद्धा", निष्ठा. " कृति", सुख", भूमा" अहंकारादेश"- "आत्मादेश" का वर्णन है । और इस "आत्मिक स्तर से फिर उसे भौतिक-स्तर पर ले आये हैं ।

इस कथा में प्रजापति, इन्द्र तथा विरोचन की कथा विद्या के ग्रहण और दान करने की विधि प्रदर्शित करने एवं विद्या की स्तुति करने के लिए है । इसी प्रकार सम्पूर्ण छान्दोग्योपनिषद अनेक आख्यानों एवं उपाख्यानों से परिपूर्ण है जो किसी गूढ़ विषय के सरलीकरण अथवा किसी उपदेश प्रेषण के कारण महत्वपूर्ण है ।

उपनिषद भी सामवेद के तवलकार ब्राह्मण का भाग है ।

---

1. केनेषितं पतति प्रेषितं मनः केन प्राणः प्रथमः प्रैति युक्तः
   केनेषितां वाचमिमां वदन्ति चक्षुः श्रोत्र क उ देवो युनक्ति।।

इस उपनिषद का प्रथम मंत्र "केन" प्रश्नवाचक शब्द से प्रारम्भ होता है, इसी कारण इसे केनोपनिषद की संज्ञा से अभिहित किया जाता है इसमें बताया गया है कि वह परंतत्व इंद्रियों का इन्द्रिय एवं इन्द्रियों की पहुँच के बाहर है । वह परमतत्व समस्त देवताओं का भी देवता तथा समस्त उपाख्यानों का भी उपास्य है । उस परमरहस्य का ज्ञाता समस्तपापों से मुक्त होकर शाश्वत अमृत्व को प्राप्त करता है ।

ब्रह्म ने देवताओं के लिए विजय प्राप्त की किन्तु देवता "ब्रह्म" को विस्मृत कर उसे अपनी महिमा समझाने लगे । ब्रह्म को जब यह विदित हुआ तो वे यक्ष रूप में देवताओं के सम्मुख प्रकट हुए देवताओं ने अग्नि को उसका पता लगाने भेजा किन्तु यक्ष के सम्मुख वह प्रभावहीन होकर एक तिनके को भी न जला सका और निराश लौट आया था।

देवताओं ने पुनः वायु को प्रेषित किया किन्तु वह भी यक्ष द्वारा प्रदत्त तिनके को न हिला सका और यक्ष को जाने बिना लौट आया । अब देवताओं ने इन्द्र को भेजा किन्तु उसको देखते ही तिरोहित हो गया । इन्द्र ने उसे ढूढ़ना आरम्भ किया तो उसे स्वर्णालंकारों से सुसज्जित तथा हिम-धवल "उमा" के दर्शन हुए उमा ने बताया कि वह यक्ष वस्तुतः ब्रह्म था और जो विजय एवं महिमा

है वह उसी की है, देवताओं की नहीं । तब देवताओं को ज्ञात हुआ कि यक्ष तो " ब्रहम" था ।

वायु, अग्नि तथा इन्द्र अन्य देवताओं की अपेक्षा उत्कृष्ट हैं क्योंकि सर्वप्रथम इन्होंने ही ब्रहम के विषय में जाना तथा इन्द्र सबसे बढ़ा चढ़ा है । क्योंकि उसने निकट से, सर्वप्रथम जाना कि चेतन-जगत् भी ब्रह्म के कारण ही महिमाशील है । यह "आधिदैविक" अर्थात देवसम्बन्धी उपाख्यान है । इस उपाख्यान का तात्पर्य है कि जड़ चेतन की शक्ति ब्रहम के कारण है।

अग्नि तथा वायु जड़ - जगत के प्रतिनिधि है । अग्नि दृश्य-मान तथा वायु अदृश्य जड़ जगत का तथा इन्द्र जीवात्मा का नाम है। अतः वह चेतन जगत का प्रतिनिधि है । आध्यात्म अर्थात मनुष्य शरीर विषयक उपाख्यान का कथन है जो यह प्रतीत होता है कि मन अति दूर- दूर जाता है, तथा प्रतिक्षण या तो भूत का स्मरण करता है अथवा भविष्य के नूतन संकल्प करता है- वह ब्रहम ही है ब्रहम ही के कारण होता है । वह ब्रहम भक्तियोग्य है, जो उसकी उपासना एवं भक्ति करता है उसकी सभी लोग भक्ति करने लगते हैं । इस विधा का यथार्थस्वरूप यह है कि हमारा जीवन "तप" दम" और कर्म की नींव पर आधारित " सत्य" की वह इमारत हो जिसे

"ज्ञान" तथा विज्ञान के सम्मिश्रण से तैयार किया गया हो जो ब्रह्म - विधा को इस रूप में जानता है वह पाप का अपहरण करके अनन्त उत्तम स्वर्गलोक में प्रतिष्ठित होता है ।

अतः "ज्ञान" तथा "विज्ञान" का सत्य में समन्वय ही ब्रह्म विधा का यथार्थ रूप है यहाँ ब्रह्म को केवल पात्रों तक सीमित न रहकर "कर्म" में - जीवन में - ला उतारने, उसे नींव बनाकर जीवन की सत्यमय इमारत को उस पर खड़ा करने का निर्देश दिया गया है । उपनिषदों में आत्मज्ञान को जीवन का परमध्येय कहा गया है । यह आत्मज्ञान बहुमूल्य रत्न और गाएं देखकर नही अधिगत किया जा सकता है इसे प्राप्त करने के लिए ब्राह्मण क्षत्रिय के समक्ष तथा धनी निर्धन के समक्ष नतमस्तक हो जाता है । इसका उदाहरण कठोपनिषद [1] में उपलब्ध नचिकेता का उपाख्यान है । वाजश्रवस मुनि ने पुत्र नचिकेता ने जब अपने पिता को वृद्ध एवं कृश गौएं दान करते देखा तो उसका चित उद्विग्न हो गया और उसने पूछ ही लिया कि "हे तात", मुझे किसे देंगे," ऋषि ने क्रोधित होकर कहा कि तुझे मृत्यु को दूँगा । नचिकेता पिता के बचनानुसार यमालय पहुँच गया । यम की प्रतीक्षा में वह तीनदिन निराहार बैठा रहा । उसकी इस निष्ठा एवं भक्ति से यम प्रसन्न हुए

---

1. कठोपनिषद 1.-5

और तीन वर प्रदान किए । प्रथम वर से उसने पिता के क्रोधशांति का अनुरोध किया द्वितीय वर से त्रिणाचिकेश अग्नि का वर दिया तथा तृतीय वर में नचिकेता ने जिज्ञासा व्यक्त की कि पृथ्वी पर अभी भी यह सन्देह बना हुआ है कि मृत्यु के उपरान्त प्राणी की कुछ सत्ता रह जाती है । अथवा नहीं अत : इसी शंका का समाधान करें ।

यम इस प्रश्न को सुनकर कुछ संकोच में पड़ गये और नचिकेता को विभिन्न सांसारिक प्रलोभन दिये किन्तु नचिकेता ने प्रत्येक वैभव को ठुकरादिया क्योंकि उसे ज्ञात था कि ये सब क्षणिक हैं । जीवन कितना ही लम्बा क्यों न हो किन्तु एक दिन उसे मृत्यु-भाजन होना ही पड़ेगा । इसीलिए वह केवल यह जानना चाहता था कि मनुष्य मर कर भी मरता है या नहीं9. अन्त में नचिकेता के बालहठ एवं उत्कट जिज्ञासा को देखकर यम को भी उपदेश देना ही पड़ा इस भांति इस उपाख्यान का आधार लेकर " आत्मज्ञान" का सुन्दर विवेचन इस उपनिषद में हुआ है ।

उपनिषद में बृहदारण्यक उपनिषद की अत्यधिक महिमा है । यह शुक्ल यजुर्वेदी उपनिषद है । आकार में बृहत होने तथा अरण्य में अध्ययन होने के कारण इसको बृहदारण्यक कहा जाता है । केवल

आकार में ही यह बृहद नहीं है, किन्तु अर्थ में भी बड़ा है, इस लिए सर्वांश में इसका यह काम समीचीन है। यही कारण है कि भगवान शंकराचार्य ने जितना विषद और विवेचनापूर्ण भाष्य इस उपनिषद पर रचा वैसा किसी दूसरे पर नहीं। मैक्दानल का कथन है कि " मानवीय चिन्तन के इतिहास के सर्वप्रथम" बृहदारण्यक-उपनिषद" में ही ब्रह्म अथवा पूर्ण तत्व का ग्रहण कर उसकी यथार्थ बंदना की गई है।

यह उपनिषद अनेक महत्वपूर्ण उपदेशों तथा तत्वज्ञान की ही बातों से ओत-प्रोत है इन्हे अभी स्पष्ट करने के लिए कहीं संवाद रूप में कथन है तथा कहीं आख्यानों एवं कथाओं का आश्रय लिया गया है। सर्वप्रथम प्राण की उत्कृष्ठता सूचित करने वाली देवासुर-कथा [1] है। संक्षिप में कथा यह है कि जब देव और असुरों में लड़ाई हुई तो देवों ने उद्गीथ को आधार बनाया जिससे विजय प्राप्त की जा सके। उन्होने वाणी, प्राण, चक्षु, श्रोत्र, तथा मन को क्रमशः उद्गाता बनाकर भेजा किन्तु उनकी स्वार्थ भावना को जानकर असुरों ने उन्हें पापविद्ध कर दिया। जिससे देव सफल न हुए। अन्त में

---

1. 1.3. यहीं कथा छान्दोग्य 1.2 में भी उपलब्ध होती है। देखें पीछे - केन 3, तथा प्रश्न 2-3 में भी ऐसा ही वर्णन पाया जाता है।

देवताओं ने प्राण को भेजा असुरों ने इससे भी पापविद्ध करना चाहा किन्तु स्वार्थहीन प्राण के समक्ष से नष्ट होगये इससे देवताओं की विजय हुई । जो इस रहस्य का ज्ञाता है । वह आत्मा के संसर्ग में आ जाता है तथा उससे द्वेष करने वाले शत्रु परास्त हो जाते हैं यहाँ देवों को मनुष्य की धार्मिक कृतियाँ तथा असुरों को स्वार्थ-पूर्ण प्रवृत्तियों का प्रतीक मानकर मनुष्य देह के अन्दर होने वाले उस संग्राम का संकेत किया है जो जन्म से ही मनुष्य के भीतर होता रहता है । आसुरी वृत्तियां सदैव दैवी वृत्तियों को बाहर निकालने की चेष्ठा में लग्न रहती है । यही आख्यायिका का अभिप्राय है ।[1]

मनुष्य को प्राणों की भाँति स्वार्थरहित होकर लोककल्याण करना चाहिए स्वार्थपरायण मनुष्य इन्द्रियों के समान कृति कभी नहीं हो सकते । जो परोपकारी हैं वे प्राणों की भाँति अपना कर्तव्य पूर्ण करने में सफल होते हैं । उद्गीथ देवता प्राणी ही हैं वागादि नहीं इसी बात को दृढ़ करने के लिए एक आख्यायिका का कथन है ।

चिकितायन के प्रपौत्र ब्रहमदत्त यज्ञ में सोम-भक्षण करते हुए कहा कि- यदि अगस्य तथा अंगिरस नामक प्रधान प्राण में वाक्संयुक्त

---

1. बृहदारण्यक - 1.3

प्राण से अतिरिक्त देवता द्वारा उद्गान किया जो तो यह सोम मेरा मस्तक गिरा दे ।

इससे यह निष्कर्ष होता है कि उसने प्राण तथा वाणी से ही उद्गान किया था। इन आख्यायिकों द्वार. प्राण की उत्कृष्टता ही सूचित की गई है ।

"आत्मसत्य" का यथार्थस्वरूप निरूपित करने के लिए अजातशत्रु तथा गार्ग्य बालाकि" की कथा [1] कही गई है । वस्तुतः आत्म - दर्शी अजातशत्रु प्रारम्भ में श्रोता है तथा अविद्याविषय को ही आत्मा समझने वाला गार्ग्य ब्राह्मण वक्ता है । प्राचीन मनीषियों का भी कथन है कि अति गंभीर ब्रह्मविद्या पूर्वपक्ष रूप से तथा सिद्धान्त आ- ख्यायिका रूप से निरूपित होने पर ही अधिक सरलता से प्राप्त होता है ।

एक बार गार्ग्य बालाकि नामक अहंकारी ब्राह्मण विद्वान काशी नरेश अजातशत्रु के समीप आया और बोला कि मैं आपको "ब्रह्म- विद्या" का उपदेश दूँगा राजा अत्यन्त प्रसन्न हुआ । गार्ग्य ने उपदेश

---

1. वहीं 2. 1-3

कौषीतकि-उपनिषद 4. 1.-20 में भी यह आख्यायिका प्राप्त होती है।

देना आरम्भ किया कि - यह जो आदित्य में "आदित्य-पुरुष" है, मैं तो उसी को ब्रह्म मानकर उपासना करता हूँ, तुम भी ऐसा ही करें । राजा ने उत्तर दिया कि नहीं5 नही मैं तो इसकी एक श्रेष्ठ भौतिक पदार्थ के साथ मैं उपासना करता हूँ । और जो इसी प्रकार उपासना करता है वह सब भूतों में श्रेष्ठ हो जाता है । तदन्तर बालाकि ने क्रमशः चन्द्र-पुरुष, विद्युत - पुरुष, आकाश पुरुष, वायु पुरुष, अग्नि पुरुष, जल पुरुष, तथा प्रतिबिम्ब पुरुष का ब्रह्म बताकर उसी की उपासना करने का उपदेश दिया । किन्तु अजातशत्रु ने बड़ी विद्वता से उसका खण्डन कर दिया ।

गार्ग्य बालाकि ने पुनः कहना प्रारम्भ किया कि मै ता §नाद" पुरुष, छाया पुरुष, आत्म पुरुष" को ही ब्रह्म मानकर उसकी उपासना करता हूँ, तुम भी ऐसा ही करो । किन्तु अजात-शत्रु ने सबका भी अत्यन्त युक्तियुक्तपूर्ण ढंग से खण्डन कर दिया।

अन्त में बालाकि को मौन हो जाना पड़ा और उन्होने कहा कि इससे अधिक मैं नही जानता, अतः अब आप ही मुझे दीक्षा दीजिए । यद्यपि क्षत्रिय का ब्राह्मण को उपदेश देना विपरीत बात ही फिर भी अजातुशत्रु सहमत हो गया और वे एक सोत हुए पुरुष के निकट पहुँचे । उस व्यक्ति को विभिन्न सम्बोधनों से पुकारने

पर भी नही जगाया जा सका किन्तु जब हाथ से िलाया गया तो वह उठकर खड़ा हो गया ःब अजातशत्रु ने पूछा यह "विज्ञानमय पुरुष" जब सो रहा था तो कहाँ था और अब जगाने पर कहाँ से आ गाा ? गर्यि की समझ में इसका कोई उत्तर नही आया।

आजात शत्रु ने कहना प्रारम्भ किया- यह विज्ञानमय पुरुष सो रहा था तो इंन्द्रियों के ज्ञान को अपने में समेट कर, हृदय के भीतर के आकाश में जा सोया था। उस समय स्वप्न लीला से यह जहाँ- जहाँ विचरण करता है, वे ही इसके लोक होते हैं। यह विज्ञानमय पुरुष इन्द्रियों को लेकर अपने शरीर में इच्छानुसार भ्रमण करता है। स्वप्न के बाद पुरुष सुसुप्तावस्था में जा पहुँचता है, जहाँ उसे कुछ ज्ञान नही रहता। हृदय से निकली " हिता§ "पुरीतत§" नाड़ियों में होता हुआ वह " सुषुमना" नामक नाड़ी में जा सोता है। जैसे- कोई कुमार, महाराजा, अथवा, महा-ब्राहमण आनन्द की पराकाष्ठा में पहुँचकर सोए। इसी प्रकार" सुषुप्तावस्था" में यह विज्ञानमय पुरुष-धन आत्मा होता है। सुषुप्तावस्था में यह आत्मा इस महान आत्मा के पास जा पहुँचता है, यह विज्ञान-धन इस माहन विज्ञानधन के निकट जा पहुँचता है। तथा केवल आनन्द का अनुभव करता है, यही "ब्रहम" की झाकी है।

मकड़ी अपने तन्त से नीचे-ऊपर चढ़ती उतरती है, वैसे ही पिण्ड का विज्ञानघन आत्मा जगत, स्वप्न, सुषुप्ति में विज्ञान रूपी तन्तु के सहारे चढ़ता उतरता है, जैसे अग्नि से सूक्ष्म स्फुलिंग निकलते हैं, इसी प्रकार विज्ञान घन आत्मा से इन्द्रियों का ज्ञान फूटा पड़ता है । जैसे पिंड में विज्ञान घन " आत्मा है" वैसे ब्रह्मांड में विज्ञान घन " परमात्मा" है । वहीं ब्रह्म हैं । उसी के सब लोक, सब देव, सब भूत प्रस्फुटित होते हैं । उपनिषद में उसका नाम सत्यस्य सत्यम सत्य का सत्य है, क्योंकि पिंण्ड का आत्मा सत्य है किन्तु ब्रहमाण्ड का आत्मा, आत्मा का आत्मा है, अतः वह सत्य का सत्य है । [1]

उपनिषद में याज्ञवल्क्य- मंत्रीय -संवाद [2] रूप से निबद्ध

---

1. इसी प्रकार का पर्णन वृहदरण्य 3-9-10 से।78 तक पाया जाताहै जिसमें याज्ञवलक्य तथा विदग्ध शाकल्य की प्रश्नोत्तरी है छान्दोग्य5,11-24 में इसी प्रकार की कथा आती है, जिसमें कैकेय अश्वपति के निकट प्राचीन साल औपमन्यु आदि छः ऋषि"वैश्वानल" संबंधी उपदेश लेने गये।आत्मा की जगत आदि अवस्थाओं का वणन माण्डूक , छान्दोग्य 8. 12 तथा वृहदारयण्य 4-2 में भी ऐसा ही है ।

2. इसी उपनिषद के 4 अध्याय 5 ब्राहमण में इसकी पुनः-वृत्ति है ।

आख्यायिका द्वारा आत्मा की अखण्डता , अद्वितीयता , व एक
सरसता, सर्वव्यापकता का सिद्धान्त प्रतिपादित किया गया है ।
याज्ञवल्क्य तपस्या-हेतु गृहत्यागकर वनगमन करना चाहते हैं, जाने
से पूर्व वे अपनी दोनो पत्नियों मैत्रेयी और कात्यायनी के मध्य धन
का बंटवारा करना चाहते हैं । इस अवसर पर मैत्रीय प्रश्न करती
है कि यह यदि समस्त बसुन्धरा की सम्पत्ति मुझे मिल जाय तो क्या
मैं अमर हो सकती हूँ । याज्ञवल्क्य उत्तर देत हैं- नहीं, सम्पत्ति
प्राप्त कर तुम अमर नही हो सकती । सम्पत्तिशालो की भांति
जीवन अवश्य व्यतीत हो सकता है किन्तु अमरत्व नहीं प्राप्त हो सकता
मैत्रेयी पुनः कहती है कि मुझे सम्पत्ति दान की अपेक्षा उस तत्व
का ज्ञान दान कीजिए जिसमें मैं अमरत्व प्राप्त कर सकूँ । इस अवसर
पर याज्ञवल्क्य अमृत्व प्राप्त का उपदेश देते हैं पति पत्नी के लिए
भी नही होता अपितु अपने लिए प्रिय होता है। पत्नी पति के
लिए प्रिय नही होती अपितु अपने लिए प्रिय होती है । पुत्र, पुत्र
के लिए प्रिय नही होता अपितु अपने स्वार्थ के लिए प्रिय होता है,
लोक, लोक के लिए प्रिय नही होता अपितु अपने लिए प्रिय होता
है । देवताओं के सुख । के लिए देवता प्रिय नही होते अपितु अपने
सुख के लिए देवता प्रिय होते हैं, इसलिए आत्मा का दर्शन, श्रवण
मनन, निदिध्याशन करना चाहिए ।[1] जिस आत्मा के लिए सब प्रिय

होता है उस आत्मा के लिए देखने से, सुनने से, समझने से और जानने से सब गांठे खुल जाती है।[1] इस प्रकार इस आख्या-यिका में अनेक गूढ़ तत्वों को समझाया गया है इसी भांति जनक की सभा में याज्ञवलक्य के विवाद से सम्बन्धित आख्यायिका[2] विज्ञान की स्तुति के लिए और उसके उपाय का विधान करने के लिए है। दान इसका प्रसिद्ध उपाय है और शास्त्रों में भी विद्वानों ने इसे ही देखा है, क्योंकि दान से प्राणी अपने प्रति विनीत हो जाते हैं। यहाँ शास्त्र का प्रतिपाद्य विषय दूसरा होने पर ही यह आख्यायिका विद्या प्राप्ति की उपाय भूत दान का प्रदर्शित करने के लिए आरम्भ की गई है।

विदेहराज जनक ने बहुदक्षिणा सम्बन्धी यज्ञ किया उसने कुरु और पांचाल देशों के परमप्रसिद्ध विद्वान ब्राह्मण एकत्रित हुए तब जनक के मन में यह जिज्ञासा उत्पन्न हुई कि इन विद्वानों में

---555

1. मैक्डानल ने इसी स्थल को लक्ष्य कर कहा है कि मानवीय चिन्तन के इतिहास में सर्वप्रथम बृहदरण्य उपनिषद में ही ब्रह्म अथवा पूर्ण तत्व को ग्रहण करके उसको यथार्थ अभिव्यंजना हुई है।
2. 3-1-9

कौन अति- ब्रहम वेत्ता है, यह सोचकर उन्होने एक सहस्र गौवों के सींगों में 10-10 तोला सोना बंधवा दिया और उद्घोषणा की कि जो भी सर्वश्रेष्ठ ब्रहमज्ञानी हो वह इन गौवों को अपने घर ले जाय ।

ब्राहमणों में जब किसी का साहस नहीं हुआ तो याज्ञवल्यक ने अपने एक शिष्य को गायें हाक ले जाने की आज्ञा दी । यह देखकर अन्य ब्राहमण अत्यन्त क्रुध हुए और याज्ञवल्यक पर ब्रहमवेत्ता होने का दम्भ आरोपित कर विभिन्न प्रश्न करने लगे ।

सर्व प्रथम विदेहराज जनक के पुरोहित अश्ववल्य ने विभिन्न विषयोंपर आठ प्रश्न पूछे और जब याज्ञवल्य नके उनके सभी प्रश्नों का समाधान कर दिया तो शान्त होकर बैठ गये । अश्वकल ने "मुक्ति तथा अति मुक्ति" के सम्बन्धं में प्रश्न किऐ थे अब जरत्कारू -गौत्री अतिमान ने "ग्रह" तथा अतिग्रह" के सम्बन्ध में प्रश्न किए और उनको भी शान्त होना पड़ा तदन्तर लह्य-वंशोत्पन्न भुज्यु के प्रश्न का भी याज्ञवल्यक ने ठीक उत्तर दिया फिर उषस्तु चाक्रायण " आत्मा" के सम्बन्ध में पूछने लगे उसका भी विवेचन याज्ञवल्य ने कर दिया इसी भांति कुषीतकी की पुत्र कहोल, गार्गी, उदालक

आरूणि कथा पुनः गार्गी ने अनेक प्रश्न पूछे उन प्रश्न के शान्त हो जाने पर जब कोई अन्य ब्राहमण नही खड़ा हुआ तो विदग्ध शाकल्प और उसने आठ पुरूषों तथा आठ देवताओं आदि विषयों पर पर्याप्त ज्ञान चर्चा की । जब याज्ञवल्यक ने अन्त में एक प्रश्न "औपनिषद पुरूष " के विषय में किया तो शाकल्य निरूत्तर हो गया और वहीं लज्जा सेके कारण उसका प्राणान्त हो गया इसके अंनन्तर अन्य किसी को भी कोई प्रश्न करने का साहस नही हुआ अन्त में याज्ञवलक्य ने ही प्रश्न किया कि मृत्यु जब मनुष्य को समूल नष्ट कर देती है तो यह किस मूल से पुनः जन्म लेता है? याज्ञवलक्य के इस प्रश्न को सुनकर स्तब्धता छा गई और किसी से कोई उत्तर न बन पड़ा । यह देख याज्ञवलक्य ने स्वयं ही उत्तर दिया -"हे ब्राहमणों वह " आत्मा" "जात" ही है, सदा बना हुआ है , वह कभी उत्पन्न ही नही होता , फिर इसके पुनर्जन्म का प्रश्न ही नही उपस्थित होता । वह " आत्मा" विज्ञानमय है, आनन्दमय है, ब्रहम है - वही धन आदि का दान देने वाले कर्मकाण्डियों तथा स्थिर- चित, ब्रहमज्ञान में रत " ज्ञानकाण्डी" का परम धाम है ।

याज्ञवलक्य ने जनक को विश्व के आधारभूत तत्वों का विशद उपदेश दिया जो प्रत्येक दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं । ऐसे स्थलों पर

प्रायः " जागरित, स्वप्नमय, सुषुप्तिमय अवस्थाओं में से आत्मा की गति अगति- प्रत्यावृत्ति के प्रत्यक्ष उदाहरणों द्वारा मृत्यु एवं परलोकमुक्ति से पुनरावृत्ति के स्वानुभव की उपनिषदों के कवि उपदेशों शुक्तियों द्वारा सिद्ध नहीं करने लगते उसे वैयक्तिक अनुभव परीक्षण पर ही छोड़ देते हैं ।[1] वृहदारण्यक[2] की इस परीक्षणात्मता पर डाउसन कितना मुग्ध है ।

उपनिषदों की एक अपनी विशिष्टता है। तैत्तिरीय उपनिषद में गुरु शिष्य को अतीव मार्मिक शिक्षा देता है, -" सत्य बोलो, धर्माचरण करो, स्वाध्याय-प्रमाद न करो इत्यादि । कुछ नितान्त उपयोगी उपदेश हैं । वृहदारण्यक उपनिषद में एक सुन्दरतम नीतिकथा[3] है, जिसमें कर्तव्याकर्तव्य का विवेचन है ।-

---

1. विण्टरानित्स, प्राचीन भारतीय इतिहास, अनु० लाजपतराय पृष्ठ 201-202 "यह परिच्छेद भारतीय साहित्य में तो अंयत्र मिलता नहीं, स्वानुभव की वही भव्यता, वही सहृदयता, संवेदना की वही संक्रमणीय-शक्ति क्या विश्व साहित्य में भी कहीं और भी मिल सकती है? -विण्टरनित्स, पृ० 202
2. 4. 3-4
3. वृहदरण्य 5. 2

प्रजापति ने देवों को "द" अक्षर का उपदेश दिया है, और पूछा समझ गये, देवों ने कहा , हाँ, समझ गये, आपने हमें "दाम्पत्य" अर्थात इंद्रियों का दमन करों " यह उपदेश दिया । अब प्रजापति के समीप मनष्य पहुँचे उन्हें भी "द" अक्षर का उपदेश दिया । और उसका अर्थ पूछा । मनुष्यों ने कहा आपने हमें "दत्त" अथात दान दो - यह उपदेश दिया। हाँ तुम ठीक समझा ।

अन्त में असुर प्रजापति के निकट पहुँचे उन्होंने कहा कि अब हमें भी उपदेश दीजिए उन्हें भी उसने "द" अक्षर का उपदेश दिया और पूछा समझ गये? असुरों ने कहा, हाँ, समझ गये, आपने हमें "दयध्वम" अर्थात दया करों । - यह उपदेश दिया । प्रजापति बोले हाँ तुम समझ लिया । प्रजापति ने देवों- मनुष्य-असुरों को जो उपदेश दिया, उसी का विद्युत की कंठ में "द-द-द" का उच्चारण करके मानव दैवी-वाणी अनुवाद कर रही है । मानों वह संसार में कड़क कड़क कर कह रहो है - " दाम्यत-दत्त-दयध्वम- इन्द्रिय-दमन करों, संसार की वस्तुओं का संग्रह न करते हुए दान दो और प्राणी मात्र पर दया करों । संसार की सम्पूर्ण शिक्षा इन तीन में समा जाती है, इसलिए इन तीन की ही शिक्षा दें -दम, दान, दया, - "त्रय शिक्षेत दमं दानं दयामिति ।

मनुष्यों की कमजोरी दान न देने में है, असुरों की कम-जोरी दया न करने में है , देवों की कमजोरी इन्द्रियों की शिथि-लता में है - अतः अपने हृदय की कमजोरी तीनों "द" अक्षर से समझ गये । उपनिषद में मानवीय नैतिक तथ्यों का भी पूर्ण उपदेश दिया गया है। इसी भांति कौषीतकि, मैत्रायणी, ऐतरेय, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक तथा अन्यानेक, उपनिषदों में भी आख्यान उपलब्ध होते हैं ।

आख्यानों के आधार पर ह कह सकते हैं कि उपनिषदों में उपलब्ध इन आख्यानों का उपदेश उपनिषदों के " आत्मा" एवं " परमात्मा" विषयक जटिल विषयों को अधिकाधिक सरल एवं सुबोध बनाना है इसमें संदेह नहीं है कि जो - ब्रह्मज्ञान अत्यन्त विज्ञ एवं धुरन्धर शास्त्रवेत्ताओं को भी सरलता से हृदयगंम्य नही होता था। इसे अल्पबुद्धि एवं अल्प वयस्क शिष्यों को समझाने के लिए अति कठिन परिस्थिति का सामना करना पड़ता होगा और ऐसे समय उन आचार्यों के समक्ष इन विषयों को सरलता से समझाने का एक मात्र आलम्बन आख्यान ही थे । अतः इन आख्यानों का मनोवैज्ञानिक प्रभाव शिष्य पर अवश्य पड़ता था और जो विषय सहज गम्य नही होते थे वे अनायाश ही स्पष्ट हो जाते थे। उपनिषदों में यत्र-तत्र विकीर्ण आख्यान इसी मनोवैज्ञानिक दृष्ट का अवलम्बन प्राप्त कर उपनिषद

के अभिन्न अंग बन गये प्राचीन ऋषि-मुनियों ने तपा परिपूत हो जो आदर्श एवं विचार प्रतिष्ठित किए उनका प्रयोजन मानों-कल्याण ही था । भावी सन्तति इन्ही उच्चादर्शों एवं भावनाओं से युक्त होकर जीवन में आदर एवं प्रतिष्ठा प्राप्त करें, यही शिक्षा एवं विशेषता इन आख्यानों की है ।

-----x-----

तृतीय - अध्याय

: ऐतिहासिक कथाओं का अध्ययन :

तृतीय - अध्याय

: ऐतिहासिक कथाओं का अध्ययन :

संस्कृत साहित्य में ऐतिहासिक कथाओं के रूप में महाभारत का स्थान महत्वपूर्ण है । इस कथा में एक लाख श्लोकों सहित यह "ईलियड" और " ओडेसी" से सम्मिलित रूप का आठगुना है । यह शान्तरस प्रधान सुहृतिसम्मित काव्य है, जिसमें व्यासदेव ने भारतीय संस्कृत के ग्राह्य आध्यात्मिक तथा व्यावहारिक रूप का अंकन पाण्डव-कौरव के संघर्ष के व्याज से किया है । इसी से यह मानवों के लिए सदाचार की सौम्य शिक्षा का एक विराट कोश है । महाभारत आचार, नीति कथा, लोकव्यवहार का विशाल भण्डार है ।[1] कौरव-पाण्डव के युद्ध की मूल कथा के साथ इसमें वैदिक कालीन लोक कथाएं, पुराकथाएं और कविताएं, वीर पुरुषों और साहसी कृत्यों से सम्बन्धित वर्णनात्मक गीत, लोक - साहित्य की धारा तथा नैतिक उपाख्यान और ऋषि परम्परा की

---

1. बलदेव उपाध्याय, संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ0 23
प्रकाशक - शारदा संस्थान, वाराणसी ।

कविता के सूक्त-वचन, ये सभी सम्मिलित है यही कारण है कि भारतीय दृष्टिकोण के अनुसार यह पुरुषार्थ- चतुष्टय-साधक, सर्वकार्य-साधक तथा सर्वपरिताप-नाशक है । इसमें भारतीय संस्कृति का उत्कृष्ट रूप प्राप्त होता है । शान्तिमय जीवन की प्रेरणा प्रदान करने वाला यह महाकाव्य जीवन की समस्त जटिल समस्याओं का समाधान करने वाला है इसके उपाख्यान तत्कालीन सामाजिक जीवन के आचार-विचारों का स्पष्ट दिग्दर्शन कराते हैं । तथा इस विदुरनीति लोक-व्यवहार के आदर्श नियम उपस्थित कर दिये । वस्तुतः महाभारत जीवन संग्राम की विधाओं का शिक्षक है । अपने असंख्य कल्पित एवं इतिहासिक उपाख्यानों द्वारा शान्ति और अशान्तिकालीन बातों, तत्वों और सिद्धान्तों को हमारे समक्ष उपस्थित करता है विभिन्न धार्मिक उपदेशों को समझाने के लिए ही बीच- बीच में उपाख्यान जोड़े गये हैं । कुछ प्रसिद्ध उपाख्यान हैं -§1§ शकुन्तलोपाख्यान, §2§ मतस्योपाख्यान, §3§ ययातिउपाख्यान, §4§ रामोपाख्यान, §5§ शिव उपाख्यान§, §6§ सवित्री उपाख्या, §7§ नलोपाख्यान आदि । इन समस्त आख्यानों के अतिरिक्त गाथाएं भी मिलती हैं जैसे समुद्र मन्थन की कथा, §2§ रूरू की कथा, §3§ जन्मेजय का नागयज्ञ, §4§ कद्रू विनियता की कथा, §5§ च्यवन ऋषि तथा

सुकन्या की कथा, §6§ इन्द्र वृत्तासुर की कथा, आदि । इन पौराणिक कथाओं के बारे में विण्टरनित्स का मत है कि ब्राह्मणों ने अपना प्रभुत्व स्थापित करने के लिए ये गाथाएं गढ़ ली थी । इन गाथाओं के अतिरिक्त कुछ ख्यातियां भी मिलती हैं -§1§ मनु प्रलय को कथा, §2§ मृत्यु कथा, §3§ अग्नि प्रणय की कथा, §4§ आगस्त्य की कथा, §5§ विश्वामित्र तथा वशिष्ठ के संघर्ष की कथा §6§ नचिकेता की कथा, §7§ उद्दालक अरुणी को कथा, आदि । इन ख्यातिगों का उद्देश्य ब्राह्मणों का क्षत्रियों पर प्रभुत्व स्थापित करना था ।

महाभारत काल्पनिक एवं ऐतिहासिक उपाख्यानों, स्थलों एवं ख्यातियों से परिपूर्ण हैं । इसमें उपदेशात्मक कथाओं का बाहुल्य है । तथा राजनीति के दावपेंच भी कथाओं द्वारा सरल ढंग से समझाये गये हैं । धर्म, नीति तथा उपदेशपूर्ण दृष्टान्तों की भरमार है। § भीष्म, वन, अनुशासन तथा शान्ति वर्गों में विशेष§ इस प्रकार अवेक्षणीय है कि किसी भी जटिल विषय को सुगम बनाने के लिए तथा उपदेशों को हृदयग्राही बनाने के लिए प्रायः नीतिकथाओं का आश्रय लिया गया है । अतः महाभारत के प्रणेयता ने भी मनोविज्ञान का आश्रय लेकर ही इस अभूतपूर्व ग्रन्थ का प्रणयन किया और इसी कारण पुनः पुनः इसका अध्ययन करने पर भी उसके रसास्वादन में लेशमात्र

न्यूनता भी नही होती । अद्यावधि इसकी महत्ता एवं लोकप्रियता का यही कारण है । महाभारत में उपदेशात्मक पशु कथाएं भी सन्निविष्ट हैं । शान्तिवर्ग तथा अन्य पर्वों में पंचतंत्र की कथा के लिए उपयोगी पूरी सामग्री मिलती है । [1] इसमें सोने के अण्डे देने वाली चिड़िया की कथा, धार्मिक बिल्ली की कथा, तथा चतुरशृगाल की कथा इत्यादि अनेक कथाएं हैं ।

शान्तिपूर्व में 12 नीतिकथाएं हैं वस्तुतः कथा को सजीव बनोन और उसके आकर्षण को द्विगुणित करने के लिए ही वक्ता द्वारा किसी आदर्श की स्थापना - हेतु नीति कथा का सहारा लिया गया है । जैसे - संवाद रूप में निबद्ध एक नीतिकथा में [2] सागर नदियों से पूछता है कि सबल वृक्ष तो बाढ़ द्वारा उखाड़ लिए जाते हैं किंतु दुर्बल बांस नहीं । नदियां उत्तर देती हैं वृक्ष धारा का प्रतिरोध करते हुए सीधे खड़े रहते है अतः उसके प्रवाह द्वारा उखाड़ फेंके जाते है जबकि बांस के वृक्ष जलधारा के सम्मुख नत हो जाते हैं और धारा के आगे बढ़ने पर पुनः सीधे खड़े हो जाते है इस कथा द्वारा यह उपदेश

---

1. डा० कपिलदेव द्विवेदी, संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ०572
2. शान्तिपर्व, संक्षिप्त महाभारत, पृ० 1242.

दिया गया है कि जो राजा बल में बढ़े चढ़े तथा विनाश करने में समर्थ शत्रु के प्रथम वेग को सिर झुकाकर सह नहीं लेता, वह शीघ्र ही नष्ट हो जाता है । जो बुद्धिमान अपने तथा शत्रु के सार, असार, बल तथा पराक्रम को जानकर व्यवहार कर देता है, उसकी कभी पराजय नहीं होती । अतः जब शत्रु को बल में अपने से बहुत बढ़ा हुआ समझे तो विद्वान पुरुष को बेत की तरह नम्र हो जाना चाहिए ।

महाभारत में धर्मोपदेश के लिए कथाओं को आधार बनाया गया है । बौद्ध और जैन धर्म प्रचारक जातक कथाओं के माध्यम से धर्म के प्रचार एवं प्रसार में अत्यन्त सफल हुए हैं महाभारत में भी धर्म और नीति विषय अनेका अनेक उपदेशों को बताने के लिए कथाओं का आश्रय लिया गया है । इसकी कुछ कथाएं तो वैदिक काल पर जाती है और कुछ काफी बाद में जोड़ी गई हैं । महाकाव्य होते हुए भी महाभारत में इन नीतिकथाओं और उपाख्यानों का इतना महत्व हैं कि कहीं- कहीं उनको पूर्णतया गद्य में निबद्ध किया गया है ।

महाभारत में निबद्ध उपाख्यानों, नीतिकथाओं और अन्य ऐतिहासिक एवं पौराणिक कथाओं का इतना विशिष्ट महत्व हैं प्रत्येक ऐसी कथा जो किसी नीति अथवा उपदेश का सम्प्रेक्षण करती है पूर्णतया

किसी न किसी रूप में मनुष्य को प्रभावित अवश्य करती है इन कथाओं में इतनी रोचकता है कि सभी वे वाले, चाहे वृद्ध हो अथवा बालक, सामान्य रूचि से इनका आस्वादन करते हैं अत इन उपदेशात्कम कथाओं की भूमि उपदेश और शिक्षाओं को सर्वग्राह्य एवं रोचक बनाने के लिए प्रयुक्त हुई है ।

संस्कृत साहित्य कथाओं द्वारा मुख्यत: जिन तथ्यों का प्रतिपादन किया गया अब उनका निरूपण किया जा रहा है हिन्दूधर्म में ही नही अपितु सभी प्रमुख धर्मों में दान का विशेष महत्व है चाहे वह अन्न दान, धन दान, स्वर्णदान अथवा गोदान कुछ भी हो, वस्तुत: दान का मूल्य दी गई वस्तु से नहीं बल्कि दाता की भावना से ज्ञात होता है। यदि सम्पूर्ण राज्य भी दानस्वरूप दे दिया गया हो किन्तु देने वाले का चित्त शुद्ध न हो तो वह व्यर्थ है इसके विपरीत यदि एक सेर सत्तू भी शुद्ध भाव से दान किया गया तो उसका मूल्य बहुत होताहै। इस सन्दर्भ में उछवृत्ति ब्राहमण की एक कथा है ।[1] यह ब्राहमण पत्नी, पुत्र एवं पुत्रबधू के साथ उंछवृत्ति से जीवन - पालन करता था। अर्थात कबूतर के समान अन्न का दाना चुनकर लाता एवं उसी से अपने कुटुम्ब का पालन करता था । शेष समय

---

1. आश्वमेधिक पर्व, सं० महाभारत, पृ० 1702-1705

तपस्या में संलग्न रहता एवं सदाचार को जीवन व्यतीत करता था इसी बीच उस क्षेत्र में भीषण अकाल पड़ा और यह ब्राह्मण परिवार अनेक दिनों तक भूखा ही रहा । कई दिवश पश्चात् ब्राह्मण को कहीं से शेर भर जौ प्राप्त हुआ उसका सत्तू बनोर और अग्नि को अर्पण करके वे परस्पर विभक्त करके उसे खाने बैठे उसी समय एक अतिथि ब्राह्मण वहाँ आ पहुँचा इसे देखकर व वह ब्राह्मण परिवार अत्यन्त हर्षित हुआ । उंछवृत्त ब्राह्मण ने उस अतिथि का यथोचित सत्कार करके अपना सत्तूभाग उसे अर्पित कर दिया उस सत्तू से ब्राह्मण का तृप्ति नहीं हुई तब ब्राह्मण द्वारा मना किये जाने पर भी उसकी पतिव्रता पत्नी ने अपना सत्तू भी दे दिया इस पर भी ब्रामहण सन्तुष्ट नहीं हुआ उसी भाँति क्रमशः पुत्र एवं पुत्रबधू ने भी अपना- अपना भाग अत्यंत श्रद्धापूर्वक ब्राह्मण को दे दिया उन सबका यह त्याग देखकर वह ब्राह्मण अत्यन्त प्रशन्न हुआ वास्तव में वह ब्राह्मण शरीरधारी धर्म ही था, जिसने उस उन्छवृत्त ब्राह्मण की अत्यन्त प्रशंसा की महि- मा से उसे स्वर्गलोक की प्राप्ति हुई । इस प्रकार शुद्ध हृदय से शेर भर सत्तू दान करने से वह ब्राह्मण ब्रहमलोकगामी हुआ । जबकि अनेक बड़े- बड़े यज्ञ भी इतने फलदायी नही होते । अन्यायपूर्वक

[illegible] हुए धन के द्वारा बड़े- बड़े दान करने से धर्म को प्रसन्नता नहीं होती । धर्म देवता को न्यायोचित थोड़े से अन्न का भी श्रद्धापूर्वक दान करने से ही संतुष्ट होते हैं जिसके पास कुछ न हो वह यदि अपनी शक्ति के अनुसार थोड़ा सा जल ही दान कर दे तो उसका महत्व बहुत होता है, कहते हैं कि राजा रन्तिदेव के पास जब कुछ नही रह गया था तो उन्होने शुद्ध हृदय से केवल जल का ही दान किया था । राजा नृग ने हजारों गौवे दान की थी, किन्तु एक गौ उन्होने दूसरे की दान कर दी, जिससे अन्यायतः प्राप्त द्रव्य का दान करने के कारण उन्हे नरक में जाना पड़ा ।[1] उसी नर्क के पुत्र राजा शिव ने श्रद्धापूर्वक अपने शरीर का मांस देकर भी पुण्यात्माओं के लोक को प्राप्त किया था ।[2] इतना ही नहीं अनुशासन पर्व में एक अध्याय[3] दान की श्रेष्ठता और उसके प्रकारों का प्रतिपादन करता है । राजा ययाति की कथा [4] भी दान माहात्म्य

---

1. अनुशासन पर्व, सं0 महाभारत, पृ0 1508-1510
2. वन पर्व, वही पृ0 312-313
3. अनुवादक वही, पृ0 1575-74
4. वनपर्व, हिन्दी महाभारत, अध्याय 195
   प्रकाशक- इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद ।

से सम्बन्धित है मुदगल ऋषि की कथा [1] भी दान के महत्व से सम्बन्धित है कुरुक्षेत्र में मुदगल नामक ऋषि रहते थे वे अत्यन्त उदार, तपस्वी, कर्मनिष्ठ, तथा धर्मात्मा थे। मुनिवृत्ति से रहना एवं अतिथियों को अन्न देना यही उनके जीवन का व्रत था किसी के प्रति द्वेष न करके वे अत्यन्त शुद्ध भाव से दान करते थे। मुनि के इस व्रत को सुनकर एक बार दुर्वासा ऋषि पागलों का सा वेष बनाये उनके घर पधारे और भोजन माँगा मुद्गल ने प्रसन्नतापूर्वक उनका सत्कार करके अन्न दिया, दुर्वासा ने उनके घर का समस्त अन्न खा लिया एवं अवशिष्ट भाग शरीर में लपेट कर लौट गये। इसी प्रकार छः बार पर्व के अवसर पर दुर्वासा ऋषि सब अन्य समाप्त करके, मुद्गल के परिवार को क्षुधापीड़ित छोड़ जाते किन्तु उन्हें उनमें तनिक भी विकार न दिखाई देता। यह देखकर दुर्वासा अत्यन्त प्रशन्न हुए और मुद्गल की बहुशः प्रशन्सा की और उन्हें परम पद की प्राप्ति हुई इस प्रकार महा भारत में अनेक स्थलों पर दान की महिमा का वर्णन हुआ है। कहीं इन्हें आख्यानों और कथाओं का सहारा लेकर समझाया गया है और कहीं वैसे ही इनकी प्रसस्ति

---

1. वनपर्व, सां० महाभारत, पृ० 411-13
प्रकाशक- कल्याण प्रेस, गोरखपुर

की गई है । अतः दान से सम्बन्धित उपाख्यान और कथाएं मनुष्य को दान के महात्म्य से अवगत कराके उसे सहज ही उस ओर प्रेरित करती है ।

दान की जितनी महिमा है उतनी ही प्रतिज्ञा करके दान न करने से पाप होता है । जो देने की प्रतिज्ञा करके नही देता, वह जीवन भर जो कुछ भी दान होम तथा तप आदि करता है वह सब नष्ट हो जाता है इस विषय में सियार और वानर से संवाद रूप प्राचीन इतिहास का दृष्टान्त किया गया है ।[1] पूर्व समय में एक सियार और बानर एक स्थान पर मिले ये दोनो पूर्व जन्म में मनुष्य और मित्र थे । दूसरी योनि में ये सियार और वानर के रूप में उत्पन्न हुए थे । सियार को श्मशान में मुर्दे खाता देखकर वानर ने पूर्व जन्म की स्मृतिवश पूछा - " भैया । तुमने पूर्व जन्म में कौन सा भयंकर पाप किया था जो तुम्हें घृणायोग्य इन मुर्दों को खाना पड़ता है । - सियार ने उत्तर दिया - " मैने ब्राहमण को दाने देने की प्रतिज्ञा करके नहीं दिया ।, इसी पाप के कारण मुझे यह योनि मिली है । अब तुम बताओं कि तुम्हें किस पाप के कारण वानर योनि

---

1. अनुशासन पर्व, सं० महाभारत पृ0 1460

प्राप्त हुई ।" वानर बोला - " मैं सदा ब्राहमणों का फल चुरा कर खा जाया करता था । इसी पाप से वानर हुआ ।" अतः विज्ञ पुरूष को कभी ब्राहमण का धन नहीं लेना चाहिए । उनके साथ कभी विवाद नहीं करना चाहिए और यदि उन्हें दान देने की प्रतिज्ञा की गई हो तो अवश्य दे डालना चाहिए । इसी प्रकार एक राजा का आख्यान [1] है जिसमें ब्राहमण का धन न अपहरण करने की शिक्षा दी गई है । ब्राहमण का धन ले लेने के कारण राजा नृग को महान कष्ट उठाना पड़ा था।

इसी समय उन्हें घास-फूस से ढका एक कूप दिखाई दिया उसकी सफाई करके उसमें झांकने पर उन्हें ऐ क विशालकाय गिरगिट दृष्टिगोचर हुआ सहस्रों की संख्या वाले उन बालकों ने उस जन्तु को बाहर निकालने का बहुत यत्न किया । पर सफल न हुए अन्त में वे श्री कृष्ण के समीप गये और सम्पूर्ण वृत्तान्त कहा यह सुन कर कुएं के निकट गये और उस गिरगिट को बाहर निकालकर उसके पूर्व जन्म का वृत्तान्त पूछा तब उसने बताया कि वह पूर्व में राजा नृग था । जिसने हजारों यज्ञों का अनुष्ठान किया था

---

1. वही, पृ0 1509-10

तथा लाखों गौवें ब्राहमणों को दान की थी केवल एक पाप उनसे भूल से हो गया था जिसके कारण उन्हें वह योनि प्राप्त हुई थी वह पाप यह था कि एक अग्निहोत्री ब्राह्मण जब विदेश गया हुआ था तो उसकी एक गाय आकर राजा नृग की गौवों के समूह में मिल गई थी तथा एक ब्राहमण को एक सहस्र गाय दान देते समय उसकी भी गणना हो गयी थी कुछ दिन पश्चात जब वह ब्राहमण घर लौटकर आया तो गाय को ढूढ़ता हुआ उस ब्राहमण के घर भी पहुँचा और अपनी गाय माँगी उसने गाय देने से इन्कार कर दिया क्योंकि वह बहुत सीधी और अधिक दूध देने वाली गाय थी । दोनो न्याय के लिए राजा के समीप गये किन्तु वह ब्रामहण गाय लौटाने को तैयार नही हुआ और दूसरा गाय के अतिरिक्त अन्य कुछ भी लेने को तैयार न हुआ । इसी बीच राजा नृग की मृत्यु हो गई और इस पाप के फलस्वरूप उन्हें वह योनि प्राप्ति हुई ।

इसलिए ब्राहमणों का सत्प्रकार से आदर करना चाहिए उनको दान देना चाहि, दान देने की प्रतिज्ञा करके, उसे पूरा करना चाहिए और भूल सेभी उनका धनापहरण नही करना चाहिए । शरणागत की रक्षा करना भी प्राचील काल से भारतीय संस्कृति की प्रमुख विशेषता रही है । शरण में आया हुआ प्रत्येक प्राणी चाहे छोटा हो या

बड़ा, शत्रु हो या मित्र रक्षणीय होता है । इस सिद्धान्त की पुष्टि महाभारत में भी अनेक उपाख्यानों द्वारा होती है । इस सन्दर्भ में राजा शिव का नाम सर्वप्रथम आता है । क्योंकि उन्होने शरण में आये एक कबूतर की रक्षा के लिए अपने प्राणों का भी मोह त्याग दिया था राजा शिव की कथा[1] इस प्रकार है :- एक बार देवताओं ने परामर्श किया कि हमें पृथ्वी पर जाकर उसीनगर के पुत्र महाराज शिवि की उदारता और साधुता की परीक्षा करनी चाहिए इसके लिए अग्नि कबूतर के रूप में और बाज़ के रूप में इन्द्र पृथ्वी पर आये कबूतर भागता हुए आया और सभा में सिंहासन पर विराजमान राजा शिवि की गोद में गिर पड़ा । बाज़ भी उसका पीछा करता हुआ वहाँ पहुँचा ।

यह देखकर राजपुरोहित शिवि से बोला- " हे राजन यह कबूतर बाज़ के भय से प्राणों की रक्षा हेतु आपकी शरण में आया है, किन्तु पण्डितों द्वारा इस प्रकार कबूतर का गिरना अनिष्टकारी बताया गया है । इसलिए आप ब्राह्मणों को धनआदि दान करके इस अनिष्ठि की शान्ति कर डालिए ।"

---

1. वनपर्व, हिन्दी महाभारत, अध्याय 197.

बाज़ कबूर के अतिरिक्त अन्य कुछ भी लेने को तैयार न हुआ । तब राजा ने कहा कि मैं चाहे प्राण दे दूँ पर शरणागत कपोत के बराबर मांस काटकर मुझे खाने के लिए दीजिए । अतः राजा ने एक तराजू मंगवाकर अपना मांस काटकर रखा किन्तु वह कबूतर के बराबर न हुआ । धीरे-धीरे राजाने समस्त शरीर का मांस काट - काट कर तुला पर रख दिया किन्तु कबूतर वाला पलड़ा ही भारी रहा अन्त में राजा स्वयं तराजू पर बैठ गये । यह देखकर बाज़ शिवि की प्रशंसा करता हुआ अन्तर्ध्यान हो गया। राजा को भी वास्तविकता का ज्ञान हो गया । इस प्रकार शिवि ने शरणागत की रक्षा के लिए अपना शरीर भी प्रसन्नतापूर्वक देदिया था ।

यह कथा अनुशासनपर्व [1] में भी आई है, जहाँ शरणागत की रक्षा के विषय में कहा गया है कि जो लोग शरण में आये हुए अंडज, पिण्डज, स्वेदज एवं उद्भिज्ज, इन चार प्रकार के प्राणियों की रक्षा करते हैं वे राजा उशीनर की भांति परलोक में भी सुख पाते हैं और

---

1. सं0 महाभारत, पृ0 1476-77

इहलोक में भी यश के भागी होते हैं।

इतना ही नही महाभारत में एक ऐसे कबूतर की भी कथा है जिसने अपना मांस देकर शरणागत शत्रु का भी विधिवत सत्कार किया था। संक्षेप में कथा यह है --कि--

एक सघन वन में अत्यन्त कुरूप एवं भयंक बहेलिया रहता था उसकी जीविका का प्रमुख साधन पशु- पक्षियों का शिकार करके उन्हें बाजार में बेचना था। एक बार वन में अत्यन्त भयंकर आंधी आई। इस आंधी में बहुत से पक्षी मर कर पृथ्वी पर गिर गये। इसी समय बहेलिया की दृष्टि एक कबूतरीपर पड़ी जो शीत से ठिठुर कर गिर पड़ी थी बहेलिया ने उसे उठाकर पिंजड़े में बन्द कर लिया। वह रात बहेलिया ने उसी वन में व्यतीत करने का विचार किया। वन के सघन वृक्ष के नीचे बैठकर उसने हाथ जोड़कर प्रार्थना की कि इस वृक्ष पर जो भी देवता निवास करते हैं मैं उनकी शरण लेता हूँ और वहीं लेट कर सो गया।

उस वृक्ष पर एक कपोत युगल रहता था। उस दिन जब अत्यंत विलम्ब होने पर भी कपोती नहीं लौटी तो कपोत अपनी प्रिया

---

1. वहीं, शान्तिपर्व, पृ0 1263-66

की प्रशंसा करता हुआ विलाप करने लगा । उसका विलाप पिंजरस्थ कपोती ने भी सुना और अपने पति से बहेलिए की अतिथि-सेवा का आग्रह किया क्योंकि वह उन्ही के निवासस्थान के नीचे शरण में आया था । स्त्री की धर्मानुसार युक्तियुक्त बातें सुनकर कबूतर को बड़ी प्रसन्नता हुई और उसके नेत्रों से आनन्दाश्रु निकल आये । उसने उस क्रूर वृत्तिधारी बहेलिए से पूछा कि मैं अपने से आपकी क्या सेवा करूँ । बहेलिए के द्वारा शीत-निवृत्ति का आग्रह करने पर कबूतर ने अग्नि प्रज्वलित कर दी । पुनः बहेलिए ने क्षुधा का अनुभव होने पर भोजनका आग्रह किया । कबूतर अत्यन्त चिंतित हुआ क्योकि उसके भोजन योग्य सामग्री उसके पास नही थी । इसी समय उसे एक युक्ति सूझी और वह तीन बार अग्नि की परिक्रमा करके स्वयं उसमें कूद पड़ा । यह देखकर बहेलिए को अत्यन्त बड़ा पश्चाताप हुआ वह पुनः अपने कर्म की निन्दा करने लगा । उसने सोचा कि इस कपोत ने मेरे लिए अपने प्राणों की आहुति देकर मुझ क्रूरकर्मा को धर्म का उपदेश दिया है । अतः आज से मैं भी सब कुछ त्यागकर धर्म का आचरण करूँगा और उसने कबूतरी को भी छोड़ दिया और तप के लिए चल दिया ।

पिंजरे से छूटकर कपोती बहुत दुखी हुई और पति के लिए विलाप करती हुई उसी अग्नि में स्वयं भी कूद गई। वहाँ उसने अपने पति को स्वर्गलोक का आनन्द भोगते देखा और फिर वे दोनों विमान में बैठकर स्वर्ग चले गये। बहेलिए ने भी घोर तप करके स्वर्गलोक की प्राप्ति की। पंचतंत्र की नीतिकथाओं में भी इस कथा का समावेश[1] हुआ है।

इस प्रकार शरणागत की रक्षा सबसे बड़ा धर्म है जिससे सभी देवता प्रसन्न होते हैं और रक्षा करने वाला स्वर्ग का अधिकारी होता है। महाभारत के युद्ध का मूल कारण, कौरवों और पाण्डवों का, जो कि परस्पर भाई थे, विरोध ही था। यदि उनमें एकता होती तो इतने बड़े युद्ध की भी आवश्यकता न पड़ती और न ही इतना नरसंहार एवं कुलनाश होता। इसीलिए जाति विरोध की अत्यन्त निन्दा की गई है। निर्बल भी यदि मिलकर संगठित रूप से कार्य करता है तो सुरक्षित रहता है। और शक्तिशाली भी, यदि अकेला हो तो विपत्ति में फंस जाता है। इसीलिए महाभारत के अनेक स्थल जाति विरोध के अनर्थ का वर्णन करते हैं। इस सन्दर्भ में एक पक्षी का दृष्टान्त[2] दिया गया है।

यह कथा नीतिकथा के रूप में अत्यन्त लोकप्रिय हुई है तथा जातक[3] एवं पंचतंत्र आदि कथाग्रन्थों में भी इसका प्रयोग किया गया है।

---

1. तृतीय तंत्र §काकोलकीय§, §2§ उद्योगपर्व, हि०महाभारत, अध्याय 64

है । एक बार एक चिड़ीमार ने चिड़ियों को पकड़ने के लिए धरती पर जाल बिछा दिया । एक साथ उड़ने वाले दो पक्षी जाल में निकर कर फँस गये तब वे उस जाल को लेकर एक साथ उड़ गये । यह देखकर चिड़ीमार को बड़ा दुःख हुआ वह उनके पीछे दौड़ता जा रहा था । सन्ध्या आदि नित्क-कर्म करके एक मुनि ने यह देखा । आकाश में उड़ रहे दोनो पक्षियों का पीछा करने वाले उस शिकारी को बुलाकर ऋषि ने कहा- चिड़ीमार, पक्षी तो आकाश में जाल लिए उड़े जा रहे हैं और तू पृथ्वी पर उनका पीछा कर रहा है । यह देख कर मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ ।"

चिड़ीमार ने कहा - "ऋषिश्रेष्ठ ये दोनो पक्षी अभि हिल-मिल कर जाल लेकर उड़े जा रहे हैं, यह ठीक है, किन्तु जब इनमें झगड़ा उठ खड़ा होता तब ये अवश्य जाल - सहित पृथ्वी पर गिर पड़ेंगे और मेरे वश में आ जायेंगे ।

तदनन्तर वास्तव में ये पक्षी परस्पर झगड़ा करके पृथ्वीपर गिर पउड़े और उस चिड़ीमार ने पीछे से पहुँचकर अनजाने में उन्हें पकड़ लिया । इसी प्रकार जो जाति वाले अनादि के लिए परस्पर विरोध करते हैं वे इन झगड़ने वाले पक्षियों की भांति शत्रु के हाथ में पड़कर नष्ट हो जाते हैं । परस्पर विरोध करना महा-मुढ़ता है । यह दृष्टान्त विधुर ने गौरवों को पाण्डवों से न

न लड़ने के लिए ही सुनाया था। इससे यही शिक्षा मिलती है कि विरोध एवं शत्रुता को तो वैसे भी अनिष्टकारी माना गया है किंतु जब यह परस्पर समान जाति वालों में हो तो उसका परिणाम और भी भयंकर होता है। जाति के लोग सुलगती हुई लकड़ी के समान होते हैं जो मिलकर रहने से प्रज्वलित रहते है और अलग- अलग रहने के कुवल धुंआ से है।

देश और काल के अनुसार सोच - समझकर कार्य करने वाला ही उचित फल प्राप्त करता है। इस दृष्टि से मनुष्यों को तीन वर्गों में विभक्त किया जा सकता है - §1§ जो समय से पहले ही कार्य की व्यवस्था कर लेता है वह " अनागतविधाता" कहलाता है। §2§ जिसे ठीक समय पर का' करने की युक्ति सूझ ाती है। वह " प्रत्युत्पन्नमति" कहलाता है। ये दोनो ही सुख पाते हैं तीसरा "दीर्घसूत्री" तो नष्ट हो जाता है। इस सम्बन्ध में तीन मत्स्यों का एक आख्यान[1] है -

एक अल्प जल वाले जलाशय में तीन मछलियां रहती थीं। इनमें एक दीर्घकालक § अनागतविधाता §, दूसरी प्रत्युत्पन्नमति और

---

1. शान्तिपर्व, सं0 महाभारत, पृ0 1254.

तीसरी दीर्घसूत्री थी । एक बार कुछ चोरों ने उस तालाब में नलियाँ बनाकर जल निकालना प्रारम्भ कर दिया । तालाब का घटता देखकर दीर्घदर्शी ने आगमी भय की आशंका से अपने दोनों साथियों से कहा- ज्ञात होता है कि इस जलाशय में रहने वाले सभी प्राणियों पर आपत्ति अपने वाली है, इसलिए जल तक हमारे निकलने का मार्ग नष्ट हो न तब तक शीघ्र ही हमें यहाँ से चले जाना चाहिए । इस पर दीर्घसूत्री ने कहा - तुमने बात तो ठीक ही नहीं कही है, किन्तु मेरे विचार में कभी शीघ्रता नहीं करनी चाहिए । प्रत्युत्पन्नमति ने कहा कि जल समय आएगा तो मैं कोई न कोई युक्ति निकाल ही लूँगी । इन दोनों की राय जानकर दीर्घवंशी तो उसी दिन एक नाले में होकर गहरे जलाशय में चली गई ।

कुछ समयोपरान्त जब तालाब का जल एक निकल गया तो मछेरों ने उसमें कई जाल डालकर सब मछलियों को पकड़ लिया । सबके साथ वे दोनों मछलियाँ भी फंस गई । जब मछेरों ने जाल उठाया तो प्रत्युत्पत्ति मृतक सी होकर पड़ गई और धोते समय जाल से निकल कर तालाब में घुस गई । मंदबुद्धि दीर्घसूत्री तो भयवश अचेत होकर मर गई ।

इसी भाँति जो मनुष्य दीर्घसूत्री मत्स्य के समान उचित एक

काल नही देख पाता वह शीघ्र ही नष्ट हो जाता है और प्रत्यु-त्पन्नमति एवं अनागतविधाता के समान कार्य करने वाले सुखी रहते हैं। धर्मशास्त्र एवं मोक्षशास्त्र में ऋषियों ने इन्हें ही प्रधान अधिकार: माना है और ये ही ऐश्वर्य के भी अधिकारी हैं।

समयानुसार कार्य करने के विषय में तीन मत्स्यों का यह दृष्टान्त पंचतंत्र[1] एवं हितोपदेश[2] में भी द्रष्टव्य है। इसी प्रकार अन्यानेक उपदेशों को दृष्टान्तों एवं आख्यानों के माध्यम से समझाया गया है। तृष्णा को प्राचीनकाल से सब ऋषि समस्त बुराइयों की जड़ मानते हैं। इस तृष्णा के त्याग के विषय में मङ्किक का दृष्टान्त[3] किया गया है - मङ्किक ने धनोपार्जन के लिए बहुत यत्न किया किन्तु सफल न हुए। तब अवशिष्ट धन से उन्होंने भारवहन योग्य दो बछड़े खरीदे। एक दिन वह उन्हें जुएं में जोत कर ले गये, मार्ग में एक ऊँट बैठा था। वे बछड़े उसे बीच में करके एकदम दौड़ पड़े। जब वे उसकी गर्दन के पास पहुँचे तो ऊँट को बड़ा बुरा लगा और वह खड़ा होकर उन दोनो को गर्दन पर लटकाए दौड़ने लगा। इस प्रकार उस उन्मत ऊँट के द्वारा अपहरण किये जाते ही बछड़ो को देखकर मङ्किक कहने लगे " मनुष्य कितना ही चतुर हो यदि उसके भाग्य में नही होता तो प्रयत्न करने पर ही उसे धन नही मिलता पहले अनेको असफलताओं का सामना करने पर भी मैं धनोपार्जन की चेष्टा में लगा रहा,

सो देखा, विधाता ने इन बछड़ों के बहाने ही मेरे सारे प्रयत्न को मिट्टी में मिला दिया इस समय काकतालीय न्याय से ही यह ऊँट मेरे बछड़ो को लटकाएं दौड़ रहा है मेरे दोनो प्यारे बछड़ों मड़ियों की भांति ऊँट की गर्दन में लटके है यह दैव की ही कार्य जान पड़ता है ।यदि कभी कोई पुरुषार्थ सफल भी होता है तो वह भी एकमात्र दैव की ही लीला है ।

अतः जिसे सुख की इच्छा हो उसे वैराग्य का ही आश्रय लेना चाहिए । जो पुरुष धनोपार्जन की चिन्ता त्याग कर उपरत हो जाता है, वह सुख की नींद सोता है। सुखदेव मुनि ने कहा है कि जो मनुष्य - अपनी समस्त कामनाओं को प्राप्तकर लेता है और जो उनका सर्वथा त्याग कर देता है, उन दोनो में कामनाओं को पाने वाले की अपेक्षा त्यागने वाला ही श्रेष्ठ है ।

अतः सभी प्रकार की नीतियों, सदाचारों और शिक्षाओ का आधारभूत महाभारत भी इस पर विशेष बल देता है । इसमें कहा गया है कि शील से तीनों लोक जीते जा सकते है । शीलवानों के लिए संसार की कोई भी वस्तु दुर्लभ नही है । मान्धाता ने एक ही रात में, जनमेजय में तीन रातों में और नाभाग ने सात रातों में ही इस पृथ्वी का राज प्राप्त किया था ये सभी राजा शीलवान तथा दयालु थे ।

प्राचीन समय में दैत्यराज प्रहलाद ने शील के द्वारा इन्द्र का

राज्य ले लिया था और तीनों लोगों पर अधिकार कर लिया उस समय इन्द्र ने बृहस्पति जी से ऐश्वर्य प्राप्ति का उपाय पूछा। उन्होंने इन्द्र को शुक्राचार्य के समीप भेज दिया इन्द्र ने शुक्राचार्य से भी वही उपाय पूछा । शुक्राचार्य बोले कि इसका विशेष ज्ञान महात्मा प्रहलाद को है यह सुनकर इन्द्र ब्राहमण वेश में प्रहलाद के पास गये और कहा- राजन , मैं श्रेयप्राप्ति का उपाय जानना चाहता हूँ आप बताने का कष्ट करें । प्रहलाद ने कहा- "विप्रवर, मैं तीनों लोको के राज्य प्रबन्ध में व्यस्त रहता हूँ इसलिए मेरे पास आपको उपदेश देने का समय नही है । ब्राहमण ने कहा- "महाराज आपको जब समय मिलेगा तभी मैं आपसे उत्तम आचरण का उपदेश लेना चाहूँगा ।

ब्राहमण की सत्यनिष्ठा देखकर प्रहलाद अत्यन्त हर्षित हुए और शुभ समय पर उन्होंने उस समय ज्ञान का तत्व समझाया । ब्राह्मण ने भी उत्तम गुरुभक्ति का परिचय दिया और अवसर प्राप्त कर यह प्रश्न किया कि त्रिभुवन का उत्तम राज्य आपको कैसे मिला? तब प्रहलाद ने कहा- विप्रवर मैं राजा हूँ" इस अभिमान में आकर कभी ब्राहमणों की निन्दा नही करता, बल्कि उनके उपदेश श्रवण करता हूँ और उनका पालन करता हूँ।

इससे प्रहलाद अत्यन्त प्रसन्न हुए और उससे वर मांगने को कहा ब्राहमण ने कहा कि यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं और मेरा कल्याण

करना चाहते हैं तो मुझे आपका ही शील ग्रहण करने की इच्छा है ।

प्रहलाद को बड़ा आश्चर्य हुआ किन्तु उन्होन "तथास्तु" कहकर वर दे दिया । विप्रवेषधारी इन्द्र के चले जाने पर प्रहलाद अत्यन्त चिन्तित हुए किन्तु उन्हें कोई उपाय न सूझा । इतने में ही उनके शरीर से एक परम कान्तियुक्त तेज मूर्तिमान होकर प्रकट हुआ प्रहलाद के पूछने पर उसने बताया कि वह शील है उस ब्राह-मण के शरीर में प्रविष्ट होने जा रहा है । तदन्तर प्रहलाद के शरीर से एक एक करके धर्म, सत्य, सदाचार और बल सभी निकलन कर उस ब्राहमण में प्रविष्ट हो गये ।

प्रहलाद के शरीर से प्रभामयी देवी के रूप में लक्ष्मी प्रकट हुई और उसी ब्राहमण के पास जाने लगी । प्रहलाद के पूछने पर उसने बताया कि " तुमने जिसे उपदेश दिया है, उस ब्रहमचारी ब्राह-मण के रूप में साक्षात इन्द्र थे तीनों लोको में जो तुम्हारा एश्वर्य फैला था वह उन्होने हर लिया । धर्मज्ञ, तुमने शील के द्वारा ही तीनों लोकों में विजय प्राप्त की थी, यह जानकर इन्द्र ने तुम्हारे शील का अपहरण किया है । धर्म, सत्य, सदाचार बल और मै §लक्ष्मी§ शील के ही आचार्य पर रहते हैं शील ही सबकी जड़ है । यह कहकर लक्ष्मी भी समस्त अन्य गुणों के समीप इन्द्र के समीप चली गई । शील पर ही अन्य सभी गुण आश्रित रहते है । यदि शील

भ्रष्ट हुआ ता मनुष्य का सर्वस्य नष्ट हो गया ।

अतः मन, वाणी एवं शरीर से किसी के साथ द्रोह न करना, दया करना, दान देना इत्यादि ही उत्तम शील माना गया है । इससे त्रिभुवन का राज्य भी प्राप्त किया जा सकता है । शिवि का नाम शीलवान और दयालु पुरुषों में अग्रण्य है । अपने सद्गुणों के द्वारा उन्होंने चिरस्थायी यश की प्राप्ति की है । इस सम्बन्ध में उनका महात्म उल्लेखनीय है ।

कुरुवंशी[1] महाराज सुहोत्र एक समय महर्षियों के लोक में उनसे मिलने गये थे । वहाँ से लौटते हुए मार्ग में उनको राजा शिवि मिले दोनो ने परस्तपर एक दूसरे का अभिवादन किया किन्तु दोनो अपने को अवस्था और गुणों में समान मानकर मार्ग से हटने के लिए तैयार नही हुए आमने सामने रथ किए डटे रहे किसी समय देवर्षि नारद वहाँ घूमते हुए पहुँच गये । नारद ने उनसे पूछा कि तुम दोनो एक दूसरे का मार्ग रोके क्यों खड़े हो। दोनो ने कहा -" धर्मशास्त्र के अनुसार जो अपने से ही किसी बात में विशेषता रखता हो या बली हो, उसी को देखकर राह दे देनी चाहिए पर हम दोनो मित्र स बातों में

---

1. वनपर्व, हि0 महाभारत , अध्याय 194

बराबर है । नारद ने सुहोत्र से कहा- राजन जब क्रूर के साथ कोमल प्रकृत वाले की और असाधु के साथ साधु प्रकृतिवाले की मित्रता की जाती है तो साधु के साथ साधु का सुहृदयवान क्यो न होना चाहिए अपने साथ किए गये व्यवहार से 100 गुना अच्छा व्यवहार करना चाहिए । देवता भी सदाचार का निर्णय नही कर सकते मैं कहता हूँ कि तुम्हारी अपेक्षा महाराज शिवि का शील अच्छा है ।

जो कोई कुछ देख कर दुष्ट को सत्य बोलकर असत्य वादी को, क्षमा करके क्रूरकर्मा को और सद्व्यवहार से असाधु को अपने वश में कर लेता है, वही साधु है । हे नरेश, तुम दोनो का स्वभाव उदार है तुम दोनो में से एक को हट कर राह छोड़ देनी चाहिए । हे कौरव, तुममे से जो श्रेष्ठ हो वह दूसरे को राज देदे यही श्रेष्ठता और विशिष्टता का चिन्ह है ।[1]

---

1. "बौद्ध जातकों में इसी प्रकार की एक कथा है § " राजोवाद जातक"। इसमें दो ऐसे राजाओं का वर्णन है जो अत्यन्त दयालु, सदाचारी एवं बुद्धिमान थे । एक बार एक संकरे मार्ग से विपरीत दिशाओं में जाते हुए उनमें विवाद उत्पन्न हुआ कि कौन किसे मार्ग दे क्योंकि दोनो ही गुणों और शील में समान थे अत: दोनो राजाओं के रथ-संचालकों में

अपने स्वामियों का गुणगान आरम्भ किया । एक राजा अच्छे के साथ अच्छा और बुरे के साथ बुरा का व्यवहार करता था । और दूसरा अच्छे एवं बुरे के साथ सद्व्यवहार करता था । अतः प्रथम ने दूसरे की श्रेष्ठता स्वीकार करके मार्ग दे दिया ।"

इतना कहकर नारद जी शान्त हो गये तब कुरुवंशी सुहोत्र ने शिवि की प्रदक्षिणा की और स्वयं हटकर उनको राह दे दी। इस प्रकार दोनो राजा दोनो का सम्मान करके अपने- अपने गन्तव्य की ओर चले गये । शीलवान मनुष्य ही श्रेष्ठतवान होता है तथा वही वास्तविक सुख एवं यश का भी भागी होता है । मनुष्य को किस समय, किसके साथ, कैसा व्यवहार करना चाहिए, यह मानना नितान्त आवश्यक है क्योंकि परिस्थिति और समय की अनुकूलता और प्रतिकूलता के आधार पर शत्रु भी मित्र हो जाते है ।

अतः मित्र एवं अमित्र का अभिज्ञान विपत्ति पड़ने पर शत्रु से मित्रता लाभदायक होती है। इस विषय से सम्बन्धित अनेक आख्यान महाभारत में उपलब्ध होते हैं । यदि प्राण संकट में हो तो शत्रुओं से भी मित्रता करके प्राण-रक्षा करनी चाहिए । इस विषय में वट-वृक्ष पर रहने वाले बिलाव और मूषक का संवादरूप प्राचीन आख्यान[1] प्रसिद्ध है । इस आख्यान में एक चूहा जाल में फंस जाने

---

1. शान्तिपर्व , सं0 महाभारत , पृ0 1255-59

पर पहले से ही उस जाल में फंसी बिल्ली से मित्रता करके अपनी तथा बिल्ली, दोनों की, बहेलियों से जाल काट कर रक्षा करता है तथा संकट समाप्त हो जाने पर मित्रता भी समाप्त कर देता है इस कथा में दो शिक्षाओं का प्रतिपादन किया गया है । प्रथम तो यह है कि जब दो शत्रुओं पर समान विपत्ति आ पड़े तो निर्बल को सबल शत्रु के साथ मिलकर बड़ी सावधानी और युक्ति से कार्य करना चाहिए और जब कार्य हो चुके तो उसका विश्वास नहीं करना चाहिए और द्वितीय यह है कि जो अविश्वास पात्र तो उसमें कभी विश्वास न करें और जो विश्वसनीय हो उसमें भी अत्यन्त विश्वास न करें । तथा अपने प्रति तो सदा दूसरे का विश्वास उत्पन्न न करें किन्तु स्वयं दूसरे का विश्वास न करें।

इस प्रकार दृष्टान्त द्वारा यह शिक्षा दी गई है कि दुर्बल और अकेला होने पर भी व्यक्ति बुद्धि-बल से शत्रु को पराजितकर सकता है बलवान के साथ शत्रुता संतापकारी होती है यह शिक्षा अनेक उपाख्यानों में प्राप्त होती है - समुद्र और नदियों का संवादरूप उपाख्यान,[1] सेमलवृक्ष और वायु का दृष्टान्त[2] तथा हंस और कौवे का उपाख्यान[3] मित्र और अमित्र की सच्ची पहचान

---

1. वही , पृ0 1245
2. शान्त पर्व, सं0 महाभारत, पृ0 1271- 72

भी बहुत आवश्यक है क्योंकि दुर्जन और मूर्ख के साथ की गई मित्रता दुखदाई होती है । कहा भी गया है कि मूर्ख मित्र की अपेक्षा बुद्धि-मान शत्रु कहीं अच्छा होता है ।

अतः शीलवान एवं उत्तम गुणों से युक्त श्रेष्ठ पुरुषों के साथ ही मित्रता करनी चाहिए इस सन्दर्भ में कृतघ्न गौतम की कथा[1] का उल्लेख है जिसने अपने मित्र एवं हितैसी की हत्या स्वार्थ सिद्धि के लिए कर दी थी और अन्त में उसे नरक का भागी होना पड़ा था । इसीलिए मनुष्य को मित्र द्रोह से बचना चाहिए मित्र द्रोही घोर नरक में गिरता है । प्रत्येक मनुष्य को कृतज्ञ होना चाहिए और मित्र बनने की अभिलाषा रखनी चाहिए मित्र की सहायता से मनुष्य आपत्तियों से छुटकारा पा जाता है ।

बुद्धिमान मनुष्य को मित्रों का सत्कार एवं पूजन करना चाहिए । मनुष्य की पहचान बहुत कठिन कार्य है क्यों कि कभी कभी ऊपर से कोमल दिखाने वाले व्यक्ति अत्यन्त क्रूर एवं कठोर होते हैं । तथा ऊपर से कठोर दृष्टिगोचर होने वाले अत्यन्त नम्र एवं उदार होते हैं । अतः जो वास्तविक हितैसी विपत्ति पड़ने पर सहायक हो उसी से मित्रता करनी चाहिए । जो मनुष्य गुप्त रूप से पापाचरण करता है तथा दिखाने के लिए धर्माचरण करता है वह विडलव्रती कहलाता है ।

1. शान्तिपर्व वही, पृ0 1281-85

इस सम्बन्ध में एक प्राचीन उपाख्यान [1] प्रसिद्ध है - एक दुष्ट विलाप गंगा के तट पर अत्यन्त सौम्य वृति धारण कर अभय की मुद्रा में हाथ उठाकर लोगों को दिखाने के लिए तप कर रहा था उसने सर्वत: यह प्रसिद्ध कर दिया कि मैंने हिंसा वृति त्याग कर धर्म-कर्म करने का निश्चय कर लिया कई दिनों तक उसका आचरण देख कर सब पक्षी उसे धर्मात्मा समझकर उसका आदर एवं विश्वास करने लगे कुछ समय पश्चात कुछ मूषक अपने विशाल कुटुम्ब की रक्षा के लिए उसकी शरण में गये उस विलाप ने कपटाचरण के द्वारा उनका भक्षण करना आरम्भ कर दिया । जब चूहों का वास्तविकता ज्ञात हुई तो वे इधर - उधर भाग गये वह बिलाव भी निराश हो कर लौट गया । अत: धर्म का ढोंग रचाकर कपटाचरण करने वाले से सदा सावधान रहना चाहिए इसके विपरीत वास्तविक धर्मचारी को दूसरों के कहने पर पाखण्डी एवं मूर्ख न मानकर उसका हित करना चाहिए क्योंकि वास्तविक धर्मानुगामी की अभिहित कामना करने वाले अनेक ईर्ष्यालु हुआ करते हैं ।

इस सन्दर्भ में सियार तथा व्याघ्र की कथा [2] का

---

1. उद्योगपर्व हि0 महाभारत, अध्याय 160
2. शान्ति पर्व सं0 महाभारत, पृ0 1239-41

उल्लेख है । इसी भांति इन्द्र और तोते के संवाद[1] द्वारा वास्तविक सुहृद एवं भक्त का परिचय दिया गया है । महाभारत में इस प्रकार के एक नहा अनेकों उपाख्यान है जो किसी न किसी उपदेश का प्रतिपदान करते हैं इस आ-ख्यानों के कारण ही महाभारत का कलेवर और भी विशाल हो गया है । धैर्य, त्याग और निष्ठा आदि की प्रशंसा करते हुए मनुष्य के लिए उनका महात्म बताने के लिए भी आख्यानों को दृष्टान्त रूप में प्रस्तुत किया गया है । धैर्य की महत्ता तो सर्वविदित है । धैर्यशाली व्यक्ति ही विपत्तियों का सामना करने के लिए अभिष्टसिद्धि में सफल हो सकता है ।

इस धैर्य की पराकाष्ठा का वर्ण न राजा कुशिक और च्यवन मुनि के उपाख्यान [2] द्वारा हुआ है । प्राचीन काल में भृगुवंशी महर्षि च्यवन को यह ज्ञात हुआ कि उनके वंश में कुशिक वंश की कल्या के सम्बन्ध से क्षात्रित्व का महान दोष आने वाला है यह ज्ञात होने पर उन्होने सम्पूर्ण कुशिक वंश को भष्म कर डा ने का विचार किया । उन्होन राजा कुशिक के पास जाकर कहा मैं कुछ काल तक तुम्हारे साथ

---

1. अनुशासनपर्व, वही पृ0 1456-57
2. वही पृ0 1492-95

रहना चाहता हूँ यह सुनकर राजा ने उनका यथोचित सत्कार किया और अपनी पत्नी - सहित सेवा में उपस्थित होकर कहा कि कि मेरा सर्वस्व आपके ही अधीन है, मैं तो आपकी आज्ञा को पालन करने वाला सेवक मात्र हूँ ।

महर्षि च्यवन यह सुनकर प्रसन्न हुए और उन्होंने कहा कि मुझे आपका धन अथवा राज्य कुछ भी नही चाहिए। मै एक नियम करने वाला हूँ अतः यदि आप दोनों की इच्छा हो तो आप निष्ठापूर्वक मेरी सेवा करें । राजदम्पत्ति ने यह बात सहर्ष स्वीकार कर ली और महर्षि को पृथक शयनकक्ष में ले गये । वहाँ भोजनोपरान्त महर्षि ने राजा से कहा कि अब मैं सोना चाहता हूँ । तुम लोग सोते समय मुझे मत जगाना और सदा जागकर मेरे पैर दबाते रहना । तदुपरान्त च्यवन इक्कीश दिन तक एक ही करवट सोते रहे । बाइसवें दिन वे उठे और बिना किसी ओर देखे महल से बाहर चले दिये । राजदम्पत्ति इतने दिन तक जागते रहे और भोजन न करने से अत्यन्त दुर्बल हो गये थे किन्तु फिर भी वे मुनि के पीछे- पीछे चले । कुछ दूर जाकर मुनि अन्तर्ध्यान हो गये । इस पर दोनो अत्यन्त दुखी हुए और बहुत देर तक मुनिवर

को ढूढ़ते रहे । अन्त में निराश होकर महल में लौट आये । लौटने पर उन्होंने मुनि को पुनः उसी पलंग पर सोते देखा ।

इस बार वे निरन्तर इक्कीस दिन दूसरी करवट सोते रहे और राजा - रानी पुनः निर्विकार भाव से उनके पैर दबाते रहे । बाइसवें दिन उठने पर उन्होंने शरीर में मालिश करवाई और फिर स्नानागार में चले गये । स्नान कर चुकने पर राजा ने उन्हें भोजन दिया तो उन्होंने शय्या और बिछौने सहित भोजन को रखकर आग लगा दी और पुनः लोप हो गये । इस पर भी उस दम्पति ने क्रोध नही किया । रथ में जुत जाओं और मन्थर गति से चलते हुए मुझे नगर भ्रमण कराओ । साथ ही मैं ब्राहमणों को मार्ग में दान भी दूँगा अतः उसके लिए धनादि की व्यवस्था भी कर दों । राजा सब व्यवस्था करके पत्नी सहित रथ खीचनें लगे ।

इस प्रकार महर्षि बीच- बीच में उन्हें सुई की नोक वाले चाबुक से मारते भी थे । कृशता के कारण उनके शरीर काप रहे थे और मार पड़ने पर रूधिर प्रवाहित हो रहा था। उनकी ऐसी दयनीय दशा देखकर प्रवासी अत्यन्त दुखी थे किन्तु शाप के भयवश कुछ बोल नही पाते थे । महर्षि च्यवन ने इतना होने पर भी अब निर्विकार देखा तो उनका धन लुटाने लगे किन्तु इस कर्म में भी

राजा ने प्रसन्नतापूर्वक सहयोग दिया। ।

यह सब देखकर महर्षि च्यवन बहुत सन्तुष्ट हुए और उन्होने रथ से उतर कर दोनो को अपने कर से स्पर्श से स्वस्थ एवं निरोग कर दिया तथा अपने वरदान से उनकों समस्त सुख-समृद्धि का भी अधिकारी बना दिया । राजा कुशिक ने अपने अतुलनीय धैर्य के द्वारा अपने वंश को नष्ट होने से बचा लिया।

इसी प्रकार माता-पिता की सेवा करके उन्हें प्रसन्न करने वाला पुत्र इस लोक में सुयश एवं सनातन धर्म का विस्तार करता हुआ अन्त में उत्तम लोकों को प्राप्त करता है । इसीलिए महाभारत में इन दोनो का माहात्म्य भी वर्णित है ।

अतः माता-पिता की सेवा करने वाला पुत्र तथा पातिव्रत्य का पालन करने वाली स्त्रियां सबके लिए आदरणीय होते हैं । स्त्री के लिए यज्ञ, श्राद्ध, उपवास आदि का विशेष विधान नही है, वह केवल पति की सेवा से ही स्वर्गलोक जीत लेती है । इसी सन्दर्भ में पतिव्रता स्त्री की एक कथा [1] है - पूर्वकाल में अत्यन्त धर्मात्मा और तपस्वी कौशिक नामक ब्राहमण था। एक बार वह एक वृक्ष के नीचे बैठा वेदपाठ कर रहा था कि एक बगुली ने उसके ऊपर मलत्याग कर दिया । यह देखकर वह अत्यन्त क्रोधित हुआ और उसकी क्रोधदृष्टि को सहन न कर सकने के कारण

1. वनपर्व, सं0 महाभारत , पृ0 376-78

अगुली गिर पड़ी और मर गई ।

ब्राहमण भिक्षाटन करता हुआ एक गाँव में पहुचा और एक पतिव्रता स्त्री के द्वार पर गया वह स्त्री " अभी लाती हूँ" कहकर ज्यों ही भिक्षा लाने गई कि उसका पति बाहर से आ गया । वह बहुत भूखा था अतः वह स्त्री पति को भोजनादि देने लगी और भिक्षा देना भूल गई पति को भोजन दे चुकने पर उसे ब्राहमण का स्मरण हुआ और वह तुरन्त भिक्षा लेकर गई और विलम्ब के लिए क्षमा मांगी वह ब्राह्मण अत्यन्त कुपित हुआ तथा कहने लगा कि ब्राहमण का अनादर करके पति को श्रेष्ठ मानना उचित नही है । उसके क्रोधपूर्ण बचनों को सुनकर वह स्त्री बोली कि मुझे आप बगुली न समझिएगा जो मै आपके क्रोध से नष्ट हो जाऊँगी । ब्राहमण तो पूज्य है ही लेकिन पति से बढ़कर मेरे लिए अन्य कोई नहीं है । ज्ञात होता है कि आप धर्म के यथार्थ तत्व से अनभिज्ञ हैं ।

इस प्रकार आप उसे जानना चाहते हैं तो माता-पिता के भक्त, सत्यवादी और जितेन्द्रिय धर्मज्ञ से पूछए वही आपको धर्म का तत्व समझा देगा । यह सुनकर ब्राहमण का क्रोध शान्त हो गया और उसे अपनी भूल भी ज्ञात हो गई । पतिव्रता के कथनानुसार कौशिक धर्मज्ञ के पास मिथिला गये । मांसविक्रय में रत धर्मज्ञ उन्हे पहचान गया और बोला कि मुझे ज्ञात है कि उस पतिव्रता ने आपको मेरे पास भेजा है यह सुनकर कौशिक अत्यन्त विस्मित हुए

धर्मज्ञ ने कहा कि यद्यपि उसकी जीविका का साधन यह घृणित कर्म है किन्तु वह दूसरों द्वारा मारे गये पशु ही बेचता है तथा स्वयं सभी प्रकार के सदाचारपूर्ण जीवन व्यतीत करता है उसने कहा - कि " मै अपने माता-पिता को सर्वाधिक पूज्य मानता हूँ और उनकी सेवा सुश्रूषा पूर्ण मनोयोग से करता हूँ वह स्त्री अपने पतिव्रता प्रभाव से सब बातें जानती हैं और मुझे भी माता-पिता की सेवा से दिव्य दृष्ट प्राप्त है आपने क्योंकि माता-पिता की सहमति के बिना गृह-त्याग किया है । कि आपने अभी तक धर्म के यथार्थ स्वरूप का बोध नही हुआ है ।

आप घर जाकर अपने वृद्ध माता-पिता की सेवा कीजिए यह सब सुनकर कौशिक अत्यन्त प्रशन्न हुए और स्वयं ही घर जा कर माता पिता की सेवा करने लगे । पतिव्रत्य सम्बन्ध में महाराजा अश्वपति की कन्या सावित्री का उपाख्यान[1] तथा सुदर्शन का उपाख्यान[2] भी उल्लेख किया है । असत्पात्र को दिया गया उपदेश व्यर्थ ही होता है इसी भांति उपदेश सदैव शीलवान एवं

---

1. वनपर्व, हि0 महाभारत , अध्याय 293- 299
2. अनुशासनपर्व, सं0 महाभारत, अध्याय 650

कुलीन व्यक्ति को देना चाहिए अन्यथा उपदेष्ठा को ही हानि होता है। इस विषय से सम्बन्धित एक शूद्र और मुनि की कथा[1] है । जिसमें मुनि ने शूद्र को उपदेश देने से अगले जन्म में पुरोहित पद प्राप्त किया और वह शूद्र उसका राजा एवं स्वामी बना इसीलिए शूद्र जाति के व्यक्ति को उपदेश देने से ब्राह्मण दोष का भागी होता है । जीविका की दृष्टि से उपदेश करने वाला भी अपने धर्म की हानि ही करता है । अतः धर्मपालन के इच्छुक विद्वान पुरुष को सोच-विचार का उपदेश देना चाहिए ।

उपाख्यानों एवं कथाओं का मूल उद्देश्य महाभारत में निहित है । विभिन्न, आध्यात्मिक, नैतिक, धार्मिक एवं लौकिक उद्देश्यों के माध्यम से रूचिकर एवं ग्राह्य बनाना था । यद्यपि कौरव-पाण्डवों के माध्यम से धर्म और अधर्म का युद्ध ही इसका प्रतिपाद्य था किन्तु उसने सभी प्रकार के उपदेशों और शिक्षाओं का इतना प्राचुर्य हो गया कि उसका कलेवर बढ़ता गया और ऐसी मान्यता है अनेक आख्यान भी इसमें बाद में जोड़े गये ।

नीतिशास्त्र से सम्बन्धित समस्त शिक्षाओं का इसमें सन्निवेश है इसकी कथाओं का सौन्दर्य इतना अनुपम है कि यह सर्वथा उचित ही कहा गया है कि इस पृथ्वी पर काई भी ऐसी सुन्दर कथा नही है जो महाभारत के उपाख्यानों में न समादिष्ट

---

1. वही, पृ० 1461-62.

हो गई हो।[1] इसी भांति उत्तरवर्ती कथा-साहित्य में इसकी नीति-कथाओं का प्रचुर प्रयोग किया गया है।

---

1. अनाश्रित्यैतदाख्यानं कथा भुवि न श्रियते।
   महाभारत, आदिपर्व 2/388.

---x---

चतुर्थ - अध्याय

:: पौराणिक कथाओं का अध्ययन ::

चतुर्थ - अध्या

- पौराणिक कथाओं का अध्ययन -

"पुराण" शब्द की व्युत्पत्ति पाणिनि,[1] यास्क तथा स्वयं पुराणों द्वारा भी की गई है । ऋग्वेद में "पुराण" शब्द का अर्थ है प्राचीन अथवा पूर्व काल में होने वाला ।भारतीय पुराण साहित्य अत्यन्त विशाल है । मानव जीवन के सभी क्षेत्रों का संस्पर्श पुराणों में उपलब्ध होता है । पं0 बलदेव उपाध्याय[2] ने तो पुराणों को वह मेरूदण्ड माना है जिस पर आधुनि भारतीय समाज अपने नियमनको प्रतिष्ठित करता है । पुराण शब्द का अर्थ है प्राचीन अथवा पुरानी कथाओं अथवा आख्यायिकाओं कागृंथ।

ये कथाएं अति प्राचोन काल से पवित्र धरोहर एवं परंपरा-गम सम्पदा के रूप में सुरक्षित हैं यू तों इनका प्रणयन धार्मिक दृष्टि से हुआ है ।

यास्क के निरुक्त §3/19§ के अनुसार इसकी व्युत्पत्ति है - "पुरा नवं भवति" § अर्थात जो प्राचीन होकर भी नया होता है§ । " वायु-पुराण"[3] के अनुसार "प्राचीन काल में जो जीवित था।

---

1. पुराण- विमर्श, पृ0 3
2. पाणिनसूत्र 4/3/23, 2/1/49 तथा 4/3/105
3. यस्मात् पुरा---- प्रमुच्यते ।। - वायु0 1/203.

"पद्मपुराण[1] के अनुसार जो " ब्राह्मण पुराण" की व्युत्पत्ति के अनुसार "पुरा एतत् अभूत" अर्थात प्राचीन काल में ऐसा हुआ ।"विष्णु-पुराण"[2] के अनुसार पुराणार्थ-विशारद वेदव्यास ने आख्यान, उपाख्यान, गाथा, तथा कल्पशुद्धि § इन चार उपकरणों के आधार पर पुराण संहिता की रचना की । पुराण-संकलन की प्रक्रिया में आख्यान एक महत्वपूर्ण उपादान था । संकलित होने के पूर्व पुराण आख्यान का ही पर्याय था इसकी सत्ता पृथक नही थी, प्रत्युत वेद का ही यह एक अंग था। स्कन्दपुराण के एक कथन[3] के अनुसार पुराणों में पंचांगी § पंचलक्षणों§ के अतिरिक्त जो विवेचनीय विषय है वे"आख्यान" कहलाते हैं इसका तात्पर्य यह है कि आख्यान का समावेश पुराणों में एक लघु इकाई के रूप में किया गया है । "आख्या" तथा"उपख्यान शब्दों के अर्थ के विषय में वैमत्य है किन्तु सामान्यतः उनका प्रयोग"कथानक" के अर्थ में ही किया गया है ।

---

1. पुरा परम्परां वष्टि पुराणं, तेन तत् स्मृतम् ।।- पद्म 5/2/53
2. आख्यानैश्चाप्युपाख्यानैर्गाथाभिः कल्पशुद्धिभिः ।
   पुराणसंहिता चक्रे पुराणार्थविशारदः ।।

   विष्णु0, अंश, 3, अध्याय- 6-15
3. पंचांगानि पुराणस्य चाख्यानमितरत् स्मृतमं ।

आख्यान और उपाख्यान में वही सम्बन्ध संभावित किया जा सकता है जो संबन्ध कथा और अवान्तर कथा में हैं । सिद्धेश्वरी नारायण राय के अनुसार " पौराणिक " आख्यानों की यह विशेषता थी कि इनके माध्यम से विषयान्तर को व्यक्त किया जाता था। किसी देश की पौराणिक कथाएँ[1] वहाँ की प्राचीन संस्कृति, उर्वरा कल्पना तथा उसके सांस्कृतिक आदान-प्रदान आदि को परिचायिका होती है । ये धर्म से सम्बद्ध हैं कथाएँ होती है, जो अत्यन्त प्राचीन काल से प्रायः सभी देशों में परम्परागत रूप से चली आ रही है।

विश्व के सभी देशों की पौराणिक थाओं की वैज्ञानिक छानबीन के आधार पर यह अनुमान लगाना सत्य से दूर न होगा कि पौराणिक कथाएँ मूल्यतः धर्म परक लोककथाएं रही होंगी ।[2] पुराणों की संख्या प्राचीन काल से अष्टादश मानी गई है । इनका नाम

---

1. पौराणिक कथाओं के लिए बाधक अंग्रेजी माइथलाजि शब्द चल रहा है । वस्तुतः इसके लिए शुद्ध श्रेणी शब्द "मिथ" है । माइथलाजि शब्द दो शब्दों से मिलकर बना है ग्रीक "माइथास लोककथा, कहानी + लागोस = शास्त्र, विज्ञान । इस प्रकार इसका यथार्थ अर्थ पौराणिक कथा न होकरके " पौराणिक कथाविज्ञान या पौराणिक कथा है ।

2. डा0 भोला नाथ तिवारी, भारतीय पौराणिक कथाएं, राजकमल प्रकाशक प्राइवेट लि0 , दिल्ली 1961.

निर्देश प्रायः सभी पुराणों ने किया है । देवी-भागवत[1] के अनुसार -

> मद्वयं भद्वयं चैव ब्रत्रयं वचतुष्टयम् ।
>
> अनापलिंगम्-कू-स्कानि पुराणानि प्रचक्षते ।।

उल्लिखित अनुष्टुप में अठारह पुराणों के अक्षर का निर्देश दिया गया है । मकारादि दो पुराण-मत्स्य तथा मार्कण्डेय, भकारादि दो पुराण- भागवत तथा भविष्य, ब्रत्रयं-ब्रह्म, ब्रह्मवैवर्त तथा ब्राह्माण्ड, वचतुष्टयम- वामन, विष्णु, वाराह, तथा वायु, अनापद् लिंग कूस्क - अग्नि, नारद, पद्म, लिंग, गरूड़, कूर्म तथा स्कंद मत्स्यपुराण[2] में भी इन पुराणों का नाम तथा प्रामाणिक वर्णन प्राप्त होताहै ।

विष्णु पुराण[3] तथा भागवत पुराण[4] में इन पुराणों का जो क्रम तथा नाम निर्दिष्ट है प्रायः वही अन्य पुराणों में भी उपलब्ध होता है इस दृष्टि से इनका क्रम है- ब्रह्म, पद्म, विष्णु, शिव, भागवत, नारदीय, मार्कण्डेय, अग्नि, भविष्य, ब्रह्मवैवर्त, लिंगम्, वाराह, स्कन्द, वामन, कूर्म, मत्स्य, गरूण तथा ब्रह्माण्ड ।

---

1. स्कन्द 1, अध्याय - 3, श्लोक 2।
2. अध्याय - 53
3. 3/6/20-24
4. 12/13/1-8

विष्णु पुराण[1] में इन अठारह पुराणों को "महापुराण" की संज्ञा दी गई है ।

हिन्दू-समाज में वेदों के अनन्तर इन्ही की प्रतिष्ठा है, पुराण धार्मिक ग्रन्थ है । वैदिक वांगमय सर्वग्राह्य नही था, अतएव वेदोक्ति को आख्यान के माध्यम से प्रस्तुत करने का अभिप्राय था-वेद से अनभिज्ञ जन-सामान्य के ज्ञान को गुस्तर बनाना । पौराणिकों का मूल उद्देश्य अपने ग्रन्थों में उच्चकोटि के धर्ममूलक एवं दर्शन - मूलक तत्वों को सरल एवंसुग्राह्य शैली में उतारना था पुराणकारों ने महाभारत में उपलब्ध "अत्राप्युदाहरान्तमितिहासं पुरातनम्" की प्रश्न-समाधान शैली को सुरक्षित रखते हुए आख्यान-समन्वित विपुल पुराण साहित्य का सृजन किया है ।

वासुदेवशरण अग्रवाल[2] के शब्दों में "भागवतों ने नव-साहित्य के निर्माण में प्रमुख भाग लिया है । वे उपाख्यानों की शैली में निष्णात थे । जिस प्रकार बौद्ध साहित्य में अनेक अवदानों की रचना हुई वैसे ही भागवतों ने अनेक नये उपाख्यान रचें । गुप्तयुग में

---

1. 3/6/24
2. मार्कण्डेय पुराण § एक सांस्कृतिक अध्ययन §, पृ0 13
   प्रकाशक : हिन्दुस्तान एकेडमी, इलाहाबाद , प्रथम संस्करण 1961.

बौद्धों का विपुल धार्मिक साहित्य काव्य होता था उसी के समक्ष ब्राह्मणों की रचना तत्कालीन पुराण-साहित्य में है । पुराण धर्म विशेषतः भक्ति पर आधारित है ।

प्रणयन भी किसी विशेष उपास्य देव भक्ति को लक्ष्य करके हुआ है । इस दृष्टि से पुराणों का विभाजन अनेक प्रकार से हुआ है । मत्स्य पुराण[1] पुराणों का त्रिविध विभाजन करता है - सात्विक, राजस और तामस । सात्विक पुराणों में विष्णु-महात्म्य, राजस पुराणों में ब्रह्म तथा अग्नि- महात्म्य तथा तामस पुराणों में शिव- महात्म्य अधिकांशतः वर्णित हैं । पुराणों का निम्न वर्गीकरण किया गया है :-

§1§ ब्रह्म = ब्रह्मविषयक 2 पुराण:- ब्रह्म तथा पद्म ।

विष्णु, भागवत, नारदीय तथा गरूड़।

§2§ शिव = शिव की उपासना से सम्बन्धित 10 पुराण :-

शिव, भविष्य, मार्कण्डेय, लिंग, वाराह, स्कंद मत्स्य, कूर्म, वामन, तथा ब्रह्माण्ड ।

§3§ विष्णु = विष्णु की उपासना से संबन्धित 4 पुराण :-

विष्णु भागवत, नारदीय, तथा गरूड़ ।

§4§ सावित्र = सूर्य विषयक 1 पुराण :- ब्रह्मवैवर्त ।

§5§ अग्नेय = अग्निविषयक पुराण :- अग्निपुराण ।

इस विभाजन के अनुसार पद्म पुराण को § ब्रह्म " माना गया है जबकि इसमें सर्वत्र भगवान विष्णु की महिमा का ही प्रतिपादन है। किन्तु इतना तो सुस्पष्ट है कि पुराण किसी न किसी संप्रदाय- विशेष सिद्धान्तों और उससे संबन्धित उपास्य- देवों की महिमा का ही मुख्यतः निरूपण करता है।

पौराणिक आख्यानों की एक विशेषता: यह भी है कि इनके स्वरूप को परिवर्तित परिस्थितियों के अनुकूल तथा सामान्य-जन-समुदाय के प्रवृत्ति के अनुसार नियोजित किया गया है। अतः पौराणिक आख्यानों और कथाओं की पृष्ठिभूमि में मनोवैज्ञानिकता दिखाई पड़ती है।, जो उसे जन- सामान्य की रीति के अनुकूल बनाने में समर्थ है। यदि इन कथाओं में कोरा आदर्शवाद और पारलौकिकता का प्रदर्शन होता तो उनके प्रणयन का उद्देश्य कदापि पूर्ण न होता।

पुराणों में आख्यान-शैली को प्राथमिकता दी गई थी, अतः प्रचलित कथाओं का संन्निवेश उसमें सहज और स्वाभाविक था। ये कहानियाँ मानव जीवन की उपकारक प्रवृत्तियों का जागृत एवं क्रियाशील बनाने की प्रेरणा में बेजोड़ हैं। दया, परोपकार, मैत्री, करुणा, अस्तेय, अपरिग्रह, सत्याचरण, ब्रह्मचर्य, साहस सरलता, निरभिमानिता, त्याग, संयम, व्रत-उपवास, जप-तप विविध-

दान, तीर्थाटन, चित्तवृत्तियों के नियमन आदि प्रसंगों पर तो पुराणों की सैकड़ो रोचक कहानियां हैं ।[1] इन की सबसे बड़ी विशेषता यही है कि इतनी प्राचीन होते हुए भी ये नूतन प्रतीत होती हैं और मन को आकृष्ट करती है ।

पुराणों में उपलब्ध कथाओं को कतिपय विशिष्ट वर्गों में विभाजित किया जा सकता है । प्रथमतः ये कथाएं हैं जिनका सम्बन्ध वंशानुचरित से है । इनमें कुछ कथाएं शुद्ध काल्पनिक हैं और कुछ इतिहास पर आधारित हैं । इनका उद्देश्य किसी महान पुरूष के जीवन- चरित्र के वर्णन द्वारा एक आदर्श उपस्थित करना है। सत्यवादी हरिश्चन्द्र, आदर्शवादी राम और दानवीर कर्ण, आदि महान पुरूषों की कथाएं इसी कोटि में की गई हैं । इनका ध्येय औपदेशिक हैं । द्वितीय कोटि में वे कथाएं हैं जो किसी उपास्य देव का महात्म्य प्रतिपादित करती हैं और उस सम्प्रदाय-विशेष की महिमा का वर्णन करते हुए उसी का पालन करने की प्रेरणा देती है । तृतीय कोटि में ये कथाएं सन्निविष्ट हैं जो मुख्यतः सदाचार और नीतिपरक दृष्टिकोण से लिखी गई हैं । ये मनुष्य को

---

1. रामप्रताप त्रिपाठी० पुराणों की अमर कहानियां
साहित्य भवन §प्राइवेट लिमिटेड§, इलाहाबाद ।
पृ0 3, 1961.

कुमार्ग से निवारित कर सत्यपथगामी बनने की प्रेरणा देती है कुछ कथाएँ विभिन्न प्रकार के पर्वों और कर्मकाण्डों आदि की व्याख्या प्रस्तुत करने के लिए भी कल्पित कर ली गई है । इसके अतिरिक्त सृष्टि- निर्माण, स्वर्ग- नरक, जन्म-मृत्यु, तथा मरणानन्तर स्थिति प्रलय, अवतार, अकाल - महामारी, का कारण आदि से सम्बद्ध अनेक कथाएँ भी उपलब्ध होती है । इस भाँति हम देखते है कि पौराणिक कथाओं में विषय - वैविध्य प्राप्त होता है ।

इनकी महत्ता का प्रतिपादन डा० यदुवंशी ने इन शब्दों में किया है -" आजकल जो पुराण- ग्रन्थ उपलब्ध हैं । वे अधिकांश पूर्वकालीन पुराण- ग्रन्थों के ही नवनिर्मित संस्करण हैं, परन्तु उनमें बहुत सी नयी बातों का भी समावेश कर दिया है, जिनका संबंध समकालीन धार्मिक व्यवस्था और देवकथाओं से हैं । तथ्य तो यह है कि इन ग्रन्थों में इस नयी सामग्री की मात्रा इतनी अधिक है कि इसके कारण पुराणों के प्राचीन ऐतिहासिक रूप का तो प्रायः लोप ही हो गया है । अधिकांश पाठकों के लिए वह शुद्ध रूप से धार्मिक आदेश- ग्रन्थ हैं । जो लोग किसी कारण वैदिक साहित्य का परिचय प्राप्त करने में असमर्थ है, उनके लिए यह पुराण ग्रन्थ ही श्रुति-समान माने जाते हैं । अतः भारतीय धर्म के किसी भी अध्येता के लिए इन ग्रन्थों का अध्ययन अनिवार्य है ।[1]

---

1. शैवमत, पृ० 96, प्रकाशक-बिहार-राष्ट्रभाषा परिषद सम्मेलनभवन-पटना 1955

इस प्रकार पुराण प्रायः एक ही विषय को लेकर चले हैं, केवल उद्देश्य के भेद से ही उनमें भेद हो गया है । पुराणों के विषय ब्रह्मा, विष्णु, शिव, सूर्य, गणेश, शक्ति आदि देवताओं के गुणों का कीर्तन है ।[1] 18 पुराणों में से प्रायः, अधे वैष्णव पुराण माने जाते हैं । स्कन्द पुराण के अनुसार तो विष्णु, भागवत, नारद तथा गरुड़ ये चार ही वैष्णव पुराण माने गये हैं।

इन चारों में विष्णु के साथ साथ शिव की भी विशेषता बताई गई है । भगवद् गीता और विष्णु पुराण वैष्णवदर्शन के मूल आलम्बन माने गये हैं । भगवान विष्णु की महिमा का वर्णन करना इनकी बड़ी विशेषता है । वैष्णव धर्म एक उदार धर्म हैं । जिसमें सभी को भक्ति का समान अधिकार है । इसमें सबको समान मानते हुए ऊँच-नीच का कोई भेद नहीं रखा गया है ।

इसके साथ ही मनुष्य को कुमार्ग से हटकर सत्यमार्ग पर लाने के लिए सच्चरित्र महानुभावें और दुश्चरित्र व्यक्तियों की कर्तृत्वों और उसके परिणामों के विवेचन द्वारा विभिन्न शिक्षाएं भी देता है ।

मानव के आध्यात्मिक, नैतिक और सामाजिक अभ्युदय के लिए समस्त तत्त्व एवं सिद्धान्त इसमें प्रतिपादित हैं । विष्णु पुराण छः अंश तथा 126 अध्याय हैं और उनके पश्चात् धर्मोत्तर

---

1. डा0 हरवंशलाल शर्मा, सूर्य और उसका साहित्य, प्रकाशन-अलीगढ़ 197

खण्ड है । इसकी श्लोकसंख्या 23000 मानी गई है ।[4] प्रथम अंश में सृष्ट्युत्पत्ति वर्णन के अनुसार प्रहलाद चरित्र और कर्तव्य का वर्णन है । द्वितीय अंश में आश्रम - संबन्धी कर्तव्यों का विशेष निर्देश है । तृतीय अंश में पहले सात मन्वन्तरों के मनु, इन्द्र, - देवता, सप्तर्षि और मनु पुत्रों का वर्णन है । तद्युगानुसार विभिन्न व्यासों के नाम तथा ब्रह्मज्ञान के महात्म्य का वर्णन है। पंचम अंश में श्रीकृष्ण का अलौकिक चरित्र-वर्णन है । षष्ट अंश में प्रलय तथा भक्ति का वर्णन किया गया है ।

वाराह पुराण[1] के अनुसार विष्णु के उपासक ही वैष्णव कहलाते हैं । इस पुराण में विष्णु भक्ति की ही प्रधानता दी गई है। लिंगपुराण[2] के अनुसार भी वासुदेव के भक्त वैष्णव कहलाते हैं विष्णु की उपासना करने वाले मनुष्य को चाहिए कि पहले वह सम्पूर्ण बाह्य विषयों से चित्त को हटाये और उसे जगत में एक मात्र आधार विष्णु में स्थिर करें ।[3]

विष्णुपुराण में इस प्रकार के संवाद भी निर्मित किए गये हैं जिनके द्वारा ब्रह्मविद्या एवं योग का निरूपण कराया जा सके ।

---

1. वैष्णावा .... तत्परा: ।। 2/1/9

2. वैष्णावा .... वासुदेवपरायणा: ।। 2/4/।

3. विष्णु पुराण 1/11/52-55

शिष्टाचार भारतीय धर्म की मुख्य विशेषता है । जो इसका पालन नही करता वह अशिष्ट कहलाता है । विष्णु पुराण मनुष्य के नैतिक उत्थान पर बल देते हुए विभिन्न शिष्टाचारों के पालन का उपदेश देता है । माता-पिता, गुरु और वृद्ध जनों का सम्मान एवं आदर शिष्टाचार का प्रथम लक्षण है । जो व्यक्ति अपने बड़ों का आदर एवं सम्मान नही करते बल्कि अनादर एवं उपहास करते हैं उन्हे सद्गति कदापि नहीं प्राप्त हो सकती । विष्णुपुराण में यदुवंश के नाश का मुख्य कारण बड़ों के प्रति अशिष्टता का व्यवहार को बताया गया है ।

महर्षियों ने बालकों की उपहासवृत्ति को लक्ष्य कर क्रोध पूर्वक उत्तर दिया कि उसके मुसल उत्पन्न होगा, जो यादव कुल के संहार का कारण होगा । राजा उग्रसेन को जब सम्पूर्ण वृतान्त ज्ञात हुआ तो उन्होने यथा समय उत्पन्न मूसल को चूर्ण करवा कर समुद्र में फेंकवा दिया इससे बहुत से सरकंडे उत्पन्न हो गये मूसलके भाले की नोक के समान अवशिष्ट भाग को एक मछली ने निगल लिया । यही श्रीकृष्ण के पंचभौतिक शरीर के विनाश का कारण हुआ । इसीलिए एक ऐसे प्रसंग का निर्माण किया गया है जिससे अभीष्ट पूर्ण के साथ-साथ लोगों को कुछ शिक्षा भी प्राप्त हो।

अतः इस कथा द्वारा यह शिक्षा दी गई कि शिष्टाचार

का इतना समाज के पतन का भावी लक्षण समझना चाहिए । इस कथा [1] में भी इसी प्रकार की शिक्षा दी गई है एक बार अष्टावक्र के आठ स्थानों से टेढ़े शरीर को देखकर अप्सराएं हंसने लगी । महर्षि ने उन्हें शाप दिया कि तुमने मेरा उपहास किया है इसलिए तुम भगवान विष्णु को पतिरूप में प्राप्त करके भी अपहृत कर ली जाओगी ।

इस प्रकार अनेक अन्य कथाओं के द्वारा बड़ों के प्रति आदर और सम्मान की भावना प्रदर्शित करने की प्रेरणा दी गई है। विष्णुपुराण में सर्वत्र पाप और पुण्य के संघर्ष में पुण्य की ही विजय दिखलाई गई है । इसमें कुछ ऐसे व्यक्तियों का चित्रण है जो अहंकार के मद में अपने को सर्वशक्तिमान मान बैठते हैं किन्तु अंत में उनका नाश हो जाता है । अहंकार - प्रदर्शन के निमित्त रचित कथाओं में राजा वेन [2] और हिरण्यकशिपु [3] के चरित्र प्रमुख हैं । इस प्रकार क्रोध, मोह, तृष्णा और अविवेक इत्यादि अन्य मनोविकारों के सावधान करने के लिए विभिन्न आख्यान रचे गये हैं ।

---

1. विष्णु पुराण 6/38/79-82
2. वही 1/12/13-24
3. वही 1/16/1-10

इनमें भरत का उपाख्यान, महर्षि सौभरि का उपाख्यान, इन्द्र और दुर्वासा का उपाख्यान, राजा निमि और वशिष्ट काउपाख्यान, राजा ययाति का उपाख्यान, राजा शान्तनु का उपाख्यान आदि भरे पड़े हैं ।

मनुष्य में मस्तिष्क पर गण्यमान्य व्यक्तियों के जीवन की सत्य घटनाओं का प्रभाव अधिक पड़ता है अतः "सज्जन" और "दुर्जन" दोनो प्रकार के चरित्रों का वर्णन करके सज्जनों के मार्ग को श्रेयस्कर औरहितकर बताया है । कभी- कभी मनुष्य अपने जीवनकाल में ऐसी आपत्ति में फंस जाता है । क उचित मार्ग का चयन करने में उसे अत्यन्त कठिनाई होती है तथा किंकर्तव्यविमूढ़ होकर वह कल्याणप्रद मार्ग निर्धारित नही कर पाता । ऐसी परिस्थितियों में महान व्यक्तियों द्वारा उन परिस्थितियों में निर्धारित पद उसके लिए दीपस्तम्भ का कार्य करता है । जिससे वह यथोचित निर्णय लेने में समर्थ हो जाता है

विष्णु पुराण में अनेक वंशों के महान पुरुषों का चित्रण है । इनमें इक्ष्वाकुवंश, निमि वंश, रजि वंश, यदुवंश, अनामित्रवंश, तुर्वसु वंश, अनु, पुरु, कुरु आदि अनेक वंशों के महान पुरुषों का चरित्र चित्रण किया गया है ।

श्रीमद्भागवत मुख्यतः अद्वैत तत्व का स्पष्ट निरूपण करता है । श्रीमद्भागवत पुराण भक्ति शास्त्र का सर्वस्व माना जाता

मत्स्यपुराण[1] के अनुसार इसमें धर्म का तत्व वर्णित किया गया है। श्रीमद्भागवत को वैष्णव आचार्यों ने प्रस्थानत्रयी के समान अपना उपजीव्य माना है। वैष्णव भक्तों के लिए यह एक अमूल्यनिधि है।[2] "भागवतों ने नव-साहित्य के निर्माण में प्रमुख भाग लिया कोई उपाख्यानों की शैली में निष्णात थे। जिस प्रकार बौद्धसाहित्य में अनेक अवदानों की रचना हुई वैसे ही भागवतों में अनेक नये उपाख्यान रचे।

उपाख्यानों का उद्देश्य इसी शिक्षा का प्रतिपादन है। जैसे - अवधूतोपाख्यान[3] में कपोत और कपोती के दृष्टान्त[4] द्वारा यह शिक्षा दी गई है कि कभी किसी के साथ अत्यन्त आसक्त नहीं करना चाहिए, अन्यथा उसकी बुद्धि जीर्ण होकर अपना स्वातंत्र्य खो देगी और उसे कबूतर की तरह अत्यन्त क्लेश उठाना पड़ेगा।[5]

---

1. यत्राधिकृत्य गायत्रीं वर्ण्यते धर्मविस्तरः ।
   वृत्रासुरवधोपेतं तद् भागवतमुच्यते ।।
   अष्टादश सहस्त्राणि पुराणं तत्प्रकीर्तितम् ।। 53/21-22

2. श्रीमद्भागवत 12/13/18

3. श्रीमद्भागवत 11/7/25-51

4. वही 11/7/52-74

5. नातिस्नेहः ...... दीनधीः ।। 52 ।।

द्वितीय अवधूतोपाख्यान में अजगर से लेकर पिंगला तक जिन नौ गुरुओं की कथा दी गई है उनमें से भी शिक्षाएं मिलती हैं ।

मनुष्य का हृदय तीक्ष्ण बाणों से बिंधने पर भी उतनी पीड़ा का अनुभव नही करता जितनी पीड़ा उन्हें दुष्टजनों के मर्मान्तिक एवं कठोर वाग्बाण पहुँचाते हैं । इसी से सम्बन्धित एक भिक्षुक का दृष्टान्त श्री कृष्ण उद्धव को सुनाते हैं। इसके साथ ही अन्त में योगसाधन का सार बताते हुए कहते हैं । कि प्यारे उद्धव ! अपनी वृत्तियों को मुझमें तन्मय कर दो और इस प्रकार अपनी सारी शक्ति लगाकर मन को वश में कर लो और फिर मुझ में ही नित्युक्त होकर स्थित हो जाओ ।इस सारे योगसाधन का इतना ही सार संग्रह है ।[1] भागवतों ने भगवान की नवधा भक्ति पर विशिष्ट बल दिया है। परम-भागवत प्रह्लाद हिरण्यकशिपु को विष्णुभक्ति के नौ भेद बतलाता है - श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पाद-सेवन, अर्चन, वन्दन, दास्य,

---

1. भागवत , 7/11

सत्य और आत्मनिवेदन । भगवान विष्णु में आत्मसमर्पण के भाव से यदि यह नौ प्रकार की भक्ति की जाए तो यही उत्तम अध्ययन §ज्ञान§ है ।[1]

भागवत में कतिपय ऐसे उदात्त प्रकरण उपलब्ध होते हैं जिनमें परमहत्त्व धर्म, अध्यात्म और पुरातनी योगविद्या का श्लाघनीय शैली में पल्लवन किया गया है। इनमें कपिलदेवहूति संवाद[2] कृष्णोपदेश,[3] अच्युत प्रहलाद संवाद,[4] हंसोपदेश,[5] जड़ भरत रहूगण संवाद इत्यादि प्रमुख है ।

गरुड़पुराण भी वैष्णव-भक्ति से संबन्धित एक प्रमुख पुराण है । वैष्णव भक्ति में कर्मयोग तथा ज्ञानयोग दोनो को समान महत्ता प्रदान की गई है। कर्मों से प्राप्त होने वाले फलों के

---

1. भागवत, 7/5/23-24
2. वही, 3/25-28
3. वही, 5/5
4. वही, 7/13
5. वही, 11/13-15

6. वही, 7 / 11

प्रति आसक्त हुए बिना समस्त कर्मों, विधियों एवं संस्कारों को सम्पादित करना कर्मयोग है। ये विधियां हैं देवपूजन, तपश्चरण, तीर्थयात्रा, दान एवं यज्ञ । यह कर्मयोग आत्मा को पवित्र करता है । और ज्ञानयोग की ओर ले जाता है । स्वयं को प्रकृति से पृथक तथा ईश्वर से अंश रूप में देखना ही ज्ञान हैं । यह ज्ञानयोग भक्ति की ओर ले जाता है । यमनियमादि आठ योगप्रक्रियाओं के द्वारा सतत् ध्यान भक्तियोग हैं । यह इन उपायों द्वारा प्राप्त होता है । §1§ विवेक- अदूषित एवं अनिषिद्ध भोजन के प्रयोग द्वारा शरीर की शुद्धि, §2§ विमोक- कामनाओं में अनासक्ति , §3§ अभ्यास- अभ्यास, §4§ क्रिया- इपने साधनों के अनुसार पंच- महायज्ञों एवं संस्कारों का सम्पादन, §5§ सत्य, ऋजुता, दया, दान जीव- अहिंसा आदि गुण । §6§ अनवसाद एवं §7§ अनुद्धर्ष- अतिसंतोष का अभाव । इन उपायों द्वारा संवर्धित भक्ति से ईश्वर का दर्शन होता है ।[1] अतः वैष्णव भक्ति से सम्बन्धित समस्त पुराणों में इन उपायों द्वारा परम ध्येय की प्राप्ति हेतु विभिन्न आख्यान एवं उपाख्यानों का समावेश कर भी दिया गया है। जिससे सामान्य भक्त भी अनेक प्रेरणा ग्रहण कर जीवन सफल बना सके ।

---

1. रामकृष्ण गोपाल भण्डारकर, वैष्णव शैव और अन्य धार्मिक मत अनु० प्रथम संस्करण अगस्त - 1967-पृ0 62

विष्णु भक्तों की पूजा के षोडश उपचारों का पालन करना पड़ता है। इनमें आठ उपचार तो पूर्वोल्लिखित भागवतपुराण के भक्ति के नौ प्रकारों में समाविष्ट, हैं केवल सख्य को छोड़ दिया गया है। अन्य आठ ये हैं[1]

§1§ शरीर पर शंख चक्र एवं हरि के अन्य आयुधों के लांछन अंकित करना।

§2§ ललाट पर लम्बी रेखा अंकित करना,

§3§ समय पर मन्त्रों का जप करना,

§4§ हरि के चरणामृत का पान करना,

§5§ हरि को समर्पित किया हुआ नैवेद्य खाना,

§6§ उनके भक्तों की सेवा करना,

§7§ प्रत्येक मास के कृष्ण एवं शुक्ल पक्षों की एकादशी के दिन व्रत रखना।

§8§ हरि की प्रतिमाओं पर तुलसीदल चढ़ाना।

इन समस्त उपचारों एवं उपायों का पालन करना प्रत्येक भक्त के लिए अनिवार्य है। पुराणों ने आख्यान - शैली का आश्रय ग्रहण कर उन्हें मनोवैज्ञानिक बना दिया जिससे उनका प्रभाव द्विगुणित हो गया।

---

1. भण्डारकर, पृ0 63

गरुड़पुराण में विष्णुभक्ति के साथ साथ अन्य देवी-देवताओं के पूजन का महत्व भी वर्णित है। यह पुराण भक्ति और मुक्ति[1] के आदर्श को प्रस्तुत करता है। इसमें भक्ति के आठ भेद बताये गये हैं।[2] हरि स्मरण, नाम कर्मादि कीर्तन, अर्चण सेवा, प्रणाम, पूजा, कथा- श्रवण और सभी प्रकार के भक्तिभाव सहित विष्णु में लीन हो जाना मुख्य रूप से विष्णुभक्ति के साधन कहें गये हैं।[3] विष्णु ही समस्त देवताओं में पूज्य और धर्म - विरोधी दुष्टों का दमन करने वाले कहे गये हैं।[4] वे संसार की रक्षा के लिए समय - समय पर विभिन्न अवतार धारण करते हैं। इन अवतारों का प्रमुख उद्देश्य लोकमर्यादा की सुरक्षा और दुष्टों का नाश कर लोककल्याण की स्थापना करना है।[5] वस्तुतः विष्णु को धर्म का मूर्त रूप माना गया है।[6] विष्णु

---

1. गरुड़, 1/82/1 §2§
2. " 1/2X9/9
3. " 1/219/1-8
4. " 2X31/45-88
5. डा० अवधबिहारी लाल अवस्थी, गरुड़पुराण §एक अध्ययन§ कैलाश प्रकाश लखनऊ, प्रथम संस्करण 1968. पृ० 189
6. गरुड़ 1/215/3

माहात्म्य परक पुराण होने पर भी इसमें रुद्र, ब्रह्मा, गणेश और सरस्वती का स्तवन भी किया गया है ।[1] तथा उनकी उपासना का महत्व भी बताया गया है ।

गरुड़ के अनुसार श्रुतिधर्म, स्मृतिधर्म और शिष्टाचार तीन सनातन धर्म हैं ।[2] इस पुराण का उत्तरार्ध "प्रेतखण्ड" कहलाता है। जिसमें 35 अध्याय हैं। मरणोपरान्त मनुष्य के कर्मानुसार गति का वर्णन करते हुए नरक और प्रेतयोनि का विशद निरूपण किया गया है । इसका उद्देश्य यही है कि मनुष्य उन पापकर्मों से बचकर रहे है जिनसे नरक की यातनाएं सहनी पड़ती है । प्रेतयोनि में जन्म का मुख्य कारण अकालमृत्यु के साथ-साथ मनुष्य की अनैतिकता और चरित्रहीनता है। यही कारण है कि प्रेतों से सम्बन्धित सैकड़ों उपाख्यान जनता को धार्मिक तथा नैतिक शिक्षा देने के उद्देश्य से लिए गये हैं । उदाहरणार्थ "संतप्तक" नामक तपस्वी ब्राह्मण से अपनी दुर्दशा बतलाते हुए प्रेतों ने कहा - दूसरी की धरोहर का अपहरण करने वाला, मित्रों से द्रोह करने वाला, विश्वासघाती, कूट पुरुष, कन्या विक्रय करने वाला, मिथ्याभाषी तथा पर-भूमि और

---

1. गरुड़ 1/1/2

2. गरुड़ 1/ 205/4

स्वर्ण का अपहरण करने वाला प्रेतयोनि को प्राप्त करता है ।
इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि जो व्यक्ति सत्य, न्याय, प्रतिज्ञापालन तथा आपद्ग्रस्तों की सहायता आदि सत्कर्मों का परित्याग करके निष्कृष्ट कार्य करते हैं वे मरणोपरान्त अधम प्रेतयोनि को प्राप्त कर नरक का दुख भोगते हैं। राजा अमुवाहन की कथा द्वारा भी यही बताया गया है कि दुराचारी, कृतघ्न और दुराग्रही व्यक्ति भी प्रेतयोनि प्राप्त करते हैं । अहंकार, नास्तिकता, क्षुद्रता, कृपणता और क्रोध आदि नरक के कारण माने गये हैं अतः परलोक में सुख की इच्छा रखने वाले को सद्कर्मों का आश्रय ग्रहण करना चाहिए।

नारद पुराण के विषय में मत्स्यपुराण[1] का कथन है कि यह पुराण बृहत्कल्प की कथा-संयुक्त पच्चीस सहस्र श्लोकों में निबद्ध है । यह भी मुख्यतः एक विष्णुपरक पुराण है । विष्णुभक्ति को ही मुक्ति का परम साधन सिद्ध किया गया है। इसी प्रसंग में विष्णु के परमभक्त राजा रुक्मांग्यद की कथा[2] द्वारा विष्णु -

---

1. यत्राह नारदो धर्मान् बृहत्कल्पाश्रयानिह ।
   पंचविंशत्सहस्त्राणि नारदीय तदुच्यते ।। - मत्स्यपुराण, 53।5

2. नारद पु0, उत्तर भाग, अ0 7- 37

महिमा प्रतिपादित की गई है । जिस प्रकार विष्णुपरक पुराणों में वैष्णव धर्म और भगवान विष्णु की महत्ता प्रतिपादित की गई है, उसी प्रकार शिवपरक पुराणों में शैवधर्म और भगवान् शिव को ही मुख्यतः महत्व प्रदान किया गया है। स्कन्दपुराण [1] के अनुसार दस शैव - पुराण माने गये हैं । शिव, भविष्य, मार्कण्डेय लिंग, वाराह, स्कन्द, मत्स्य, कूर्म, वामन तथा ब्रह्माण्ड । इन पुराणों में हमें वेदोत्तरकालीन शैव धर्म का पूर्ण विकसित रूप दिखाई देता है। रामायण- महाभारत के समान ही पुराणों में भी शैव -धर्म के दो स्पष्ट रूप हैं - दार्शनिक और लोकप्रचलित । उपनिषदों के समक्ष से भारतीय धार्मिक विश्वासों और आचार- विचार में जो एक नूतन धारा चल पड़ी थी तथा जिसके प्रमुख अंग ध्यान और भक्ति थे, उसका पूर्ण विकास वस्तुतः पुराणकाल में हुआ । प्रायः सभी पुराणों में विष्णु और शिव की एकता पर बल किया गया है । चाहे वह शैव परक हो अथवा वैष्णव परक ।

शिव-महापुराण शैव- दर्शन एवं सिद्धान्तों का आकार है । शैवधर्म एवं दर्शन की अधिकांश सैद्धान्तिक बातें इसमें यत्र-तत्र संक्षेप अथवा विस्तार से वर्णित है। इसमें शैवधर्म के चार पाद बतलाये गये हैं ।

---

1. 2/30/38

ज्ञान, क्रिया, चर्या, और योग ।[1] पशु, पाश एवं पति का ज्ञान ही " ज्ञान" कहा गया है । गुरु के उपदेशानुसार षडध्व - शुद्धि की विधि से की गई § क्रिया" ही "क्रिया है ।[2] पशुपति शिव § परमात्म-शिव § , के द्वारा विहित, गणत्रिमयुक्त पशु-पति के अर्चनादि अनुष्ठान का पालन ही चर्या" कहीं गई है ।[3] भगवान शिव के द्वारा कथित मार्ग से अन्तःकरण की वृत्तियों को §निरवृत्तियों को § विषयान्तर से निरुद्ध कर, एकमात्र पशुपति शिव में ही, निश्छल रूप से लगाने की जो क्रिया है उसी का नाम "योग" है ।

शिवपुराण सात संहिताओं में विभाजित है, जिनमें प्रायः शिव के उपाख्यानों का संग्रह है। शैव- शैव कथाओं में स्कन्द जन्म की कथा, त्रिपुरदाह, दक्ष यज्ञ की कथा, मदन दहन की कथा और अन्धक वध की कथा इत्यादि प्रमुख है ।

अवतार तत्व पुराण के विषयों में अन्यतम है। अवतार का

---

1. ज्ञानं क्रिया च चर्या च योगश्चेति सुरेश्वरि ।
   चतुष्पादः समाख्यातो मम धर्मः सनातनः।। - शिव0 7, 2, 10., 30
2. डा0 रमाशंकर त्रिपाठी, शिव पुराण की दार्शनिक तथा धार्मिक समालोचना, पृ0 95 प्रकाशकः हरिशंकर त्रिपाठी बी 1/122-39ए डुमरांव कालोनी, अस्सी, वाराणसी- विक्रमान्द 2.33 मुद्रणालय 1976
3. शिव0 7/2/6/31-32

प्रमुख प्रयोजन धर्म- नियमन ही माना गया है। धर्म-नियमन एवं संस्थापन तथा भक्त रक्षण भगवान शिव के अवतारों का प्रधान कारण। है । सम्पूर्ण शिवपुराण का आकलन करने पर यही निष्कर्ष निकलता है कि भगवान शिव का प्रादुर्भाव अधिकतर भक्त की रक्षा एवं कल्याण के लिए ही हुआ करता है । इनमें प्रसिद्ध अवतार हैं - अर्द्धनारीश्वरावतार, नन्दीश्वरावतार, वीरभद्रावतार, भैरवावतार §इनकी कथा के साथ भगवान शिव के उत्कर्ष की एक आख्यायिका संलग्न है §, गृहपत्यावतार, एकादश रूद्रावतार, अश्वत्थामावतार, पिप्पलादावतार तथा दुर्वासा अवतार आदि ।

शिवपुराण में यह कथा निम्न प्रकार से वर्णित है - अनुसइया के प्रति ब्रह्मवेत्ता तपस्वी अत्रि ने ब्रह्मा जी के निर्देशानुसार पत्नी सहित ऋक्षकुल पर्वत पर जाकर पुत्रेच्छा से घोर तप किया । तप से प्रसन्न होकर ब्रह्मा, विष्णु और महेश तीनों मुनि के समीप गये और बोले - " हम तीनों संसार के ईश्वर हैं हमारे अंश से तुम्हारे तीन पुत्र होंगे जो त्रिलोक, विश्रुत, तथा मात-पिता का यश-वर्धन करने वाले होंगे ।" यथा समय ब्रह्मा के अंश से चन्द्रमा, विष्णु के अंश से श्रेष्ठ सन्यास पद्धति को प्रचलित करने वाले दत्तात्रेय तथा रूद्रांश से दुर्वासा उत्पन्न हुए । [1] इन्ही दुर्वासा ऋषि ने महाराज अम्बरीष की परीक्षा की थी ।

1. वही 3/21/27

दुर्वासा को देखकर अंबरीश। ने उन्हें भी निमंत्रित किया निमंत्रण स्वीकार दुर्वासा स्नान करने चले गये और राजा के धर्म-परीक्षण के लिए उन्होंने वहाँ पर्याप्त बड़ी विलम्ब किया। इधर धर्मभीरु राजा द्वादशी को समाप्त होता देखकर व्रत-भंग न हो इसलिए जलपान कर मुनि की प्रतीक्षा करने लगे इसी बीच दुर्वासा लौट आये और राजा को अशन किया जानकर बहुत क्रुद्ध हुए उन्हें अनेक दुर्वचन कहे और अम्बरीश को जलाने के लिए तैयार हो गये। राजा पर आई विपत्ति के निवारण के लिए वहाँ पर स्थित सुदर्शन-चक्र मुनि को जलाने के लिए प्रज्ज्वलित हो उठा। उसी समय आकाशवाणी हुई- "राजन", दुर्वासा ऋषि को जलाने के लिए उद्यत चक्र को शान्त करो इस चक्र को पहले शिव ने ही विष्णु को दिया था दुर्वासा साक्षात् शिव हैं। तुम उनकी शरण में जाओ अन्यथा लय हो जायेगा।[1]

राजा ने स्तवन करके चक्र को शान्त किया और मुनि को भी प्रमाणादि से सन्तुष्ट किया प्रसन्न हुए दुर्वासा आशीर्वाद दे भोजन कर अभीष्ट प्रदेश को चले गये।

इनका उद्देश्य धर्म, नीति, सदाचार इत्यादि का प्रतिपादन करना है यद्यपि इसका परिगणन शैव-पुराणों के अन्तर्गत किया जाता है तथापि इसमें विष्णु, शिव, ब्रह्मा, अग्नि, सूर्य और सर-

---

1. शिव 3/19/44

श्वती आदि समस्त देवी – देवताओं का सामान्यभाव से स्तवन किया गया है । इस दृष्टि से उसकी उपयागिता द्विगुणित हो गई है । क्योंकि इसमें हिन्दू धर्म की समन्वयवादी विचारधारा के प्रत्यक्ष – दर्शन होते हैं इसकी दूसरी प्रमुख विशेषता " कर्म" को प्रधानता देना है इसमें कहा गया है कि आत्मशुद्धि के लिए पलायनवादी दृष्टिकोण श्रेयस्कर नहीं हैं । अपितु सद्कर्मों के द्वारा ही व्यक्ति वास्तविक आनन्द की प्राप्ति में सक्षम हो सकता है। इसीलिए इस पुराण में नारी को भर महत्व दिया है। इस दृष्टि से मदालसा का उपाख्यान नारी भावनाओं का प्रतिनिधित्व है । "पुराण लेखक ने मदालसा को उस युग की पुरन्ध्रि नारियों का प्रतीक मानकर उसके द्वारा गृहस्थ-धर्म, आचार-धर्म और राजतंत्र की भी व्याख्या करायी गई है।

उपाख्यान में कुण्डला के ये उद्गार ध्यान देने योग्य है-

"पति को सदा भार्या की भृति और रक्षा करनी चाहिए । धर्म, अर्थ, काम की सिद्धि में पत्नी पति की सहयोगिनी है । जब पति-पत्नी परस्पर वशीभूत होते हैं तभी धर्म, अर्थ, काम तीनों का मेल होता है । पत्नी के बिना पति धर्म, अर्थ, या काम कैसे पा सकता है क्योंकि इसी में तीनों की नीति हैं ।

भारतीय नारियों की अध्यात्मिक ज्ञान- प्रियता तथा वैराग्य - भावना की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण हैं । मदालसा ऋतध्वज की पत्नी

थी जिसकी प्राप्ति उन्हें पातालकेतु नामक दैत्य का संहार करते समय हुई थी । पातालकेतु के एक भाई ने ऋतध्वज के साथ छल करके मदालसा को यह असत्य समाचार सुनाया कि ऋतध्वज तपस्वियों की रक्षा करते हुए दैत्य द्वारा मारे गये । यह शोक- समाचार सुनते ही मदालसा ने प्राण-त्याग दिए ऋतध्वज जब वापस लौटे तो उन्हें यह समाचार जानकर अत्यन्त दुख हुआ और उन्होंने प्रतिज्ञा कि कभी भी अन्य स्त्री को सहचारिणी नहीं बनायेंगे और मदालसा को स्मरण करते हुए परोपकारमय कार्यों के लिए अवशिष्ट जीवन व्यतीत करेंगे । कुछ समयोपरान्त ऋतध्वज की दो - नाग - कुमारों से मैत्री हो गई जो ब्राह्मण वेश में उसके समीप आते थे उन दोनों ऋतध्वज की मनोव्यथा अपने पिता अश्वतर नाग से बतायी और कहा कि ऐसा कौन सा उपाय किया जाय जिससे उसका कुछ उपकार हो सके ।

मृतक को पुनर्जीवन भगवान के अतिरिक्त और कौन दे सकता है इस पर उनके पिता ने कर्म की महिमा बताते हुए कहा कि संसार में कोई कार्य असम्भव नहीं है यदि उसे संयमपूर्वक किया जाय कर्म ही प्रधान है जैसे प्रयत्न करने पर चींटी अनेक योजन चली जाती है और अकर्मण्य रहकर दीर्घगामी गरुड़ भी जहाँ का तहाँ पड़ा रहता है ।

इस प्रकार मदालसा ने अपने प्रथम तीनो पुत्रों को अध्यात्म मार्ग का उपदेश देकर संसारमार्ग से विरक्त कर दिया। तब ऋतध्वज ने कहा कि अ एक पुत्र को गृहस्थधर्म और राजधर्म की भी शिक्षा देनी चाहिए जिससे वह राजभार ग्रहण कर सके । इस पर मदालसा ने अपने चौथे पुत्र अलर्क को शैशव से ब्रह्मज्ञान के साथ सांसारिक ज्ञान का भी उपदेश दिया । अतः शासक होने पर उसने ज्ञानयोग के साथ कर्म योग का अपूर्व सामन्जस्य कर दिखाया । मदालसा के उपदेशानुसार धर्मराज्य करते हुए वह अन्तिम अवस्था में सांसारिक माया- मोह में कुछ अधिक आसक्त हो गया ।

यह देखकर उसके बड़े भाई ऋषि सुबाहु ने एक युक्ति से काशी नरेश को अलर्क पर आक्रमण करने की प्रेरणा दी । इस आक्रमण का सामना न कर सकने के कारण उसकी मोहइन्द्रिया भंग हुई और वह महात्मा दत्तात्रेय के पास गया दत्तात्रेय उसका वास्तविक दुख जानकर उसे योग-साधन का पूर्ण विधि- विधान और उसके मध्य आने वाली अवरोधों और प्रलोभनों से चेतावनी देते हुए आचार-व्यवहार का उपदेश देकर ओंकार की महिमा बताई ।दत्तात्रेय के उपदेश से अलर्क कृतार्थ हो गया । वास्तविक ज्ञान की प्राप्ति हो जाने से उसे राज्य से विरक्ति होगई ।

अतः उसी समय पुत्र को राज्यभार सौंप कर वह वनवास

के लिए चला गया । मदालसा के इस उपाख्यान द्वारा मानव-धर्म तथा आध्यात्म ज्ञान का वर्णन करते हुए मनुष्य के लौकिक और पारलौकिक जीवन को सफल बनाने का मार्ग निर्देश किया गया है। इसी भांति पतिव्रत धर्म की महिमा बताने के लिए एक ऐसी पतिव्रता का उपाख्यान है[1] जिसने सूर्य का उदय होना रोक दिया था उस ब्राह्मणी का कोढ़ी पति पत्नी के कन्धे पर सवार होकर वेश्यागमन के लिए जा रहा था। कि मार्ग में माण्डव्य ऋषि ने उसे शाप दे दिया कि सूर्योदय होते ही वह मर जायेगा । इस पर पतिव्रता ने कहा कि अब सूर्य उदय ही नहीं होगा । ऐसा होने पर यज्ञ, संध्या, पूजन आदि समस्त विधि - विधान भी बन्द हो गये । तब देवताओं की प्रार्थना पर अत्रि ऋषि की पतिव्रता पत्नी ने उस ब्राह्मणी से अनुरोध करके सूर्योदय कराया और उसके पति की मृत्यु हो जाने पर अपने पतिव्रत बल से उसे पुनर्जीवित किया ।

उपाख्यान का मूल उद्देश्य पतिव्रत धर्म की महिमा और शक्ति का दर्शन कराके लोगों को सन्मार्गी बनने की प्रेरणा देना ही है ।

---

1. मार्कण्डेय पु0, अ0 16

इसमें मुनि ने अपने पुत्रों को मानव शरीर की वास्तविकता का ज्ञानपूर्ण उपदेश दिया है । तृतीय अध्याय में एक सत्य-निष्ठ सुकृष मुनि का उपाख्यान है । पुराणों में वैदिक तत्वों को उपाख्यानों का रूप देकर समझाने की जो शैली अपनाई गई है उसी का परिणाम पाँच इन्द्रियों द्वारा पाण्डवों की उत्पत्ति का कथानक है । द्रौपदी के पाँच पतियों के इस आख्यान से एक नैतिक शिक्षा यह भी प्राप्त होती है कि सदाचार का त्याग करने से इन्द्र जैसा शक्तिमान देवराज भी उसके कुपरिणाम से नहीं बच सका । परस्त्रीगमन और वचन- भंग के दोष से इन्द्र का पतन हो गया और उसे मनुष्यलोक में आकर उसका प्रायश्चित करना पड़ा ।

इस आख्यान में मुख्यतः त्याग की महिमा बताई गई है । नरक वर्णन प्रसंग में विपश्चित नामक राजा का कथानक आया है जिसने नरक में थोड़ी देर के लिए ही आकर अपनी महानता से सभी का उद्धार किया । सुरथ नामक राजा की उपाख्यान[1] देवी महिमा बताई गई है । यह अंश दुर्गा सप्तशती के नाम से प्रसिद्ध है

इसी प्रकार राया राजवर्धन का आख्यान वैवस्वत मनु के पुत्र पृषध्र का आख्यान इत्यादि अनेक आख्यानों से यह पुराण

---

1. मार्कण्डेय अ0 73-75

ओतप्रोत है । इस पौराणिक कथाओं का मुख्य उद्देश्य लोगों को सदाचरण की सद् शिक्षाएं देनी ही है । इस दृष्टि से मार्कण्डेय पुराण का दर्जा बहुत ऊँचा माना जाता है। इसमें मतमनान्तर संप्रदायवाद और विशेष स्वार्थों की भावना से ऊपर उठकर आत्मउत्था, सच्चरित्रता, परोपकार, दया, क्षमा, मैत्री आदि सद्गुणों की ही शिक्षा दी है । इस तथ्यों को साधारण बुद्धि के होने में मनुष्य भी हृदयंगम कर सकें । इसके लिए उपाख्यानों की रोचक शैली का अवलम्बन किया है । इसके " हरिश्चन्द्र और मदालसा " के उपाख्यान धार्मिक जगत में अमर बन चुके हैं । और "देवी - सप्तशती - शाक्त - सम्प्रदाय ही नहीं हिन्दू मात्र का पारायण ग्रन्थ बन चुका है । नरक- वर्णन, योग निरूपण, सूर्य तत्व विवेचन पातिव्रत महिमा आदि का इसमें ऐसे प्रभावशाली ढंग से वर्णन किया है । प्रत्येक पाठक को उससे कुछ न कुछ सत्प्रेरणा अवश्य प्राप्त होती है ।

इन सब विशिष्टताओं के कारण सामान्य जनता तथा विद्वानों में भी मार्कण्डेय पुराण का अपेक्षाकृत अधिक मान्य है ।[1]

---

1. श्रीरामशर्मा आचार्य , मार्कण्डेय पुराण प्रथम खण्ड प्रकाशक संस्कृति संस्थान, बरेली, पृ0 60.

मत्स्यपुराण में यही कहा गया है कि धर्म का अर्थ है शिष्टाचार, जो श्रुति और स्मृति के ऊपर आधारित है। मत्स्य पुराण में जहाँ एक ओर पंचलक्षणों का निर्वाह किया गया है वहाँ दूसरी ओर राजधर्म, शासन व्यवस्था, गृह-निर्माण, मूर्ति-कला, शान्ति विधान, शकुनशास्त्र आदि जीवनोपयोगी विषयों का भी विशद विवेचन किया गया है। इसमें चरित्र- शिष्टाचार के नाम से शिष्टाचार की सम्पूर्ण सूची दी गई है। जिसमें सत्य, तप, क्षमा, दया आदि। आठ गुणों को भी ग्रहण किया गया है।

बौद्धों के अष्टांगिक मार्ग की भांति इसे भी आठ प्रकार के चरित्र कहा गया है ; अतः इसमें धर्म और शिष्टाचार पर विशेष बल दिया गया है। मत्स्य महापुराण में अति प्रसिद्ध " § सावित्री-उपाख्यान" अत्यन्त विस्तारपूर्वक उल्लिखित है जो आधुनिक भारतीय नारियों की पतिव्रत महत्ता निरूपण करके करने के लिए आदर्श स्वरूप प्रस्तुत किया गया है। सावित्री - सत्यवान उपाख्यान का संदेश मनुष्य मात्र के लिए यही है कि चाहे स्त्री हो या पुरुष, धर्म मार्ग से कभी नहीं विचलित होना चाहिए। जो धर्म की रक्षा करता है उसकी रक्षा की धर्म द्वारा अवश्य होती है।[1] इस प्रकार के अनेक अन्य शिक्षाप्रद एवं उपयोगी उपाख्यान और कथाएं भी इसमें उपलब्ध होती है जैसे -

---

1. मत्स्यपुराण प्रथमखण्ड, श्रीरामशर्मा आचार्य, बरेली, पृ0 28

कामुक कोटि की कथा, ब्रह्मदत्त की कथा, पुरूरवा-उर्वशी की कथा, नहुष और रवि की कथा, ययाति की कथा, शर्मिष्ठा देवयानी की कथा, अर्जुन की कथा, विश्वामित्र और कौशिक की कथा, प्रसेन की कथा, बलि और उशिष की कथा, देवापि एवं शान्तनु की कथा, कर्ण की कथा, दीर्घतमा की कथा, पाण्डे और धृतराष्ट्र की कथा, कौरव और पाण्डवों की कथा, जन्मेजय की कथा, धर्ममूर्ति राजा की कथा, लीलावती वेश्या की कथा, राजा पुष्पवाहन की कथा, ब्राह्मण पुरूरवा की कथा, त्रिपुर की कथा पद्मोदम्भव की कथा, और्व की कथा, हरिकेशयक्ष की कथा आदि अनेक कथायें मनोरंजक होने के साथ - साथ किसी न किसी सदुपयोग का भी प्रेषण करती हैं। वामन पुराण के प्रारम्भ में ही पुलस्त्य और नारायण के संवाद में भगवान के वामनावतार धारण करने के प्रसंग का विस्तृत उपाख्यान उपलब्ध होता है । विष्णु परक होते ही इसमें शिव- महात्म्य, उमा-शिव विवाह, गणेश की उत्पत्ति और कार्तिकेय का चरित्र आदि विषयों का बहुलतासे वर्णन है ।

भगवान शंकर के तीर्थ भ्रमण से सम्बन्धित कथाएं तथा दुर्गा और पारवती के उपाख्यान भी उपलब्ध होते हैं । अतः इसमें सांप्रदायिक संकीर्णता का अभाव है । बल्कि यज्ञ में वामन देव के आगमन

और तीन पग भूमि का दान माँग कर उसे पाताल लोक से आबद्ध कर देने की कथा दो बार वर्णित है ।[1] शुम्भ-निशुम्भ का उपाख्यान और महिषासुर बध आदि उपाख्यान भी इसमें संगृहीत हैं । पुराणकार ने देवासुर संग्राम को बड़े - बड़े उपाख्यानों का स्वरूप देकर लोक कथाओं के रूप में उपनिबद्ध किया है । जिनसे अधर्म पर धर्म की विजय का संदेश प्राप्त होता है । शुम्भ - निशुम्भ, महिषासुर, चन्द्रमुण्ड, तारक, मुर, अन्धक आदि अनेक असुर वीरों के आख्यान द्वारा यही प्रदर्शित करने की चेष्टा की गई है जब कोई भी राजा या शासक अहंकार से पूर्ण हो जाता है अथवा राजनीति का अवलम्बन लेता है तो उसका पतन अवश्य हो जाता है । " वामनावतार" की कथा द्वारा भी असुर-भाव पर देव भाव की प्रभुता को अभिव्यक्त किया गया है पुरूरवा उपाख्यान द्वारा दान की महिमा और भगवान विष्णु की महत्ता का प्रतिपादन किया गया है । पुरूरवा ने भगवान विष्णु की आराधना करके निरूपता का परित्याग कर श्रीयुक्त रूप - लावण्य की प्राप्ति किस प्रकार से की थी यही इस उपाख्यान में वर्णित है ।

शिव महात्म्य को सूचित करने वाली सुदर्शन चक्र प्रदान करने की कथा है, जिसमें यह बताया गया है कि शिव की

समाराधना करने से प्रत्येक इच्छित वस्तु प्राप्त की जा सकती है ।

मत्स्य पुराण के अनुसार कूर्म पुराण में भगवान विष्णु ने कूर्म अवतार धारण कर इन्द्रद्युम्न नामक विष्णुभक्त राजा को इस पुराण का उपदेश दिया था इसलिए यह कूर्म पुराण कहलाता है । यद्यपि नाम से यह विष्णुपुराण प्रचलित होता है किन्तु इसमें शिव की सर्वत्र मुख्य देवता के रूप में वर्णित है । स्वयं कूर्मरूप विष्णु ने अपने मुख से शिव को ही मुख्य देव कहा है और पुनः विष्णु और शिव इन दोनों का अभेदत्व प्रतिपादित किया गया है ।

अतः विष्णु का परिगणन शैव पुराणों के अन्तर्गत किया जाता है । इसमें शक्ति पूजा पर भी बल दिया गया है और उनके सहस्त्रनाम वर्णित हैं ।[1] कूर्म पुराण में वर्णित प्रहलाद के चरित्र में अन्य पुराणों की अपेक्षा कुछ विलक्षणता है । प्रहलाद के पश्चात् हिरण्याक्ष का पुत्र अन्धक दैत्यों का शासक बना । अन्धक की विस्तृत कथा के उपरान्त शिव पुराण में सूर्य वंश के राजाओं का संक्षिप्त वर्णन है । कलियुग का आख्यान भी विस्तार से वर्णित किया गया है । जिस ग्रन्थ में महेश्वर देव ने आग्नेय कल्प को लक्ष्य करके और अग्नि लिंग में स्थित होकर धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चारों पदार्थों की प्राप्ति का साधन बताया है वही लिंग पुराण है । जिसकी संख्या 11,000 है ।[2]

1. कूर्म पु0 1/12, §2§ मत्स्य पु0 53/36-37

इसमें भगवान शंकर की लिंग रूप से उपासना विशेषता दिखाई गई है। जैसा कि शिव पुराण में कहा गया है —
लिंगस्य चरितोक्तत्वात् पुराणं लिंगमुच्यते।"
लिंगोपासना की उत्पत्ति का वर्णन है तथा शंकर के 28 अवतारों का निरूपण किया गया है शिव परक पुराण होने के कारण शैव- व्रतों और तीर्थों का वर्णन अधिकतर हुआ है। उत्तर भाग में वर्णित पशु, पाश तथा पशुपति की व्याख्या शैव तंत्रों के अनुकूल है।

दारुवन के प्रसंग में बताया गया है कि कुछ ऋषिगण इस वन में पुत्रकलत्रादि सहित प्रवृत्ति मार्ग में निरत रहकर यज्ञादि करते थे। भगवान शंकर उनके यज्ञानुष्ठानों से प्रसन्न हुए और उन्हें निवृत्ति मार्ग का उपदेश देने के लिए नग्न वेश धारण कर उन्मत की भाँति वहाँ जाकर पहुँचे। उन्हें देखकर ऋषि पत्नियाँ कामविह्वल हो गईं यह देख कर ऋषि गण अत्यन्त क्रोधित हुए और शिव को अपशब्द कहने लगे। भगवान शंकर ने न तो उन स्त्रियों की काम चेष्टाओं को रोका और न ही ऋषियों को कुछ कहा बल्कि हसते रहे अन्ततोगत्वा ऋषियों के कटुवचनों स्मरण करते- करते भगवान शंकर अन्तरहित हो गये। यह देख कर देव- दारु - वन के समस्त ऋषि वृन्द ब्राह्मण के समीप गये और सम्पूर्ण

वृतान्त कह सुनाया । ब्रह्मा ने भी ध्यानासक्त होकर यथार्थ तथ्य ज्ञात कर लिया । और ऋषियों को उपालम्भ दिया कि तुमने दुर्भाग्यवशात साक्षात परमेश्वर को नही पहचाना । यदि पहचान नही पाये थे तो भी अतिथि समझकर उनका सत्कार तो करना ही चाहिए था, क्योंकि गृहस्त का यह धर्म नही है कि वह अतिथियों का सत्कार करने के बजाय उसकी निन्दा और अपमान करें । इसी प्रसंग में ब्रह्मा ने उनको एक सुदर्शनमुनि का उपाख्यान सुनाया । अतिथि के प्रति सुदर्शन की अति श्रद्धा देख कर उनकी परीक्षा लेने "धर्म एक बार उनके घर उस समय पहुँच जब वह घर में नही थे । धर्म ने अवसर देखकर सुदर्शन की पत्नी से अतिथि के रूप में शरीर याचना की । अतिथि सर्वदेवमय है । पति के ऐसे उपदेश- वाक्य का स्मरण कर उनकी पत्नी ने धर्म की कामना पूर्ण की उसी समय सुदर्शन घर पहुँचे और यह देखकर अत्यंत क्रोधित हुए पत्नी द्वारा यह बताये जाने पर भी कि " वस्तुतः अतिथि सेवा ध॰ का पालन" करने के लिए ही उसे यह करना पड़ा। उसका क्रोध शान्त हो गया अतिथि के प्रति उस दम्पत्ति की कोई दुर्भावना न देखकर धर्म ने अपना वास्तविक स्वरूप प्रकट कर दि॰ा और वरदान दिया कि तुम अवश्य मृत्यु को जीत सकोगे ब्रह्मा की इस कथा का श्रवण कर ऋषियों ने कहा कि हम न तो

अतिथि धर्म का पालन कर सके, विपरीततः हमारी पत्नियां दूषित हुई और हमारी, शाप- शक्ति भी कुण्ठित हो गई। अब आप हमें संन्यास का उपदेश दें। तब ब्रह्मा ने उन्हें संन्यास धर्म का उपदेश दिया और शंकर की भक्ति का मार्ग बताया।

शंकर की आराधना और कठिन तपस्या द्वारा वे ऋषिगण भगवान शंकर को प्रसन्न करने में सफल हुए कुछ लोग इस निवृत्ति परक कथा पर अश्लीलता को दोषारोपण करते हैं। किन्तु गिरधर शर्मा चतुर्वेदी [1] इसे समझ की कमी का भी परिणाम मानते हैं क्योंकि भगवान शिव का प्रमुख उपदेश प्रवृत्ति मार्ग में आसक्त मुनियों को निवृत्ति मार्ग का उपदेश देना ही था। कथा का उपसंहार संन्यास के महिमा- गान से होता है। अतः निवृत्ति मार्ग के ज्ञान की प्रधानता ही इस कथा में चित्रित है।

सर्वप्रथम शिलादि ने तपस्या द्वारा इन्द्र को प्रसन्न किया और मृत्यु रहित - पुत्र की कामना की। इन्द्र द्वारा निषेध करने पर शिलाद ने भगवान शंकर की आराधना प्रारम्भ की। भगवान शंकर की आराधना से श्वेतमुनि के मृत्युन्जय होने की कथा का विस्तृत वर्णन मिलता है फिर शंकर के परमभक्त दधीच की कथा है तदनन्तर शिलाद पुत्र की कथा का उल्लेख है। उसने नन्दीश्वर पद को प्राप्त किया था। यहाँ इन्द्र शिलाद संवाद

---

1. पुराणपरिशीलन, प्रकाशक : बिहार राष्ट्रभाषा परिषद पटनापृ0

में शंकर का महात्म्य विशेष रूप से वर्णित है शंकर की महिमा के सम्बन्ध में कहा गया है कि इनकी कृपा से ही विष्णु आदि सृष्टि करते हैं शंकर की योगमाया से ही ब्रह्मा और विष्णु का प्रादुर्भाव हुआ है । शंकर की आराधना से विवाद को मृत्युंजय की प्राप्ति हुई है । शिव भक्तों की कथाओं के उपरान्त उसके विराट रूप का भी वर्णन है ।

इस कथा द्वारा यही निरूपित किया गया है कि ब्रह्मा, विष्णु और महेश एक ही परमपुरुष परमात्मा के त्रिगुणात्म रूप है । त्रिगुण का सम्बन्ध होने के कारण कार्यब्रह्म या ईश्वर नाम से अभिहित होने पर इनमें भी समय समय पर विकार होता है एक रूप के विकार को दूसरा रूप शान्त कर देता है । और जगत की शान्ति स्थिर रहती है ।

पुराणों में भगवान विष्णु के 10 अवतारों तथा अनेक उपाख्यानों का विवरण उपलब्ध होता है । यह भगवान विष्णु की महिमा का परिचायक है । [1] इसकी श्लोक संख्या 24000 कहीं गई है । [2] लिंगपुराण की भाँति यह भी एक धार्मिक पुराण है ।

---

1. शृणु पुत्र । प्रवक्ष्यामि वराहं वै पुराणकम ।
   भगदयपुक्तं शब्दं, विष्णुमाहात्म्यसूचकम् ।। §नारद 4/12§
2. नारद, पु0 4/12 तथा मत्स्य पुराण अ0 53

विष्णु से सम्बद्ध अनेक व्रतों का वर्णन होने के साथ-साथ उन तिथियों से संबन्धित कथाओं की चर्चा भी की गई है । महिषासुर वध की कथा तथा भगवान रूद्र द्वारा रूरू नामक दैत्य के वध की कथा भी उपनिबद्ध है ।

विभिन्न उपाख्यानों से संकलित यह पुराण भी अनेक धार्मिक उपदेशों का प्रतिपादन करता है । पुराणों में सर्वाधिक वृत्यकाय " स्कन्दपुरान" है । इसकी श्लोक संख्या 81 हजार एक सौ है। जो लक्ष-श्लोक महाभारत से केवल एक पंचमांश ही कम हैं। यद्यपि इसका परिगणन शैव – पुराणों के अन्तर्गत किया जाता है। तथापित इसमें अन्य सम्प्रदायों का भी समावेश परिलक्षित होता है । इस पुराण में छः संहितायें है – §1§ सनत्कुमार संहिता §श्लोक संख्या 36,000§, §2§ सूतसंहिता §श्लोक सं0 6,000§, §3§ शंकर संहिता §श्लोक सं0 30,000§, §4§ वैष्णव संहिता §श्लोक संख्या- 5,000§, §5§ ब्रह्म संहिता §श्लोक संख्या 3,000§, §6§ सौर संहिता §1,000§ श्लोक, इसके अतिरिक्त षष्ठानुसार इसके साल विभाग हैं :-

§1§ माहेश्वर खण्ड, §2§ वैष्णव खण्ड, §3§ ब्रह्म खण्ड , §4§ काशी खण्ड, §5§ रेवा खण्ड , §6§ तापी खण्ड और §7§ प्रभास खण्ड ।

इसका " माहेश्वर खण्ड" वृहत कथायुक्त तथा स्कन्द माहात्म्य - सूचक है । इसमें दक्ष - यज्ञकथा, शिवलिंगार्चन, का फल, समुद्र - मन्थन का आख्यान, पार्वती का उपाख्यान पशु पति का आख्यान, चण्डिका- आख्यान, नारद-संगम, कुमार- महात्म्य एवं पंचतीर्थ की कथा से लेकर महिषासुर के आख्यान और बध तथा शोणाचल में शिवावस्थान तक की कथा वर्णित है । "वैष्णव - खण्ड" में उड़ीसा के जगन्नाथ मंदिर पूजाविधान, प्रतिष्ठा तथा सम्बद्ध अनेक उपाख्यानों का रोचक वर्णन है । भूमिवराह समाख्यान भी रोचक है । रेवा-खण्ड" में सत्यनारायण व्रत की रोचक कथा उपनिबद्ध है । इसके अतिरिक्त आदिकल्प, अवतार- वर्णन, नर्मदा-महात्म्य, अव - तीर्थ, त्रिपुरकर्टीतीर्थ से लेकर एरण्डीतीर्थ, चक्रतीर्थ तथा रेवाचरित्र तक की कथा वर्णित है। " काशी खण्ड" में काशी - महमा का वर्ण न है । " अवन्तिखण्ड मे " अवन्ति (उज्जैन) में स्थित विभिन्न शिवलिंगों की उत्पत्ति तथा माहात्म्य का वर्णन है ।

मत्स्य पुराण [1] के अनुसार जिस ग्रन्थ में चतुर्मुख ब्रहमा ने मनु के प्रति अघोर कल्प के वृत्तान्त प्रसंग से सूर्य भगवान का माहात्म्य वर्णन करते हुए जगत की स्थिति और भूतग्राम

x1. यत्राधिकृत ——— तदिहोच्यते ।। मत्स्य 53/30-32

का निर्देश दिया हो तथा जिसमें अधिकता से भविष्यत् चरितों का समावेश हो वही भविष्य पुराण है । इसलिए पद्यसंख्या 14.500 है । नारदपुराण में इसकी श्लोक संख्या 14000 बतलाई गई है। इसके पाँच पर्वों का उल्लेख किया गया है ।

{1} ब्रह्म पर्व, {2} विष्णु पर्व , {3} शिव पर्व, {4} सूर्य पर्व तथा {5} प्रतिसर्ग पर्व । इसमें अनेक पौराणिक कथायें उपलब्ध होती है जो मुख्यतः सूर्य पूजा से सम्बद्ध है । इस पुराण का मुख्य उद्देश्य सूर्य पूजा के विधान का वर्णन ही प्रतीत होता है । वैदिक काल से ही पापों के विनाश तथा संपत्ति , अन्न यश, स्वास्थ्य और अन्य लाभों के लिए सूर्य की स्तुति होती रही है । इसकी पूजा के लिए जो सम्प्रदाय अस्तित्व में आया उसे सौर "सम्प्रदाय" की संज्ञा से अभिहित किया जाता है ।

पुराण में एक कथा है जिसमें कहा गया है कि कृष्ण के पुत्र शाम्ब को कुष्टरोग से मुक्त कराने के लिए गरुड़ शाकद्वीपी मग ब्राहमणों को लाये थे । जिन्होंने सूर्योपासना द्वारा शाम्ब को रोगमुक्त कर दिया था। इन कृष्ण पुत्र शाम्ब ने जो जाम्बवती के पुत्र थे , चन्द्रभागा {चिनाब} नदी के तट पर एक मंदिर बनवाया था जिसका पुजारी पद ग्रहण करने को कोई स्थानीय ब्राहमण तैयार नही हुआ तब उन्होंने उज्जैन के पुजारी गौरमुख

1. अध्याय 139

से पूछा गौरमुख । ने उनसे शाकद्वीप से सूर्यपूजक भगों को बुलाने की बात कही तदन्तर भगों का इतिहास दिया गया है इसमें कहा गया है कि सुजिहवों मिहिरगोत्र का एक ब्राह्मण था उसकी निक्षुभा नामक एक पुत्री थी, जिससे सूर्य को प्रेम हो गया था।

तदन्तर साम्ब गरूड़ पर आरूढ़ होकर शाकद्वीप गये और वहाँ के कुछ भगों को लाये तथा उनको सूर्य मंदिर का पुजारी बना दिया। भण्डाकर के अनुसार सूर्यपूजा कनिष्क के काल में भारत में आयी होती और इसका कुछ अधिष्ठान मुल्तान का मंदिर भी लगभग उसी समय बना होगा। इन्ही भागों का विस्तृत वर्णन इस पुराण में उपलब्ध होता है इसके अतिरिक्त इसमें इनेक महात्म्य और दान-विधान का वर्णन किया गया है।

विश्वकोषकार ने लिखा है कि इस पुराण की रामायणी कथा ही आध्यात्मक रामायण के नाम से अलग कर दली गई है। ब्रह्माण्ड पुराण का महत्व रामायणी कथा के कारण है[1]। वंशा-नुचरित के अन्तर्गत इसमें परशुराम का चरित्र, सहस्त्रार्जुन का चरित

---

1. वैष्णव, शैव और अन्य धार्मिक मत, अनु0 महेश्वरी प्रसाद भारतीय विद्याप्रकाशन, वाराणसी, प्रथम संस्करण 1967, पृ0 177

समरचरित्र तथा अनेक राजवंशों का वर्णन है । ब्रह्मपुराण की गणना पुराण सूची में सर्वप्रथम की गई है । इसलिए इसे आदि ब्रह्म के नाम से भी अभिहित किया गया है ।

ब्रह्म का विशेष उल्लेख चौथे और तेइसवें अध्याय में हुआ है किन्तु सम्पूर्ण संसार की उत्पत्ति सूर्य के द्वारा बताई गई है । भगवती पार्वती का मनोहर आख्यान [1] के अनुसार शिव पार्वती विवाह तथा भगवान शंकर के दक्ष यज्ञ विध्वंश आदि के कथानक भी पूर्वस्मृति के रूप में संगृहीत हैं । ब्रह्म का मृगरूप धारण करके और मृगव्याघ बनकर शिव का अनुधावन करने वाली आदि वैदिक आशय गर्भित कथा भी उल्लिखित है । इसके साथ में विभिन्न तीर्थों से सम्बद्ध कथानक भी उपलब्ध होते हैं ।

मार्कण्डेय आख्यान के अनन्तर दीर्घ महात्म्य निरूपण है । कृष्ण की कथा [2] तथा बलि और राम की कथाएँ भी उपनिबद्ध हैं । सूर्य महिमा [3] भी विशद रूप से वर्णित है । गंगा की

---

1. अन्तिम अध्याय , श्लोक 20
2. अध्याय 30 -50 तक
3. अध्याय 52

उत्पत्ति कथा भी उपलब्ध होती है इसी भाँति धार्मिक दृष्टि-कोण से विभिन्न आख्यानों का समावेश भी इसमें हुआ है ।

पद्मपुराण विष्णुभक्ति का प्रतिपादक सबसे बड़ा पुराण है । आवान्तरकालीन वैष्णव-सम्प्रदाय के ग्रन्थों में इसका महत्व बहुत अधिक माना है । " सृष्टि के आरम्भ में यह जगत हिरण्मय पद्म रूप में प्रकट हुआ था, इस वृत्तान्त का प्रतिपाद होने के कारण उक्त पुराण की " पद्मपुराण संज्ञा है और इसकी संख्या 55000 है ।[1] इसके मूलभूत पाँच खण्ड हैं - सृष्टिखण्ड, भूमित-खण्ड, स्वर्गस खण्ड, पाताल खण्ड और उत्तर खण्ड[2] इसका भूमितखण्ड तथा उत्तरखण्ड अनेक पौराणिक कथाओं से परिपूर्ण हुई है ।

इसमें समुद्रमन्थन पृथु की उत्पत्ति देवासुर-संग्राम, वामनावतार, मार्कण्डेय की उत्पत्ति, कार्तिकेय की उत्पत्ति, तारक सुरवध आदि कथाएं विस्तार पूर्वक वर्णित है । प्रथम सृष्टि खण्ड में 82 अध्याय हैं । दानवों में हिरण्यकशिपु और वाण के उपाख्यान

---

1. एतदेवयदा —— कथ्यते । §मत्स्य 13-14 §
2. प्रथम सृष्टिखण्डं ———— सर्वपापप्रणाशनम् ।।

प्रमुख । हैं । सूर्यवंश एवं चन्द्र वंश के वर्णन प्रसंग में भी अनेक आख्यानों एवं उपाख्यानों का समावेश किया गया है । सोमवंश के वर्णन में "इला" से "बुध" तक की उत्पत्ति कथा का वर्णन है। गायत्री और सावित्री का आख्यान भी इसमें मिलता है । राजा पृथु जन का उपाख्यान , धर्ममूर्ति राजा का वर्णन , श्वेतनामक राजा का चरित्र भी इसमें उपलब्ध है ।

शिवशर्मा के पुत्र विष्णुशर्मा, सुव्रत, वृत्रासुर, पृथु, सुनीथा वेण, उग्रसेन, सुकला, सुकर्मा, नहुष, ययाति, दिव्यदेवी, अशोक सुन्दरी आदि के आख्यान प्रमुख हैं । शिवशर्मा नामक ब्राह्मण ने पितृभक्ति द्वारा स्वर्गलोक प्राप्त किया यह प्रथम उपाख्यान में बताया गया । सती सुकला की कथा पतिव्रता-माहात्म्य की सूचक है । महर्षि च्यवन का आख्यान भी विस्तारपूर्वक दिया गया है । राजा वेन की भुजाओं के मन्थन द्वारा पृथु की उत्पत्ति की कथा भी दी गई है । इसके अतिरिक्त ध्रुवचरित्र, शिवि और उशीनर राजा का चरित्र, बाबा मारुति, दिवोदास, हरिश्चन्द्र तथा मान्धाता आदि विशिष्ट चरित्रों का भी उल्लेख है ।

राम के वंश चरित्र वर्णन के मध्य अनेक कठोर कथाएं हैं । पाताल खण्ड में नागलोक का वर्णन प्रमुख रूप से हुआ है । रावण का प्रसंगतः उल्लेख होने के कारण पूरे रामायण की कथा इसमें

समाविष्ठ है । इनमें अगस्ति, राका जन्म, च्यवन, शर्याति सुमाहु, विधुनतकी, देवपुराराध, वीरमणि, सुरथ, बाल्मीकि समागम आदि मुख्य हैं ।

जालन्धर उपाख्यान, गंगा की उत्पत्ति प्रसंग में सगर- वृत्तान्त वर्णन कपिल ब्राह्मण का वृत्तान्त, हरिश्चन्द्र के पूर्वजन्म का वृत्तान्त , मुदगल आख्यान, पुण्डरीक की कथा आदि का वर्णन है । कार्तिक- व्रत की प्रशंसा में धनेश्वर, विप्र की कथा विष्णुभक्त महात्म्य वर्णन के लिए धर्मगत और विष्णु गण का संवाददिया गया है ।

अग्निपुराण समस्त भारतीय विधाओं का विश्वकोष कहा जाता है। क्योंकि इसमें प्राय: सभी विषयों का समावेश । हुआ है स्वयं अग्निपुराण का भी यही अभिमत है ।-[1] इसमें अन्न समस्त विषयों के साथ अनेक धार्मिक कथाओं का विधान बताया गया है । ब्रह्मवैवर्तपुराण मुख्यत: कृष्णपरक पुराण है अत: कृष्ण भक्त वैष्णवों में इसकी बड़ी मान्यता है । इसके नामकरण का कारण स्वयं इसी पुराण में यह बताया गया है कि कृष्ण के द्वारा ब्रह्म के विवृत्त किए जाने के कारण इसका नाम ब्रह्मवैवर्त पड़ा।[2]

---

1. आग्नेय हि पुराणेऽस्मिन सर्वा: विधा: प्रदर्शिता अ0 383/52

2. विवर्ति ब्रह्म कारस्त्स्येन कृष्णेन यत्र शौनक ।
ब्रह्म वैवर्तक तेन, प्रवदन्ति पुराविद: ।। ब्र0वै0 1/1/10

इस पुराण में चार खण्ड हैं - ब्रह्म खण्ड, प्रकृतिखण्ड, गणेश-खण्ड, और कृष्णजन्म खण्ड, कृष्ण चरित्र का विस्तृत और सांगोपांग वर्णन करना इस पुराण का प्रधान लक्ष्य प्रतीत होता है ।

प्रकृति खण्ड में गंगा, लक्ष्मी, सरस्वती, आदि देवियों का उपाख्यान आया है। ब्रह्म खण्ड में कृष्ण द्वारा जगत की सृष्टि का वर्णन है । पृथ्वी का उपाख्यान, तुलसी की कथा, देववती का चरित्र वर्णन भी मिलता है। सावित्री उपाख्यान भी आया है । स्वाहा और स्वधा की कथा, दक्षिणा के आख्यान का कथन, सुरभि का उपाख्यान, ताराउपाख्यान, दुर्गा का उपाख्यान राधिका के आविर्भाव की कथा का वर्णन भी होता है । गणेश खण्ड में गणपति के जन्म, कर्म, तथा चरित्र का वर्णन है ।

पुराणों में जितने भी आख्यान, उपाख्यान एवं कथाएँ उपलब्ध होती है उन सब का कुछ मुख्य उद्देश्य या तो किसी धार्मिक सम्प्रदाय से सम्बन्धित पूजा - विधान, व्रत-नियम, देवोपासना का प्रतिपादन है । अथवा उनके द्वारा सामाजिक एवं नैतिक शिष्टाचार का उपदेश भी दिया गया है । "वंशानुचरित" वर्णन में भी विभिन्न वंशों के राजाओं तथा व्यक्तियों के चरित्र वर्णन द्वारा यह शिक्षा दी गई है कि उत्कर्ष

प्राप्त करने के लिए धर्म एवं नीति नितान्त आवश्यक है इसके अभाव में बड़े- बड़े ज्ञानी एवं राजा भी अन्धकार के गर्त में विलीन हो जाते हैं । इन कथाओं का प्रमुख उद्देश्य मनुष्य की उदात्त भावनाओं को जागृत कर श्रेयस्कर मार्ग की ओर अग्रसर करना है । इस विषय में डा० कपिलदेव उपाध्याय [1] तथा पं० भीमराव शर्मा आचार्य [2] इत्यादि अनेक विद्वानों का मत है कि पुराण का मुख्य तात्पर्य प्राचनी कथानों के माध्यम से श्रोताओं के चित्त को पापात्मक, प्रवृत्ति से हटाकर पुण्यात्मक प्रवृत्ति की ओर करना है । कथाओं की यह विशिष्टता है कि उनके द्वारा अनुरंजन के साथ साथ शिक्षण भी होता जाता है । कथाओं के माध्यम से पुराण ग्रन्थ सुहृतसम्मित उपदेश देते हैं अर्थात पाप-पुण्य के विशिष्ट फल का प्रदर्शन कर एक का प्रतिबोध और दूसरे के पालन की शिक्षा देते हैं । इनका उद्देश्य प्रभुसम्मित आदेश नहीं होता, इसीलिए अधिक ग्राह्य होता है ।

डा० बलदेव उपाध्याय के कथनानुसार धर्म तथा दर्शन

---

1. पुराण विमर्श-चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी ।
2. मार्कण्डेय पुरण प्रथम खण्ड, संस्कृत संस्थान, ख्वाजाकुतुब बरेली, 1967, पृ० 3

के सिद्धान्तों को हृदय गम्य करने के लिए तथा जलहृदय तक उन्हें पहुँचाने के लिए ऐसे साहित्य की आवश्यकता है जो गम्भररार्थ प्रतिपादक होते हुए भी रोचक हों ।, जो वेदार्थ का निरूपण होते हुए भी सरल सुबोध हो इसी आवश्यकता की पूर्ति पुराण करता है ।[1] कथाओं को मनोनुकूल बनाने के लिए मनोविज्ञान का आश्रय लेना पड़ा हैं । यदि इन कथाओं का उद्देश्य मात्र मनोरंजन अथवा नीरस धर्मोपदेश होता तो पुराणों को आज जो स्थान उपलब्ध हैं वह कथमपि ने प्राप्त हो सकता इस दृष्टि से । डा० वासुदेव शरण अग्रवाल[2] का यह कथन यथार्थ हैं कि ऐसा यह विशाल पुराण साहित्य है जिसकी प्रास्ताविक शक्ति के योजायमान प्रवाह में एक ओर दर्शन, धर्म, तत्व ज्ञान के अनेक उदात्त उदाहरण भरे पड़े हैं तथा दूसरी ओर बालसुलभ कथाओं के अक्षय भण्डार हैं ।

---

1. वही, पृ० 610
2. मार्कण्डेय पुराण संस्कृत एक अध्ययन पृ०- हिन्दुस्तान एकेडमी, इलाहाबाद 1961, पृ० 114-115

---x---

पंचम - अध्याय

जातक कथाएं :-

पंचम - अध्याय

जातक कथाएं

जातक कथाएं 380 ई0पू0 के लगभग विद्यमान थीं तथा भारत का प्राचीनतम तथा संग्रह जातकों के रूप में ही उपलब्ध होता है । " जातक" बौद्ध साहित्य की अमूल्य निधि है । जातक का अर्थ उत्पन्न होने वाला और जातक कथा का तात्पर्य है " जन्म सम्बन्धी कथाएं । अर्थात बुद्ध के पूर्व जन्म से सम्बन्धित कथा संग्रह को " जातक" नाम से प्रसिद्ध हैं । बुद्ध के उपदेशों का संग्रह सर्वप्रथम पाली भाषा में हुआ उनके शिष्यों ने उनके बचनों को तीन भागों में विभक्त किया था — " विनयपिटक, सुत्तपिटक, तथा अभिधम्मपिटक" ये तीनों "त्रिपिटक" के नाम से प्रसिद्ध हैं । सुत्तपिटक के पाँच बड़े विभाग हैं जो निकाय के नाम से प्रसिद्ध हैं । इनके नाम दीघ निकार्य, मज्झिमनिकाय, संयुक्तनिकाय, अंगुत्तरनिकाय, तथा खुद्दकनिकाय हैं, खुद्दक निकाय के अन्तर्गत 15 विभाग हैं ।

जातकों में बुद्ध के उपदेश गाथाओं के रूप में हैं और उनके स्पष्टीकरण के लिए कथाएं कही गई हैं । बौद्ध आचार्यों

ने कथाओं को धार्मिक शिक्षा प्रदान करने का अत्युत्तम माध्यम माना और मुख्यतः इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए जातक कथाओं का उदय हुआ जिसकी संख्या 550 से अधिक मानी जाती है।

जातक कथाएं मुख्यतः पशु कथाओं के रूप में उपलब्ध होती हैं। जिसमें बोधिसत्व के सबसे महत्वपूर्ण पात्र के रूप में माना गया है। इसमें बोधिसत्व के वानर, मृग आदि जन्मों की कथाएं भी हैं जिनका पंचतंत्र की कथाओं से अत्यन्त साम्य होता है।

इस दृष्टि से जातकों का महत्व बढ़ जाता है कि तत्कालीन सभ्यता में प्रचलित आदर्शों और विश्वासों पर प्रकाश डालने के साथ ही साथ कथा साहित्य के अभिन्न अंग हैं। यद्यपि इनकी अधिकांश सामग्री बौद्ध धर्म के प्रचार प्रसार से सम्बन्धित है तथापि इनका सम्बन्ध उस अतुलनीय कथा सामग्री से भरी है। जो भारतीय साहित्य की अमूल निधि है।

आचार्यों ने कथाओं के माध्यम से जो धर्मोपदेश और सदाचार की शिक्षा प्रेषित की, वह पूर्वपरम्परा का अनुसरण ही था, अतः सभी विचारक और विद्वान जातक पूर्ति का शिक्षा देने का प्रमुख साधन मानते हैं।

"बुद्ध" का तात्पर्य है ज्ञानी अथवा जिसे परम प्रकाश की उपलब्धि हो गई हो, गौतम अपने शिष्यों में इसी नाम से प्रसिद्ध थे और सम्पूर्ण संसार में भी प्रसिद्ध हो गये । संसार की अस्थिरता और व्यर्थता देखकर वे विरक्त हो गये । तथा गृह-परित्याग कर 21 वर्ष की अवस्था में संन्यास ग्रहण कर लिया । जब उन्हे ज्ञान की प्राप्ति हो गई तब वे पीड़ित मानवता को परम आनन्द का मार्ग प्रदर्शित करने के लिए प्रस्तुत हुए । उन्होने दुखी संसार के समक्ष चार आर्य सत्यों तथा अष्टांग मार्ग का उपदेश दिया । इसके प्रचार के लिए उन्होने अपने पांच मित्रों को शिष्य रूप में चुना और अपने प्रथम उपदेश "धर्मचक्रप्रवर्तन" का प्रवचन किया । क्रमशः उनके शिष्यों की संख्या में अभिवृद्धि होती गई । उनके सर्वप्रथम अनुयायी और सर्वाधिक प्रसिद्ध शिष्यों के नाम सारिपुत्त, मोग्गलान, उपाली, कस्यप तथा आनन्द है ।

बुद्ध भगवान द्वारा परिवर्तित उनके अन्तिम शिष्य का नाम सुभद्र है । भगवान बुद्ध शाक्यमुनि तथा तथागत आदि नामों से जाने जाते हैं । भारत में लोगों में नये-नये देवताओं के निर्माण की प्रवृत्ति और बहुदेवतावाद में अटूट विश्वास अपने चरम विकास को प्राप्त कर चुका था। देवता और दानव-मानव जीवन के अभिन्न अंग बन गये थे, क्योंकि ये क ओर जहाँ वे हानि पहुँचा सकते थे वहाँ दूसरी ओर सुखी और समृद्ध बना सकते थे । सामान्य जन वैदिक धर्म और आचार-विचार

में अपार श्रद्धा रखते थे । एकेश्वरवाद को मानने वालों का भगवान भी बहुत कुछ मानव-सदृश्य ही था । उस एक ईश्वर और उसके उपासक में स्वामी और सेवक का सम्बन्ध था। उसका संसार के कार्यों में अत्यधिक हस्तक्षेप करता था । पुच्छल तारे उसके क्रोध का प्रतीक थे । जो पापी संसार को चेतावनी स्वरूप दृष्टिगोचर होते थे । यदि चेतावनी की अवहेलना की गई तो वह मनुष्य के नाश के लिए महामारी भेज देगा । ऐसा विश्वास किया जाता था। प्रत्येक पाप को भगवान के नियम का उल्लंघन समझा जाता था । और उसे प्रसन्न करने के लिए प्रायश्चित ही एक मात्र साधन था।

मनुष्यों के समस्त कार्यकलापों पर क्रोधितईश्वर का आतंक छाया रहता था । लोग पापों के वास्तविक कारणों से उदासीन थे और विभिन्न धार्मिक अनुष्ठानों में संलग्न रहते थे । भगवान बुद्ध से सम्बन्धित क्रूरतापूर्ण अनुष्ठानों को देखकर अत्यन्त दुखी हुए । भगवान में अन्धविश्वास के कारण लोगों का नैतिक पतन हो गया था। बहुत से अच्छे लोग भी बरबर्तापूर्ण व्यवहार यह सोच कर करते थे कि यह पुण्य है । धर्म और आचरण सम्बन्धी ज्ञान का भेद स्पष्ट न होने से संसार में बुराइयाँ उत्तरोत्तर वृद्धि कर रही थी ।

भगवान बुद्ध ने ऐक ऐसे धर्म का प्रवर्तन किया जा यह

शिक्षा देता था कि प्रत्येक व्यक्ति स्वयं बिना किसी पुरोहित अथवा भगवान की सहायता के मोक्ष प्राप्त कर सकता था। उन्होने आचरण की महत्ता पर बल दिया और मानव स्वभाव के प्रति आदर प्रदर्शित किया । उनका यह कहना था कि " यह सोचना मूर्खता है कि कोई अन्य हमें हर्ष अथवा दुख दे सकता है ।" 1

भगवान बुद्ध को धर्म की यह तुच्छता घृणित लगती थी उन्होने देवताओं की महत्ता का निषेध किया और वेदों की प्रभुता का भी अवमूल्यन किया । उन्होने लोगों ने×देवों की आराधना से हटाकर मनुष्यों की सेवा की ओर आकर्षित किया उनका ध्येय एक ऐसे धर्म का प्रवर्तन करना था जो समस्त अंधविश्वासों से मुक्त हो कर मानव मन की शुद्धता और पवित्रता पर बल दें । बुद्ध की दृष्टि में सत्य का अज्ञान ही समस्त दुखों का मूल है । बौद्ध धर्म की प्रारम्भिक शिक्षा तीन बातों पर बल देती है - §1§ आचार संबंधी दृढ़ता§ 2§ परमार्थ विद्या का आभाव, §3§ आध्यात्मिक कल्पना का विरोध ।

बुद्ध ने एक ऐसे धर्म का प्रचार किया जो किसी अन्य की सहायता अपेक्षा नही करता बल्कि जहाँ सब कुछ मनुष्य के अपने प्रयत्न

---

1. बोधिसत्वविचार

के अधीन है । उन्होने जो उपदेश दिया उससे जनसामान्य के हृदय में जो प्रकाश हुआ उसी में उन्हे बौद्ध धर्म की ओर आकृष्ट किया। बुद्ध अपने और उपनिषद के सिद्धान्तों में कोई असंगति नही देखते थे ।, बौद्ध धर्म वस्तुतः हिन्दू धर्म से साम्य ही रखते हैं ।

बुद्ध ने भी अपने धर्म का प्रचार मौखिक रूप से ही किया । उनके शिष्यों ने भी बहुत काल तक उनके उपदेशों का मौखिक प्रचार किया । बुद्ध के निजी उपदेशों का जो कुछ भी ज्ञान हमें आजकल प्राप्त है वह त्रिपिटकों से भी हुआ है । सुत्तपिटक में बुद्ध के वार्तालाप अथवा उपदेशों का संग्रह है । "जातक" भी इसी का एक अंग हैं । जातक का प्रधान ध्येय बुद्ध की महत्ता का प्रकाशन तथा बौद्ध सिद्धान्तों और मान्यताओं को उचित उदाहरणों द्वारा प्रस्तुत करना था। ठीक उसी प्रकार जैसे यूरोप में मध्यकालीन धर्म प्रचारक अपनेउपदेशों में प्रचलित कहानियों और आख्यानों का समावेश करके श्रोताओं का ध्यान आकृष्ट करते थे ।

बाण रचित हर्षचरित्र [1] में बौद्ध विचार के प्रसंग में एक ऐसे उलूक का वर्णन है जो निरन्तर श्रवण से प्राप्त ज्ञान प्रकाश द्वारा बोधिसत्व से जातकों का पाठ करता था। यह तो सर्वमान्य तथ्य है कि कोरे उपदेश ग्राहय नही होते अतः उन्हे सरस और रोचक बनाने के लिए कहानी का कलेवर दिया गया जिससे वे उपदेश मनोरंजक

1. हर्षचरित्र

होने के साथ-साथ सर्वग्राहय भी हो गये । बौद्ध संबन्धी मत का अवलम्बन करने के पश्चात भी यदि सांसारिक मोह माया और बुराइयों से सम्बन्ध बना रहे तो कोई लाभ न होगा । जन सामान्य को यही शिक्षा प्रदान करने के लिए इन जातकों में विभिन्न कुरीतियाँ ईर्ष्या, द्वेष, लाभ, मोह, मात्सर्य, हिंसा, दुष्टता, तथा चरित्रहीनता का चित्रण और उनके दुष्परिणामों का प्रतिफल हैं । प्रत्येक कथा द्वारा एक तथ्य की प्रतिष्ठा करनी होती है ।

जातक की प्रत्येक कथा आमुख से प्रारम्भ होती है जो पंचुपन्नवत्थु कहलाता है । अर्थात " वर्तमान काल की कथा§ ये बुद्ध के जीवन की कतिपय ऐसी विशेष परिस्थितियों का वर्णन करती है, जो उन्हें अपने पूर्व जन्म की कथा कहने को बाध्य करती है । और इसी प्रकार वे बोधिसत्व के रूप में अपने पूर्व जन्मों की विस्तृत श्रृंखला की कोई एक घटना उद्घाटित करते हैं । कथा के अन्त में सारांश होता है और बुद्ध कथा के प्रत्येक पात्र के पूर्व जन्म और वर्तमान जन्म के सम्बन्ध का स्पष्टीकरण करते हैं । इन सभी जातकों में बुद्ध का चित्रण प्रायः सर्वश्रेष्ठ पात्र के रूप में ही हुआ है । इसका कारण मुख्यतः यह प्रदर्शित करना है कि महान व्यक्तियों में आरम्भ से ही महत्ता के लक्षण विद्यमान रहते हैं । उन्हें न केवल अपना अपितु दूसरों का भी पूर्व जन्म स्मरण रहता है । प्रथम जातक कथा "अपन्नक जातक" ।

है जिसमें सत्य की महत्ता चरितार्थ करते हुए भगवान बुद्ध ने बौद्ध धर्म को ही श्रेष्ठ शरणस्थल बताया है । जो बुद्ध की शरण से विमुख हो जाता है वह पुर्नजन्म के चक्र से मुक्तनही हो सकता । और स्वकथन की पुष्टि में वे पूर्वजन्म की एक कथा सुनाते हैं कि इस प्रकार जो लोग अनुचित शरण में गये नष्ट हो गये ।

सत्य का अज्ञान अनेक विपत्तियों का आगार है अतः सत्य से सम्बन्धित यह प्रवचन भगवान बुद्ध ने उस समय सुनाया जब वे सावत्थी के निकट जेतवन के संघागार में थे । यह कथा उन्होंने कोषाध्यक्ष के पाँच सौ मित्रों के लिए कही थी, जो बुद्ध के विरोधियों के अनुयायी थे ।[1] एक दिन कोषाध्यक्ष अनाथपिण्डक[2] अन्य मतानुयायी अपने पांच सौ मित्रों के साथ पुष्पमालाएं, सुगंधित द्रव्य, मधु, वस्तु इत्यादि लेकर जेतवन गया । उचित आदर सत्कार के पश्चात उसने माला आदि बुद्ध को भेंट की तथा वस्त्र इत्यादि भिक्षुओं को दिये और एक ओर आसन ग्रहण किया उसके पांच सौ

---

1. गौतम के छः शत्रु थे जिनमे उन्हें प्रतिस्पर्धा करनी पड़ती थी। उनके नाम पुरान कष्यप, मक्खली, गोसाल, अजीत केसकेबली, पकुद्ध कंचायन, संजय बेलकुट्ठी, पुत तथा निगन्ध नाथ पुत्र हैं ।
2. यह उपनाम है जिसका अर्थ है नियमों का पोषण करने वाला। उसका सही नाम सुदत्त था ।

मित्र भी बुद्ध का अभिवादन करके अनाथपिण्डके समीप गये तथा भगवान बुद्ध के तेजोमय और कान्तिपूर्ण चन्द्र सदृश मुख का अवलोकन करने लगे ।

भगवान बुद्ध ने आठ आचरणों [1] के पालन के अत्यन्त कोमल और भावपूर्ण वाणी से मानों रत्नों की माला के समान उन लागों को सत्य [2] के सम्बन्ध में उपदेश दिया तो ऐसा प्रतीत हुआ जैसे किसी घाटी में युवा सिंह की गर्जना हो । बुद्ध के प्रवचनों के श्रवण के अनन्तर उनके हृदयपरिवर्तित हो गये और उन्होने जिस धर्म का आश्रय लिया था उसका परित्याग कर बुद्ध को ही अपना शरण-स्थल बनाया ।

भगवान बुद्ध सावत्थी से राजग्गह चले गये और जैसे ही वे गये उनके ये अनुयायी अपने नये धर्म की आस्था को त्याग कर इधर उधर चले गये और अपनी पूर्वावस्था को प्राप्त हो गये । जब सात - आठ माह पश्चात बुद्ध वापस आये तो अनाथपिण्डिक पुनः अपने उन मित्रों के साथ आया और उन्हे बताया कि किस प्रकार वे बौद्ध धर्म के सिद्धान्तों से विमुख होकर पूर्वमत का पालन करते हैं । तब

---

1. सम्यकदृष्टि, सम्यक संकल्प, सम्यक वाकू, सम्यक कर्मान्त, सम्यगाजीव, सम्यक व्यायाम, सम्यक-स्मृति, सम्यक समाज, इन्हें अष्टांगिकमार्ग भी कहते हैं ।
2. चार आर्यसत्य:- सर्वदुखं, दुखसमुदयः, दुखनिरोधः, दुख विरोधगामिनीप्रतिपद।

भगवान बुद्ध ने पूछा क्या यह सत्य है, शिष्यों, कि तुमने अन्य मतों की शरण प्राप्ति के लिए बौद्धधर्म के तीन आश्रयों का परित्या कर दिया है, ।

बुद्ध ने अपनी शिक्षा यहीं समाप्त नही की, अपितु उन्होने कहना जारी रखा - "शिष्यों, बुद्ध के ध्यान में लीन होना, सत्य के विचार में लीन होना और संघ के विषय में ध्यान करना, ये बातें ऐसी हैं जो कल्याण के चार मार्ग §[1] में प्रवेश कराके निर्वाण प्राप्ति में सहायता करती है । इस प्रकार भगवान ने सत्य की महत्ता पर अनेक प्रकार से प्रवचन करके उन्हें बुद्ध की शरण को त्यागने की भूल को बोध कराया ।

बुद्ध ने कहा - "शिष्यों इसीप्रकार भूतकाल में जिन लोगों ने अनुचित आश्रय को वास्तविक आश्रय मान लिया वे भूत-पूतों से ग्रस्त निर्जन प्रदेश में दुष्टात्माओं के वशीभूत होकर नष्ट हो गये ।

---

2. बौद्धधर्म के लक्ष्य की प्राप्ति के लिए जो मार्ग है उसके चार विभाग किये गये हैं, जिन्हे चतारो मग्ग कहते हैं । प्रथम अवस्था में साधक "स्रोतापन्न" कहलाता है, वह आत्मा के भ्रम से मुक्त हो जाता है, बुद्ध और उनके आदर्शों में आस्था रखता है, तथा धार्मिक कर्मकांड का भी परित्याग करके निर्वाण की ओर ले जानेवाली चित्तवृत्ति की धारा में प्रवाहित होने लगता है ।

भगवान बुद्ध ने कहा -"संसार की कठिनाइयों को दूर करने के लिए 10 नियमों [1] का पालन करते हुए मैंने अनन्त युगों से परमज्ञान की प्राप्ति की ।" इस प्रकार सबका ध्यान आकर्षित करके उन्होंने लोगों के समक्ष उस बात को स्पष्ट किया जो पुनर्जन्म के कारण उनसे छिपी थी । 10 नियमों का पालन करते हुए जो व्यक्ति सत्य पर दृढ़ होकर उचित आश्रय ग्रहण करता है तो वही सर्वोच्च ज्ञान प्राप्त करता है ।

किसी समय बनारस नगर में ब्रह्मदत्त नामक एक राजा था उन दिनों बोधिसत्व का जन्म किसी व्यापारी के घर में हुआ, जब वह बड़ा हुआ तो पांच सौ बैलगाड़ियों को लेकर पश्चिम से पूर्व तथा पूर्व से पश्चिम व्यापार के लिए यात्रा किया करता था ।

बोधिसत्व ने पांच सौ बैलगाड़ियों पर बनारस का बहुमूल्य व्यापारी माल लादा और चलने के लिए तैयार हो गया । उस मूर्ख व्यापारी ने भी ऐसा ही किया । बोधिसत्व ने सोचा कि यदि यह मूर्ख व्यापारी मेरे साथ-साथ चलेगा और एक हजार बैलगाड़िया साथ चलेगी तो सड़क के लिए ब बहुत हो जायेगा, मनुष्यों

---

1. सद्व्यवहार, भिक्षादेना, ज्ञान, आत्म-त्याग, शक्ति, धैर्य, सत्य, स्थिरता, उदारता तथा चित्त या स्वभाव की सामान्तता, पृ0 45-7 पाली टेक्स्ट , डा0 मारिस ।

के लिए लकड़ी और पानी का प्रबन्ध भी मुश्किल हो जायेगा और बैलों को घास नही मिल पायेगी । इसलिए उन्होंने उस व्यापारी से कहा कि हम दोनो साथ यात्रा नही कर सकते । तुम पहले आओगे या बाद में ? उस व्यापारी ने सोचा कि पहले जाने में अधिक लाभ है क्योंकि मुझे सड़क टूटी-फूटो नही मिलेगी । मेरे बैलो को घास और मेरे आदमियों को फल-फूल और पानी भी प्रचुर मात्रा में मिलेगा ।

बोधिसत्व ने बाद में जाने से अधिक लाभ देखा उन्होंने सोचा कि जो पहले जायेगा वह ऊँची-नीची सड़क को समतल कर देगा उनके बैल सूखी पुरानी घास खायेगा जबकि मेरे बैल उसके स्थान पर उत्पन्न नही कोमल घांस खायेगें, मेरे आदमी नई पत्तियों को भोजन बनाने के लिए पायेंगे, जहाँ पानी नही है, वहाँ उन्हें खोदना पड़ेगा और इस प्रकार हम उनके द्वारा खोदे गये कुएं का जल पियेंगें । अतः मैं बाद में पहुँचकर अपना माल पूर्वनिर्धारित मूल्य पर बेचूँगा।

मूर्ख व्यापारी यात्रा पर निकल पड़ा यात्रा करते हुए उसका दल जनावास को छोड़ता हुआ निर्जन प्रदेश के समीप पहुँचा जहाँ जल की न्यूनता तथा भूत-प्रेतों का आतंक था । उस व्यापारी ने आगे आने वाले साठ योजन विस्तृत निर्जन प्रदेश को पार करने के निमित्त अपने बैलगाड़ियों पर बड़े-बड़े जलपूर्ण पात्रों को रख लिया

जब वह उस प्रदेश के मध्य भाग में पहुँचा तो वहाँ रहने वाले राक्षस ने सोचा, मैं इन व्यक्तियों को जल फेंकने के लिए कहूँगा और इनके संज्ञाशून्य होने पर भक्षण कर लूँगा । अतः उसने अपनी जादुई शक्ति से एक ऐसी सुन्दर बैलगाड़ी का निर्माण किया जिसे दो बिल्कुल श्वेत बैल खींच रहे थे । अपने अन्य दस बारह राक्षसों के साथ, जो धनुष-वाण, तलवार, और कवच से युक्त थे, वह अपनी गाड़ी में बैठकर उनसे मिलने इस प्रकार चला मानों कोई शक्तिशाली स्वामी, अपने सिर के चारों ओर नीलकमल और श्वेत जलपुष्पों की माला पहनकर, गीले वस्त्र और केशों से युक्त तथा पंक से लिप्त गाड़ी के पहियों से उनके समीप आ रहा हो । उसके सेवक भी गीले बाल और वस्त्रों से युक्त, नीले कमलों और जल कमलिनी का माला सिर में डाले हुए, भोज्य कन्दमूल चबाते हुए तथा जल और कीचड़ टपकाते हुए उसके आगे और पीछे चल रहे थे । यात्री दलों की यह रीतिहै कि जब वायु आगे से चल रही हो तो मुखिया अपनी गाड़ी के अग्रभाग में सेवकों से घिर कर चलते हैं, लेकिन जब वायु पीछे की ओर से आ रही हो तब वे पहले की ही भाँति गाड़ी के पृष्ठ भाग में रहते हैं । और चूँकि इस अवसर पर वायु का प्रवाह विपरीत दिशा में था अतः वह युवा व्यापारी आगे की ओर चल रहा था। जब राक्षस व्यापारी के समीप पहुँचा तो उसने अपनी गाड़ी को मार्ग से

हटाकर व्यापारी का अभिवादन किया तथा पूछा कि वह कहा जा रहा है ? उस व्यापारी ने भी अपनी गाड़ियों को एक ओर करने का आदेश दिया जिससे दूसरी गाड़िया निकल सकें, जबकि वह स्वयं मार्ग के किनारे खड़ा हो गया और राक्षस से बोला महाशय हम लोग बनारस से आ रहे हैं। लेकिन मैं देख रहा हूँ कि आपके सिरों पर कमलों और कमलिनियों की माला है, आपके सभी भोज्य - मूल खा रहे हैं तथा आप सब भीगें हुए और कीचड़ से सने हैं । हमें कृपा कर बताइए कि क्या जब आप मार्ग में थे तो वर्षा हुई थी, और क्या आप ऐसे स्थानों से आ रहे हैं जहाँ कमलों से परिपूर्ण जलाशय हैं ? "

यह सुनकर राक्षस बोला " आप क्या कह रहे हैं ? सामने ही हरा-भरा वन है और उसके आगे केवल जल से परिपूर्ण वन ही है । वहाँ सदा वर्षा होती रहती है । जलाशय परिपूर्ण रहते है, तथा प्रत्येक दिशा में कमल और कमलिनियों से पूर्ण जलाशय हैं । " जैसे ही गाड़ियों की पंक्ति आगे बढ़ी उसने पूछा कि उन्हें जाना कहाँ हैं आपना गन्तव्य बताने का राक्षस ने पुनः उन गाड़ियों पर लदे मुाल के विषय में और अन्तिम गाड़ी पर भरे जलपात्रों के विषय में पूछा । व्यापारी के सबकुछ बता देने पर उसने कहा कि जल के भार से गाड़ी को लादना व्यर्थ है क्योंकि आगे चलकर जल

प्रचुर मात्रा में विद्यमान है, अतः तुम लोग अपना बोझ इन जलपात्रों को फेंक कर हल्का कर सकते हो । ऐसा कहकर आगे निकल आने पर वह पुनः अपने प्रेतनगर पहुँच गया ।

उस मूर्ख ने अपनी मूर्खता के वशीभूत होकर उस राक्षस का विश्वास कर लिया तथा समस्त जलपात्रों को तोड़कर सारा जल फेंक दिया । तब वे आगे बढ़े और प्यास से व्याकुल होने लगे लेकिन उन्हें जल की एक बूंद भी नही दिखाई पड़ी । सूर्यास्त तक वे चलते रहें, उसके बाद उन्होने पड़ाव डाला और अपने बैलों को पहियों से बाँध दिया। बैलों के पीने के लिए अथवा भात पकाने के लिए बिल्कुल जल नही था अतः क्लान्त व्यापारी दल पृथ्वी पर लेटकर सुंघने लगा । किन्तु जैसे ही रात्रि हुई राक्षस अपने स्थानों से निकल आए और प्रत्येक व्यक्ति तथा बैल को मार कर खा गये और अस्थियाँ छोड़कर वापस चले गये । इस प्रकार उस मूर्ख व्यापारी ने अपने समस्त यात्री समूह को नष्ट करवाया और सामान से भरी उसकी 500 गाड़िया उसी प्रकार अनछुई खड़ी रह गई ।

अब बोधिसत्व उस व्यापारी के जाने के छः सप्ताह पश्चात यात्रा के लिए तैयार हुए । वे अपनी 500 गाड़ियों के साथ बढ़े और निर्जन प्रदेश के समीप पहुँचे । यहाँ उन्होने जलपात्रों को भर कर प्रचुर जल एकत्रित कर लिया । तब ढोल पीटकर उन्होने सब

लोगों को एक स्थान पर एकत्रित किया और - कहा- मेरी आज्ञा के बिना चुल्लू भर पानी भी प्रयोग न किया जाए । इस स्थान में विषैले वृक्ष हैं, इसलिए तुम लोगों में कोई भी व्यक्ति किसी पुष्प पत्ती अथवा फल को जिसे उसने पहले न खाया हो, मेरी अनुमति के बिना न खाए । इस चेतावनी के साथ वह अपनी 500 गाड़ियों के साथ निर्जन की ओर अग्रसर हुआ । जब वे मध्यभाग में पहुचे तो वही राक्षस पहले की भांति बोधिसत्व के मार्ग में उपस्थित हुआ । बोधिसत्व जैसे ही उस राक्षस के समीप गए उन्होने सोचा, जलविहीन इस मरूभूमि में जल नही है, रक्तवर्ण नेत्रों वाला यह व्यक्ति प्रति - विम्ब से रहित है । बहुत सम्भव है कि इसने मुझसे पहले आने वाले मूर्ख व्यापारी को सारा जल फेंकने को प्रेरित किया हो और उसके क्लान्त हो जाने पर उनका भक्षण कर लिया हो, किन्तु यह मेरी चतुरी और प्रत्युत्पन्न मति से अनभिज्ञ है ।" तब वे राक्षस से चिल्लाए यहाँ से भाग जाओं, हम लोग व्यापारी हैं और जब तक अपना पानी नही फेंकेंगे जब तक कि दूसरा न मिल जाए। यदि हमें और जल मिल गया तब हम यह जल फेंक कर बोझ हल्का कर लेंगे ।

राक्षस के चले जाने के उपरान्त बोधिसत्व के साथियों ने उनसे कहा, हमने उन लोगों को यह कहते सुना कि आगे चल कर हरे भरे वन हैं, जहाँ सदा वर्षा होती रहती है । उनके मस्तक

पर कमल मालाएं और हाथों में कमलिनियां थीं, वे भोज्य कन्दमूल का भक्षण कर रहे थे। तथा उनके वस्त्रों और केशों से जल टपक रहा था इसलिए हमें अपना एकत्रित जल फेंक देना चाहिए। जिससे हम कुछ और जल्दी यात्रा कर सके।

यह सुनकर बोधिसत्व रुक गये और अपने सब आदमियों को एकत्रिकर के कहा मुझे यह बताओं कि क्या इसके पूर्व तुमने इस मरु-भूमि में किसी जलाशय या सरिता के विषय में सुना है, उन्होन उत्तर दिया, " नहीं महोदय, यह प्रदेश तो जलशून्य मरूस्थल कहलाता है। हमें अभी कुछ लोगों ने बताया है कि आगे वर्षा हो रही है जहाँ वनों की पंक्ति है, अब यह बताओं कि बरसाती वायु कितनी दूर तक जाती है ? एक योजन महाशय।" " और क्या वह बरसाती हवा तुममे से किसी एक के भी समीप पहुँची ? "नहीं" महाशय। तुम लोग तूफानी बातों के टुकड़े कितनी दूर से देख सकते हों ? एक योजन से ,, और क्या किसी भी व्यक्ति ने यहाँ एक भी मेघखण्ड देखा ? " नहीं, महाशय।" तुम लोग विद्युत का चमकना कितनी दूर से देख सकते हों ? "चार या पांच योजन से" और क्या किसी भी एक व्यक्ति ने यहाँ विद्युत प्रकाश देखा ? "नहीं", महाशय "ये लोग साधारण व्यक्ति नहीं अपितु राक्षस हैं।

हम उनका विश्वास करके जल फेंदेते तो हमारे दुर्बल और संज्ञा-

शून्य होने पर कोई हमें खाने की आशा से पुनः लौट आते । यह युवा व्यापारी जो हमसे पूर्व चला गया था, सम्भव है उसने मूर्खता वश जल फेंक दिया हो और जब वे विश्रान्त हो गये हों तो उनका भक्षण कर लिया गया हो । हम उनकी पाँच सौ सामान्य से लदी गाड़ियों को उसी प्रकार खड़ी पा सकते हैं, हम आज ही उन तक पहुँच जायेंगे ।

इपने सहयोगियों को प्रेरित करके वे तब तक चलते रहे जब तक उस स्थान पर नही पहुँच गये जहाँ सामान्य से लदी 500 गाड़ियां खड़ी थी और मनुष्यों तथा बैलों के हस्थिपंजर प्रत्येक दिशा बिखरे थे । बोधिसत्व ने बैलों को गाड़ियों से अलगकर गोलाकार पड़ाव डाला जिसमें बैल बीच में और मनुष्य चारों ओर थे उनके सब साथियों ने भोजन भी जल्दी कर लिया, तथा बोधिसत्व स्वयं हाथ में तलवार लेकर रात्रि भर पहरा देते रहें । दूसरे दिन प्रातः जब बैलों ने भोजन कर लिया तथा प्रत्येक आवश्यक कृत्य पूर्ण होगया तो उन्होंने अपनी कमजोर गाड़ियों को मजबूत गाड़ियों से और अपने सामान्य माल को बहुमूल्य सामग्री से बदल दिया ।

अनन्तर वे अपने गन्तव्य स्थल पहुँचे जहाँ उन्होंने अपना सामान दुगने-तिगुने दामों पर बेचा और अपने सम्पूर्ण साथियों में किसी एक भी व्यक्ति को हानि पहुँचाए बिना अपने शहर लौट

आये ।

इस प्रकार अतीत समय में मूर्ख महाविनाश को प्राप्त हुए, जबकि सत्य पर अटल रहने वाले, राक्षसों से बचकर अपने लक्ष्य पर सुरक्षापूर्वक पहुँच गये । और पुनः अपने घरों को लौट आये । इस प्रकार दोनो कथाओं को परस्पर जोड़कर बुद्ध ने सत्य के सम्न्ध में एक गाथा कहीं ।

बुद्ध ने सत्य के सम्बन्ध में शिक्षा दी और कहा -"सत्य पर चलने से, तीन प्रकार की सुखावस्था की प्राप्ति नहीं होती बल्कि ब्रहम के महान राज्य की प्राप्ति के साथ अन्त में अर्हत् अवस्था प्राप्त होती है, जबकि असत्य पर चलने से मनुष्य की निम्नतर जाति में पुर्नजन्म होता है, । दोनों कथाओं का परस्पर संबन्ध बताते हुए बुद्ध ने जन्मों का स्पष्टीकरण करते हुए अपनी बात समाप्त की- " देवदत्त मूर्खव्यापारी था और 500 व्यापारी उसके अनुयायी थे , बुद्ध के अनुयायी कुछ बुद्धमान व्यापारी के अनुयायी थे ।

जातक में बौद्ध धर्म के प्रायः सभी प्रमुख सिद्धान्तों, उपदेशों और शिक्षाओं को किसी न किसी रूप में उपस्थित करता है उन्हें सरस बनाने के लिए ही कथा का आश्रय लिया गया है । यही कारण है कि प्रत्येक कथा में कोई न कोई उपदेश अवश्य निहित है

रहता है । एकता में ही बल है यह उक्ति सब के लिए चरितार्थ होती है चाहे वह मनुष्य , पशु-पक्षी, वृक्ष अथवा लताएं हों यह उपदेश अनेक जातकों में उपलब्ध होता है जैसे- रुक्खधम्म जातक में कहा

गया है कि मनुष्यों को सदैव एकतापूर्वक संगठित रहना चाहिए एकता के सम्मुख शत्रु भी शक्तिहीन हो जाता है । अतः सिद्ध हुआ है कि एकता ही शक्ति है कथा में इसे एक गाथा द्वारा स्पष्ट किया गया है इसी प्रकार सम्मोदनान जातक भी एकता की शक्ति की ओर संकेत करता है - यह कथा बुद्ध ने कपिलवस्तु के समीप निवास करते समय सुनाई थी । इस अवसर पर बुद्ध ने अपने सम्बन्धियों से कहा कि सम्बन्धियों में आपसी शत्रुता अनुचित है । अतीत समय में उन पशुओं ने जो मित्रता पूर्वक रहे अपने शत्रुओं को पराजित कर दिया किन्तु जब उनमें मतभेद उपस्थित हो गया तो वे नष्ट हो गये ।

जब ब्रह्मदत्त बनारस का शासक था, बोधिसत्व हजारों बटेरों के अग्रणी होकर बटेर के रूप में एक वन में रहते थे । उन्हीं दिनों ऐ क बहेलिया अपने जाल में उनको पकड़ कर और बेच कर अपनी आजीविका चलाता था एक दिन बोधिसत्व ने उन सबसे कहा कि यह बहेलिया हमें अत्यन्त दुखी कर रहा है । मुझे एक युक्त सूझी है जिससे यह हमें नही पकड़ पायेगा । जैसे ही वह जाल तुम्हारे ऊपर

फेंके तुम में से प्रत्येक, जाल के छेद से अपना सिर निकाल कर जाल सहित उड़ जाना और कहीं अन्यत्र किसी काँटेदार झाड़ी पर जाल डालकर छिद्रों से उड़ जाना ।

इसी प्रकार दूसरे दिन उन पक्षियों ने वैसा ही किया और उसबहेलियों को खाली हाथ घर लौटना पड़ा कई दिनों तक चलता रहा और उस बहेलिया की पत्नी उससे क्रोधित हो गई इस पर उसने कहा कि वस्तुतः मैत्री और एकता के कारण वे पक्षी अभी बच जाते हैं किन्तु जिस दिन इनमें मतभेद और झगड़ा हो जायेगा उसी दिन मैं इन्हे पकड़ लूगा, कुछ ही दिन के अनन्तर एक बटेर ने उतरते समय दूसरे बटरे का पैर कुचल दिया उनमें झगड़ा होने लगा और बात आगे बढ़ गई यह देख कर बोधिसत्व ने सोचा अब यहाँ रहना उचित नही है क्योंकि इनमें फूट पड़ गई है और अअब यह जाल भी नहीं उठा पायेगे ।

कुछ दिन पश्चात जब बहेलिया ने उन पर जाल डाला तो वे एक दूसरे को जालउठाने केलिए कहने लगे और इसी बीच बहेलिया ने ही उन सबको पकड़ कर अपनी टोकरी में बन्द कर लिया। बुद्ध ने उपदेश दिया कि स्वजनों से कलह अनुचित हैं क्योंकि वह विनाश का कारण है ।

इससे यह स्पष्ट होता है कि जबकिक प्रेमपूर्वक सम्मिलित रूप से कार्य किया जाता है तब तक शत्रु भर कुछ नही बिगाड़ सकता, किन्तु

फूट पड़ते ही शक्ति समाप्त हो जाती है तथा शत्रु विजयी होता है । बौद्धधर्म के अनुसार जो कार्य उद्योगों का शमन करते हैं अथवा वास्तविक आदर्श जीवन की ओर प्रेरित करते हैं वस्तुतः संसारकल्याण की भावना से युक्त होते हैं । उनके मुख्य तीन भेद हैं :- अलोभ, अद्वेष, अमोह जो कार्य सांसारिक सुख, पुनर्जन्म की ओर ले जाते है वे मिथ्या दृष्टि, लोभ एवं द्वेत से उत्पन्न होते हैं, लोभ अथवा लालच मनुष्य का प्रबल शत्रु है, यहाँ तक कि पशु-पक्षी भी उसे दुष्प्रभाव से नष्ट कर देते हैं ।

जातक कथाएं लोभ के दुष्परिणामों को अनेक रूप में चित्रित करती है । कपोत जातक ने बोधिसत्व एक कपोत रूप में जन्मग्रहण करते हैं तथा कोषाध्यक्ष द्वारा रसोईघर में लटकाई गई टोकरी में आवास ग्रहण करते हैं ।

बुद्ध इच्छाओं और भावनाओं का दमन इतना अनिवार्य नहीं मानते जितना संसार के प्रति सच्चा प्रेम आवश्यक मात्र मानते हैं । परस्पर प्रेम के कारण ही संसार का कल्याण हो सकता है । मनुष्य का आचरण दो प्रकार का होता है अच्छा एवं बुरा । इस प्रकार के अपराधों का निषेध करने से आचारण अच्छा होता है , तीन प्रकार के शारीरिक पाप, हत्या, चोरी एवं व्यभिचार, तीन प्रकार के मानसिक पाप, लोभ, ईर्ष्या, एवं अशुद्धि, चार प्रकार के बाधिक

पाप-मिथ्यावा वादन, अपवाद, अपशब्द एवंबकवाद, पापपूर्ण आचरण के अन्य विभाग भी हैं।

बुद्ध ने सदाचार के 10 नियमों में दान को प्रथम स्थान दिया है दान की महिमा तो सर्वविदित है, इसी कारण अनेक जातक दान- सम्बंधी संस्तुति प्रस्तुत करते हैं, इल्लिसा जातक में एक धनी मृत-पिता अपने कंजूस पुत्र को दान के लिए प्रेरित करने के उद्देश्य से स्वयं उसी का रूप धारण करके पुनः पृथ्वी पर आता है और अपने प्रयत्न में सफल होता है। मयहक जातक बताता है कि धन प्राप्त करके जो व्यक्ति परहित के लिए उसका उपयोग करता है वह पृथ्वी पर तो यश पाता ही है मृत्यु के उपरान्त स्वर्ग का अधिकारी भी होता है। विषह्य जातक एक ऐसे धनी व्यापारीकी दानशीलता का वर्णन करता है जो दरिद्रता की सीमा तक पहुँचकर भी दान से विमुख नही हुआ। भगवान बुद्ध ने संघ में दीक्षित अपने अनुयायियों के लिए 10 नियम बताये थे - अहिंसा, अपरिग्रह, ब्रहमचर्य, सत्य, धर्म, में श्रद्धा, मध्यान्होत्तर भोजन का निषेध, विलाश से विरिक्त, सुगन्धित द्रव्यों का निषेध, सुखप्रद शय्या तथा आशन का परित्याग, तथा स्वर्ण या चाँदी आदि मूल्यवान वस्तुओं का अस्वीकार करना। मादक द्रव्यों के सेवन का बुद्ध ने घोर विरोध किया जातकों में भी मद्यपान की कहानियों की ओर संकेत हैं इससे मनुष्य विवेकशून्य हो जाता है। सुरापान जातक में

बुद्ध ने कहा है कि मद्यपान करना एक अपराध है जिसके लिए प्रायश्चित करना आवश्यक है ।

दुव्वच जातक एक ऐसे नाटक की कथा है जो मद्यपान के कारण अपने प्राण गंवाता है, । इन्द्रियजनित सुख अ स्थायी हाते हैं, अतः उनमें लिप्त रहना भारी मूर्खता है । मोह में फंसकर मनुष्य अनेक कष्ट पाता है अतः बौद्धधर्म ऐन्द्रिय सुखों का निषेध करता है । समकम्प जातक- लाभ गृह जातक इत्यादि जातक इन्ही इंन्द्रिय जनित सुखों के दुष्परिणामों तथा सांसारिक मोह की ओर संकेत करते हैं ।

धैर्यवान व्यक्ति ही विपत्तियों एवं संकटों का सामना कर सकता है । यही कारण है कि 10 नियमों में धैर्य भी एक है । अनेक जातक इससे सम्बन्धित है । एकराज जातक एक ऐसे नृप की कथा है जिसे बन्दी बनाकर अत्याचार किये जाते हैं किन्तु अपेने धैर्य से वह कष्ट में भर अपने शत्रु पर विजय प्राप्त कर प्रायश्चित के लिए प्रेरित करता है । क्षान्तिवादी जातक में एक क्रूर राजा एक सन्यासी के साथ दुर्व्यवहार करता है किन्तु वह धार्मिक अन्ततक धैर्य नही छोड़ता और वह दुष्ट राजा नरक का भागी होता है । महिष जातक में बोधिसत्व के धैर्य एवं एक दुष्ट बानर की कथा है । ये सभी कथाएं किसी न किसी रूप में धैर्य की महिमा से सम्बन्धित हैं ।

बुद्धिमान व्यक्ति विषय परिस्थिति को भी सुगम बना देता है बुद्धिमान के लिए कुछ भी कठिन नही है । यही कारण है कि प्रत्येक प्राणी यदि बुद्धि से कार्य लें तो सर्वत्र सफल होगा , जातकों में बुद्धिमता से सम्बन्धित अनेक कथाएं हैं । चुल्लक सेठी जातक [1] में एक ऐसे युवा व्यापारी का वर्णन है जो एक मृत्यु चूहे को उठाकर बेच देता है और उस पैसे से धन कमाते हुए धनी व्यापारी बन जाता है इसी प्रकार लक्खन जातक, कण्डिन जातक, तिपल्लट्ठ-मिग जातक, नलपान जातक, कुरुंग जातक, कुक्कुर जातक, सकुन जातक बक जातक, पुन्नपाती जातक, वानरिन्द जातक, तथोधम्म जातक मितचिन्ती जातक, वटक जातक, घटाशन जातक, अब्बु जातक, सिगाल जातक, उरग जातक, कुसनाली जातक, तिन्दुक जातक, सम्कुमार जातक, कूट-वनिज जातक, मूल - परियाय जातक, वानर जातक, सुतनों जातक, पुसीमाप्सा जातक इत्यादि भी बुद्धिबल्ल के द्वारा विभिन्न परिस्थितियों में विजय प्राप्त होती हैं, इस कथन की पुष्टि करते हैं इसके विपरीत मूर्ख सदैव हानि ही प्राप्ति करता है । अतः मूर्खों की संगति से बचना चाहिए । मूर्ख स्वयं तो

---

1. "मूषक-श्रेष्ठि कथा " नाम से प्रसिद्ध यह कहानी पंचतंत्र एवं कथा सरित्सागर में भी मिलती है ।

नष्ट होता ही है दूसरों को भी नाश कर देता है ।

जातकों में भी ऐसी कथाओं का भी समावेश प्रचुर रूप में है जिनमें मूर्ख एवं बुद्धिमान पात्रों की तुलना करते हुए यह शिक्षा दी गई है कि मूर्ख सदैव अधःपतन का कारण होता है तथा बुद्धिमान उन्नति का । जैसे - लक्खन जातक दो मृगों से सम्बन्धित है जिसमें मूर्ख मृग अपनी मूर्खता से अपना एवं अपने समस्त अनुयायीमृगो का नाश कर देता है एवं दूसरा अपनी बुद्धिमत्ता से अपनी अनुयायियोंxसेx सहित सकुशल लौट आता है । मकस जातक के एक ऐसे मूर्ख पुत्र की कथा है जो अपने पिता के मस्तक पर बैठे मच्छर को मारने के लिए पिता को ही मार डालता है ।

इसलिए कहा गया है कि बुद्धिमान शत्रु मूर्ख मित्र से श्रेयस्कर है । यही शिक्षा रोहिनी जातक में भी मिलती है । आरामदूसक जातक, वारूनी जातक, नंगलिस जातक, कलाय मुट्टी जातक, बिह-चम्म जातक, सोमदत्त जातक, आरामदूस जातक, पादन्जलि जातक चम्मसातक जातक आदि भी मूर्खता से सम्बद्ध कथाएं प्रस्तुत करते हैं । अतः यह निष्कर्ष निकलता है कि बुद्धि ही सर्वत्र जय प्राप्त करती है ।

सभी धर्मों एवं सम्प्रदायों में चोरी का निषेध बताया गया है § " चोरी मत करो" बुद्ध की शिक्षाओं में एक शिक्षा थी यही

कारण है कि जातकों ने इनसे सम्बन्धित कुछ कथाएं भी समाविष्ट हैं सदाचार का पालन वही व्यक्ति कर सकता है जिसका चरित्र भ्रष्ट न हो । अतः चोरी की ओर चरित्रहीन ही आकृष्ट हो सकता है । सीलवीमसन जातक की कथा इसी से सम्बद्ध हैं । एक बार बोधिसत्व ने ब्राह्मण कुल में जन्म ग्रहण किया अवस्था प्राप्त होने पर उन्होंने एक सुप्रसिद्ध एवं वृद्ध गुरु से शिक्षा प्राप्त की जो पांच सौ शिष्यों के गुरू थे । गुरू की एक युवती कन्या थी अतः उन्होंने सोचा कि मै अपने शिष्यों के शील की परीक्षा करूंगा एवं जो सबसे अधिक शीलवान होगा उसी को अपनी पुत्री दूंगा ।

अतः एक दिन गुरू ने अपने शिष्यों से कहा - " मेरे मित्रों मेरी एक युवती कन्या है और मैं उसका विवाह करना चाहता हूँ लेकिन उसके लिए आवश्यक आभूषण एवं वस्त्र होने चाहिए इसलिए क्या तुम लोग अपने मित्रों की जानकारी के बिना मेरे पास कुछ चुनाकर ला सकते हों । तुमलोग जो भी ऐसी वस्तु लाओगे जिसे किसी ने न देखा हो उसे तो मैं ग्रहण कर लूंगा किन्तु यदि देखी हुई वस्तु होती है तो उसे मै नही लूंगा ।" इसके पश्चात वे शिष्य प्रतिदिन कोई आभूषण अथवा वस्त्र चुपचाप चोरी करके गुरू को देने लगे और वे उन वस्तुओं को पृथक-पृथक रख देते थे । किन्तु बोधि-सत्व ने कुछ नही चुराया गुरू ने उनसे इसका कारण पूछा तो उन्होंने

कहा कि आपने तो चोरी की वस्तुएं गुप्त रूप से लाने को कहीं है किन्तु मैं किसी भी बुरे कार्य को करने में असमर्थ हूँ क्योंकि जहाँ कोई न होगा वहाँ भी मैं तो नही रहूँगा इसलिए वह गुप्त रूप से कैसे हो पायेगा । यह सुनकर गुरु अत्यन्त प्रसन्न हुए एवं अपने कन्या का विवाह उनसे कर दिया । क्योंकि वस्तुतः उनके पास धन का अभाव नही था। उन्होने तो चरित्र की पवित्रता की परीक्षा लेने के लिए ही ऐसा किया था । अतः यह सिद्ध हुआ कि सच्चाई एवं मन की पवित्रता से लेकर और कोई चीज नही है । सीलवी-मासन जातक में भी यही शिक्षा दी गई है कि मनुष्य का आदर सर्वत्र सच्चरित्रता के द्वारा होता है, धन का भी महत्व न्यून है । यह एक ऐसे ब्राह्मण की कथा है जो प्रचुर धन से सम्पन्न था किन्तु एक बार उसने सोचा कि मैं यह देखना चाहता हूँ कि मेरा आदर सम्मान धन के कारण होता है अथवा गुणों के कारण यह देखने के लिए वह राजकोष से प्रतिदिन एक मुद्रा चुराने लगा । कुछ दिन तो कोषाध्यक्ष कुछ नही बोला किन्तु अन्त में उसने राजासे शिकायक कर दी यह देखकर ब्राह्मण समझ गया कि गुणों के समक्ष धन की कोई महत्ता नहीं हैं । चोरी करना तो बुरा ही रहेगा चाहे वह किसी प्रकार की हो ।

बुद्ध ने चोरी की महत्ता को निषेध बताया है पाप के अन्तर्गत मिथ्यावादन का प्रथः स्थान है । अतः असत्य का निषेध

सर्वत्र किया गया है जातकों में " चेतीय जातक" एक ऐसे स्वर्णयुग की कथा है जिसमें झूठ बोलना एक नई बात है उस समय भी एक ऐसा राजा था जो झूठ का आश्रय लेकर इस अपने धर्म पुरोहितों में उच्च पद पर प्रतिष्ठित को निम्न पद एवं निम्न पद वाले को उच्च पद देना चाहिता था । एक सन्यासी ने उसे उपदेश दिया- " हें राजन् । झूठ समझ गुणों का भयंकर विनाश करता है, इससे पुनर्जन्म का भागी होना पड़ता है । जो राजा झूठ बोलता है वह सत्य का उल्लंघन किया गया है और सत्य का नाश करने वाला स्वयं नष्ट हो जाता है किन्तु राजा ने उसकी बात नही मानी एवं सात बार निरन्तर झूठ बोलता रहा परिणाम स्वरूप धरती फटगई एवं अवीचि नर्क कीलपटे उसे गर्भ में ले गई । अतः असत्य वादन करने वाला घोरतम नरक का भागी होता है यही इस कथा में बताया गया है ।

भगवान बुद्ध ने यहाँ तक कहा कि वस्तुतः हिंसा करने वाला ही पाप का भागी होता है, यदि पशु हत्या कोई अन्य करें एवं मांस कोई दूसरा खाये तो पाप का पात्र मारने वाला ही समझा जायेगा । खाना वाला नहीं, यदि खाने वाला पूर्णतः पवित्र आचरण वाला है एवं अपनी इच्छानुसार या स्वाद के लिए नही खा रहा है तभी अन्यथा यदि स्वाद के लिए पशु मरवाकर भरण किया जाय तब दोनो ही पाप के भागी होंगे । ब्रहमदत्त के राज्यकाल में

बोधिसत्व एक ब्राह्मण के रूप में उत्पन्न हुए अवस्था प्राप्त कर उन्होंने धार्मिक जीवन अपनाया । एक बार वे भिक्षा मांगने हिमालय से शहर आये । एक धनी व्यक्ति ने उन्हें तंग करना चाहा अतः वह उन्हें अपने घर ले आया तथा आसन देकर मछली परोसी, । भोजनोंपरान्त वह धनी एक ओर बैठ गया और बोला- "यह भोजन जीवित प्राणियों को मारकर विशेष रूप से आपके लिए बनाया गया था । अतः इसका दायित्व आप पर होगा । मुझ पर नही । यह कहकर उसने एक गाथा कही । यह सुनकर बोधिसत्व ने दूसरी गाथा कहीं कि दुष्ट उपहार स्वरूप चाहे पत्नी को मारे या पुत्र को, यदि पवित्र व्यक्ति उसे पाये तो कोई पाप नही होता ।

बुद्ध का कहना था कि हम समस्त विश्व को ऐसी असीम प्रेमभावनाओं को आप्लावित करें, जिसमें प्रेम, दया, सहानुभूति, विनय कृतज्ञता, एवं उदारता को ही स्थान मिले तथा कटु भावनाओं का लेश भी न हो । उनका कथन था कि संसार - कल्याण की भावना से युक्त होने पर ही आदर्श जीवन व्यतीत किया जा सकता है ।

जातक कथाएं इन भावनाओं से सन्निहित अनेक उदाहरण प्रस्तुत करती हैं - जैसे- सम्बन्धित कथाओं में नन्दिविसाल जातक, गिज्झ जातक, सेय्य जातक, सम जातक, तथा कीठ जातक, प्रमुख हैं । कन्दकपुव जातक, ब्रह्मदत्त जातक तथा दीपि जातक इत्यादि

विनय से सम्बन्धित है । इसी प्रकार सभी प्राणियों पर दया करना भी मनुष्य का कर्तव्य है । यही कारण है कि दया की भावना से ओत-प्रोत कथाओं की भी कमी नही है । प्रेमभाव की अनिवार्यता सभी के लिए मानी गई है। चाहे वह मनुष्य हो अथवा पशुपक्षी । वही प्रेम वास्तविक प्रेम होता है जो वासना से मुक्त हो एवं जिसमें भक्ति की भावना हो, प्रेम माता-पिता-, बहन-भाई, पति-पत्नी, मित्र, सेवक सभी के साथ करना चाहिए। तभी विश्वबन्धुत्व की भावना पनप सकती है । इसीलिए प्रेम को श्रेष्ठ इलाज कहा गया है। सुवन्नमिग जातक पत्नी का पति प्रेम प्रदर्शित करता है ।

इसी प्रकार अनेक कथाएं प्रेम की महत्ता पर प्रकश डालती है । अकृतज्ञता से अधिक लज्जाजनक बात मनुष के अलिए अन्य नही है । अपेन ऊपर किये गये दूसरे के उपकार को कभी विस्मृत नही करना चाहिए तथा सदैव भी परोपकार में तत्पर रहना चाहिए । परोपकार से सम्बद्ध कथाएं कन्ह जातक, तथा मच्छ जातक इत्यादि हैं । कृतघ्न मनुष्य नष्ट हो जाता है, यह शिक्षा भी अनेक कथाएं प्रेषित करती हैं । शीलवान जातक एक ऐसे कृतघ्न मनुष्य की कथा हैं जो वन में पथभ्रष्ट हो जाता है तथा श्वेत हाथी के रूप में उत्पन्न बोधिसत्व के द्वारा मार्गदर्शन करके प्राणरक्षा करता है । वह दुष्ट पूर्व जन्म का देवत्त हैं और उस हाथी को नष्ट कर देने के लिए पुनः उसके दातों को विक्रय के लिए ले जाता है । लाभ कमाता है।

अन्ततः उसके पापों को सहने में असमर्थ पृथ्वी फट जाती है और वह उसी में समा जाता है और यह ध्वनि गूंज उठती है कि समस्त पृथ्वी का राज्य भी अकृतज्ञ एवं दुष्ट व्यक्ति को संतुष्ट नहीं कर सकता । अकतन्नु जातक में भी यह शिक्षा दी गई है कि जो व्यक्ति उपकार के प्रति कृतज्ञ नहीं होता, समय पर उसकी सहायता कोई नहीं करता । सच्चमकिर जातक, सिगार जातक, असम्पदान जातक, दुभीय-मक्कट जातक, जवसकुन जातक आदि में इसी अकृतज्ञता की ओर संकेत है कृतज्ञ व्यक्ति ही वस्तुतः सच्चरित्र कहलाता है । अकृतज्ञता ज्ञापन का संकेत तीरित वच्छ जातक तथा महासुक जातक में उपलब्ध होती है । चार प्रकार के वाचिक पाप के अन्तर्गत बकवाद अथवा व्यर्थ का प्रलाप भी अन्तर्भूत है ।

जातक कथाएं इस दिशा की ओर संकेत करती हैं । सालित्तक जातक एक ऐसे ही ब्राहमण की कथा है जो बहुत बोलता था और अंत में राजा एक अपंग की सहायता से उसे चुप रहने की शिक्षा दिलवाता है । तितिर जातक में एक ऐसे ब्राहमण की कथा है जो व्यर्थ व्यक्ति का प्रलाप करने के कारण प्राण गंवा बैठता है । कच्छप जातक [1] में भी यह शिक्षा दी गई है कि सदैव बुद्धिमता पूर्ण एवं अवसर देखकर ही बात करनी चाहिए ।

---

1. पंचतंत्र, पृ0 239, इंडियन फेरी टेल्स, पृ0 100 एवं 245.

अधिक बोलने के कारण ही कछुए ने प्राण खोए । इसी प्र-कार कोकालिक जातक, भी असमय एवं व्यर्थ बोलने से होने वाली हानि की ओर संकेत करता है। इसमें बुद्ध ने उपदेश दिया है कि चाहे मनुष्य हो या पशु यदि असमय ही बहुत बोलते हैं तो समान विपत्ति में फंस जाते हैं। अतः यही निष्कर्ष निकलता है कि बकवादी एवं बहुप्रलापी सदैव कष्ट पाता है ।

सदाचार का पालन एवं शील की महत्ता पर बुद्ध ने बहुत बल दिया है। सदाचार के बिना व्यक्ति कभी महानता नहीं प्राप्त कर सकता है । यही कारण है कि जातकों में अनेक कथाएं इससे संब-न्धित हैं । कुछ प्रमुख कथाएं हैं - नन्दियमिग जातक, सीलवीमांसा जातक, कुरू धम्म जातक, अम्म जातक, वाहिय जातक, इत्यादि । कभी कभी दुष्ट संपर्क से भी सदाचार नष्ट हो जाते हैं । अतः कल्याण की कामना रखने वाले को दुष्ट सम्पर्क से भी बचना चा-हिए । उदाहरणार्थ महिलामुख जातक, एक ऐसे ही श्रेष्ठ हाथी की कथा है जो चोरो के सम्पर्क में जाने से हिंसक एवं दुष्ट हो गया किन्तु सद्वचनों का श्रवण कर पुनः सद्व्यवहार करने लगा। गिरिदन्त जातक एवं अरन जातक से भी यही शिक्षा मिलती है कि बुरी संगति अच्छे को भी बुरा बना देती है ।

इच्छाओं का दमन सुख की प्राप्ति के लिए प्रथम सोपान है ।

इच्छाएं तो अनन्त है इसलिए जो व्यक्ति इनके मोह-पाश से मुक्त नही हो पाता वह सदैव दुःख ही प्राप्त करता है। बुद्ध ने इच्छाओं को दुख से भी बढ़कर कष्टकर माना है । और उन्हें ही कल्याण मार्ग का वास्तविक बन्धन माना है। बन्धनागार जातक तथा काम-विलाप जातक में उसी बात का आदेश दिया गया है ।

जातकों के अनुशीलन से ज्ञात होता है कि स्त्री का तत्का-लीन समाज में कोई आदर नही था। उसे अति हेय दृष्टि से देखा जाता था। स्त्रियों की सच्चरित्रता असम्भव मानी जाती थी एवं उन्हे पाप-मार्गों का प्रवर्तक तथा सुकर्मों से दूर ले जानें वाला समझा जाता था। यही कारण है कि इन जातकों में सर्वत्र स्त्रियों की निन्दा की गई है तथा उनके अनेक दोषों का उल्लेख करते हुए उनसे दूर रहने की शिक्षा दी गई है । सम्भवतः इसी कारण बौद्ध-संघों में स्त्रियों का प्रवेश वर्जित था किन्तु आप में आनन्द को सहमति से स्त्रियों को भी संघ में दीक्षित किया जाने लगा था। एक बार आचार्य आनन्द ने भगवान बुद्ध से पूछा कि पुरुष को स्त्रियों के समक्ष कैसा आचरण करना चाहिए तो बुद्ध ने उत्तर दिया, उसकी ओर मत देखों ...... यदि देखना आ-वश्यक हो जाए तो बात मत करों, और यदि बात करना आवश्यक हों, तो पूर्णतः सजग हों । [1] जब सुद्धोदल राजा की विधवा रानी

---

1. महापरिनिव्वानुसुत

पांच सौ राजकुमारों की पत्नियों के साथ बौद्धमत में दीक्षित होने के लिए बुद्ध के पास आई तो उन्होने तीन बार मना कर दिया, क्योंकि उन्हें भय था कि उनका प्रवेश बहुत से अन्य दीक्षित व्यक्तियों को व्याकुल कर देगा। जब पुनः वे स्त्रियां लहूलुहान पैरों एवं धूल भरे वस्त्रों से युक्त होकर बुद्ध के समीप आई तो आनन्द ने पूछा: क्या बुद्ध लोग संसार में केवल पुरुषों के कल्याण के लिए उत्पन्न हुए हैं ? निस्सन्देह उन्हें स्त्रियों का कल्याण भी करना चाहिए। इसके पश्चात् उन्हें प्रवेश दें दिया गया, क्योंकि संसार के दुःख तो सभी के लिए समान हैं इसलिए उसके मुक्ति का मार्ग तो उन सबके लिए खुला रहना चाहिए जो उसे अंगीकार करना चाहें। फिर भी जातक कथाओं में स्त्रियों से सम्बन्धित दृष्टिकोण मुख्यतः हेय ही रहा और उन्हें समस्त बुराइयों की जड़ माना गया।

कण्डिन जातक में प्रदर्शित किया गया है कि किस प्रकार एक मृगी के प्रेम में पड़कर एक मृग प्राण गंवा बैठता है। इस कथा में कहा गया है कि वह स्थान दूषित होता है जहाँ स्त्रियों का आधिपत्य एवं शासन होता है तथा वे लोग भी कलुषित होते हैं जो स्त्रियों के शासन को अंगीकार करते हैं। असातमन्त जातक में बताया गया है कि स्त्रियां लम्पट, दुराचारिणी, नीच अथवा

अधम होती है । अन्दभूत जातक एक ऐसी युवती की कथा है जिसने जन्म से ही पति के अतिरिक्त पर-पुरुष का दर्शन भी नही किया था किन्तु अवसर प्राप्त होने पर उसने न केवल पति के साथ विश्वासघात किया अपितु चतुराई से स्वयं को निर्दोष भी सिद्ध कर दिया। इसीलिए इसमें बुद्ध उपदेश देते हैं कि स्त्रियों की रक्षा नही की जा सकती । यहाँ तक कि जन्म लेते ही जिन कन्याओं के ऊपर निगरानी रखी गई उनकी भी रक्षा नही की जा सकती 2 तक्क जातक भी स्त्रियों की कृतघ्नता और दुष्टता को घोषित करता है । दुराजान जातक स्त्री चरित्र की अगम्यता को बतलाता है। जिस प्रकार महिलाओं का मार्ग जल में अज्ञात और अनिश्चित होता है वैसा ही स्त्री-चरित्र भी होता है । उदन्जली जातक और वन्धनमोक्त जातक भी स्त्री निन्दा करते हैं। कोसिय जातक भी पत्नी की धूर्तता प्रकाशित करता है । राध जातक में कहा गया है कि स्त्रियों की सुरक्षा करना असम्भव है तथा कोई भी सुरक्षा स्त्री - चरित्र भी होता है जो सन्मार्ग पर नही ला सकती । पुष्परट जातक पत्नी को नाश का कारण बताता है । रूहक जातक में कहा गया है कि स्त्रियां दोषों का आगार होती है। चुल्ल-पदुम-जातक में भगवान बुद्ध कहते हैं कि स्त्रियां इतनी धूर्त और कृतघ्न होती है कि प्राचीन

मनीषियों ने उन्हें अपने दाहिने जानु का रक्त पीने को दिया और जीवन-पर्यन्त उन्हें भेंट देते रहें, फिर उनके हृदयों को नहीं जीत सके । राध जातक , उच्छिट्ट भट्ट-जातक , वीना थुन, जातक, मुदुपानि जातक, चुल्ल फ्लोमन जातक, काण्वेर जातक, तुल्लधनुग्गह जातक, दसन्नक जातक, सत्तुमस्त जातक, सुमग्ग जातक, हलिदीराग जातक, सुलसा जातक, और कच्चानी जातक इत्यादि भी भिन्न- भिन्न परिस्थितियों एवं दशाओं में स्त्रियों की निंदा ओं और दुर्गुणों की ही उद्घाटन करते हैं। अतः जातक कथाएँ स्त्री बहिष्कार का सशक्त अनुमोदन करती हैं ।

मृत्यु अवश्यम्भावी है और किसी स्वजन की मृत्यु पर शोक करने वाला अज्ञानी एवं मूर्ख होता है। बुद्ध का प्रधान ध्येय संसार की अनित्यता प्रदर्शित करना था, उनका कथन था कि ब्रह्माण्ड से एक सतत प्रवाह के समान है जो निरस्त या निर्जीव है। केवल धम्म ही स्थाई है। संसार में आत्मनु, पुद्गल, सत्व अथवा जीव कुछ भी स्थायी नहीं है । बुद्ध ने संसार के निरतर प्रवाह की तुलना अग्नि से की और इसे प्रतिक्षण परिवर्तनीय माना । जो कुछ भी उत्पन्न हुआ है वह नष्ट भी अवश्य होगा । अन्तर केवल अन्तराल का है। कुछ पदार्थ क्षणिक ही स्थित रहते हैं और कुछ कई वर्ष । संसार के लिए स्थिर अथवा अचल शब्द नहीं प्रयुक्त

हो सकता । जो जन्म लेता है उसके लिए मृत्यु का न होना असम्भव है ।[1]

संसार निरन्तर परिवर्तित होने वाली घटनाओं का ही क्रम हैं जो एक के बाद एक प्रतिक्षण इतनी शीघ्रतापूर्वक बदलती है कि ऐसा प्रतीत होता है जैसे संसार की सत्ता स्थाई है । सत्ता का होना ही परिवर्तन है। सभी पदार्थ जो उत्पन्न हुए हैं, उत्पाद, स्थिति जरा और निरोध नामक परिस्थितियों से गुजरते हैं। धम्मपद में भी कहा गया है कि आकाश में, समुद्र - तल में गहन कन्दराओं में अथवा कोई भी अन्य स्थान संसार में ऐसा नहीं है जहाँ मनुष्य मृत्यु से बच कर सके । बड़े- बड़े योद्धा और महान से महान कलाकृतियां भी एक दिन नष्ट हो जाती है । हमारे स्वप्न एवं आशाएं, भय एवं इच्छाएं इस प्रकार विस्मृत हो जाते हैं जैसे कभी उनका अस्तित्व ही न रहा हो । मृत्यु की सार्वभौम सत्ता का निषेध नही कर सकता । मृत्यु जीवन का नियम है । इस विनाश के कारण दुःख होता है जो अधिकांश लोगों को अत्यन्त निराश कर देता है। किन्तु बुद्ध संसार की अनित्यता को देखकर भी जीवन की निरर्थकता का ही प्रचार नही करते, बल्कि वे एक ऐसे मार्ग का उपदेश देते हैं जिसमें बुराइयों से प्रति विद्रोह एवं सद्गुणों से युक्त जीवन- प्राप्ति का सन्देह निहित हैं जिससे

"अर्हत" अव्यवस्था प्राप्त की जा सके और पुनर्जन्म के बन्धन से मुक्ति प्राप्त हो सके। इसीलिए मृत्यु होने पर शोक करना बिल्कुल व्यर्थ है । यह शिक्षा अनेक जातकों में दी गई है। जिसमें कुछ प्रमुख है - अस्सक जातक, महापिंगल जातक, मातरोदन जातक अननुसोचीय जातक, सुजात जातक, उरग जातक, मिगपोतक जातक तुन्दिल जातक, सोमदत्त जातक इत्यादि ।

मित्र लाभ से सम्बन्धित कथायें भी जातकों में अन्तर्भूत हैं । इनमें यह भी बताया गया है कि मित्रता कैसे व्यक्ति से करनी चाहिए। अभिज्ज जातक में एक हाथी और कुत्ते की मित्रता का वर्णन है। लोसक जातक में बताया गया है कि जो व्यक्ति मित्रों के सदुपदेशों का पालन नही करता है वह किसी न किसी विपत्ति में अवश्य फंसता है । कालकन्नी जातक और कुसनाली जातक में वर्णित है कि मित्रता धनवान या कुलीन देखकर नहीं की जानी चाहिए बल्कि समय पर सहायता करने वाला ही मित्र कहलाता है। समय पड़ने पर घास का कीड़ा भी काम आ सकता है । गुन जातक में यही कथन है कि मित्रता छोटे या बड़े को देखकर नही की जाती । जैसे शृगाल ने सिंह की प्राणरक्षा की वैसे ही विपत्ति से विमुक्त करने वाला ही वास्तविक मित्र हो सकता है।

मित्रता प्रायः समान स्वभाव और चरित्रवाले व्यक्तियों में ही होती है । जैसा कि सुहनु- जातक दो ऐसे अश्वों का निरूपण करता है जो अन्य लोगों के लिए क्रूर, उदारता एवं प्रेम से बर्बर और दुष्ट थे परन्तु जब परस्पर मिलते थे तो उनका व्यवहार, नम्रता, उदारता, प्रेम से परिपूर्ण होता था। नकुल जातक में कहा गया है कि शत्रु से सदैव घृणा नही करनी चाहिए और मित्र से सदैव विश्वास नही करना चाहिए क्योंकि भयहीन वस्तुओं से उत्पन्न भय घातक होता है । मणिकण्ठ जातक याचना की निन्दा करते हुए बताता है कि उससे मित्रता समाप्त हो जाती है। मित्तामित्त जातक में भगवान बुद्ध मित्र और अमित्र का भेद बताते हैं । कुरुंग मिग- जातक अच्छे मित्रों और शत्रु का समुचित ज्ञान न होने से पश्चाताप होता है । अतः मित्र एवं शत्रु का भेद जानकर ही मित्रता करनी चाहिए, यही इन कथाओं का उद्देश्य है ।

भगवान बुद्ध ने किसी मौलिक धर्म का प्रचार नही किया गया। वस्तुतः उनका विरोध उन अंधविश्वासों एवं कर्मकाण्डों से था जिनसे मानव का नैतिकपतन हो रहा था। इसीलिए वेदों के नियमों का पूर्णतः बहिष्कार न करके उन्होने उस भाग का घोर विरोध किया जो पशु-बलि का समर्थन करता था । उनका कथन था कि हत्या करना घोर पाप है चाहे वह पशु हो अथवा मनुष्य । इसी कारण

अनेक कथाएं बलिदान के विरोध में भी लिखी गई है। मठकभत्त जातक तथा आयाचितभत्त जातक में बोधिसत्व बलि का निषेध करते हैं चाहे वह किसी भी उद्देश्य के लिए हो । गौतम बुद्ध ने बलि का ही निषेध नही किया अपितु वे कीड़े-मकोड़ों तक को मारना पाप समझते थे । कुलावक जातक में दो ऐसे ब्राह्मणों की कथा है जिनमें एक पानी छान कर पीता था और दूसरा छाने बिना। दूसरे व्यक्ति को उपदेश देने के लिए बुद्ध ने कथा सुनाई जिसमें देवताओं में भी हत्या, का अपराध नहीं किया फिर भला मानव उस जल को कैसे पी सकता है जिसमें असंख्य जीव हों । इसी प्रकार की एक थी आर्यसंघ नामक कैसे पी सकता है जिसमें असंख्य भिक्षु के विषय में है । उसने एक दूसरे कुत्ते को लोगों पर भौंकते और गुर्राते देखा जिसका निचला भाग रोग- कृमियों द्वारा क्षत हो चुका था। उसने सोचा कि यदि मैंने इसकी सुरक्षा नही की तो यह मर जायेगा और यदि मैं इसके कीड़ों को निकाल कर फेंक दूं तो वे मर जायेंगे । अतः उसने अपने शरीर का कुछ मांस काटकर कीड़ों को उनमें रख लिया और इस प्रकार दोनो की प्राणरक्षा की । दुम्मेघ जातक में एक ऐसे नृप का वर्णन है जिसने बलिदान रोकने के लिए मनुष्यों की आहुति देने की प्रतिज्ञा की और फलतः पशु-बलि स्वयं ही बन्द कर दी गई । नणगुट्ठ जातक

में एक अग्नि पूजक की कहानी है । उसने एक गाय अग्नि में बलि देने के लिए तैयार की और स्वयं नमक लेने गाँव चला गया जब वह लौटकर आया तो उसने देखा कि डाकुओं ने उसे गाय को मार कर सारा मांस तो खा लिया है और केवल पूछ एवं सींग छोड़ दी है। यह देखकर उस ब्राह्मण ने सोचा कि जो अग्नि स्वयं अपनी बलि की रक्षा नही कर सका वह मेरी रक्षा क्या करेगा।

यह सोचकर उसने अग्नि बुझा दी और भिक्षु बन गया । सन्थव जातक भी ऐक ऐसे ब्राह्मण की कथा है जिसने अग्नि में आहुतियों के प्राचुर्य से अपने घर में आग लगा दी । लोहकुम्भी जातक अम्रकूट जातक तथा लोमकस्सप जातक इत्यादि भी बलि-निषेध की शिक्षा ही प्रेषित करते हैं ।

इसी प्रकार बुद्ध विभिन्न शुभ एवं अशुभ लक्षणों तथा अंध-विश्वासों का भी विरोध करते थे । इनसे सम्बन्धित जातक है— मक्खन जातक, मंगल जातक, कुहक जातक, ोमइम्स जातक, कल्यान जातक, तथा कुल्लकालिंग जातक । इन कथाओं ें उपदिष्ट हैं कि धार्मिक पुरोहितों द्वारा निर्दिष्ट मुहूर्तों एवं नक्षत्रों का विश्वास करके यदि किसी शुभ कार्य को रोक दिया जाए उससे हानि ही होती है लाभ नही अतः कल्याणकर कार्य करने में समय का कोई बन्धन नही है ।

ऐसे समय में जबकि हिंसक एवं क्रूरतापूर्ण बलि- प्रथा समाप्त नही हुई थी, समस्त प्राणि वर्ग के प्रति दया एवं सहानुभूति की शिक्षा देने वाले धर्म का बहुत प्रभाव पड़ता । धार्मिक प्रथाओं के प्रति विरोध ने उनके आदर्शों को अधिक प्रभावशाली बनाया। बुद्ध के कुछ अन्य उपदेश भी हैं जो उनकी महानता को द्योतित करते हैं । - इस संसार में ईष्यद्विष की समाप्ति ईर्ष्या से नहीं अपितु प्रेम द्वारा सम्भव हैं । विजय से वैमनस्य बढ़ता है, क्योंकि पराजित दुखी होता है, "युद्धभूमि में§ व्यक्ति सहस्त्रों को जीत सकता है किन्तु जो अपने ऊपर विषय प्राप्त कर लेता है वही सबसे बड़ा विजेता है, जन्म से नही अपितु कर्म से ही व्यक्ति नीच या ब्राहमण होता है, क्रोध पर विनय से एवं बुराई पर अच्छाई पर विजय प्राप्त करों । वस्तुतः सदाचार का उच्च आदर्श ही बौद्ध धारा को एक धर्म के रूप में प्रतिष्ठित करने में सहायक सिद्ध हुआ ।

मनुष्य के लिए जितने भी गुणों की आवश्यकता है उन सब का वर्णन इन जातकों में किसी न किसी रूप में हुआ है तथा दुर्गुणों से होने वाली हानियों को भी वर्णित किया गया है । प्रत्येक जातक कथा किसी न किसी उपदेश अथवा शिक्षा का प्रतिपादन करती है। अतः जातक कथाओं के सृजन का मुख्य ध्येय

एक ऐसे माध्यम द्वारा जनसामान्य को बौद्ध विचारधारा से परिचित कराना था जो सुगम और साध्य हो । इसमें सन्देह नहीं कि ये कहानियां अत्यन्त प्रभावशाली सिद्ध हुई औरअनेक लोग बौद्धधर्म के प्रति आस्थावान हो गये । प्राचीन समय में न केवल भारत में अपितु विदेशों में भी इनका बड़ा प्रभाव था ।

-------x-------

षष्ठ - अध्याय

संस्कृत साहित्य में लोक कथाओं एवं

नीति कथाओं का अध्ययन

षष्ठ - अध्याय

संस्कृत साहित्य में लोक कथाओं एवं नीति कथाओं का अध्ययन

लोक कथाएं :-

लोककथाओं का उद्देश्य मुख्यतः मनोरंजन होता है तथा उनके पात्र मनुष्य आदि होते हैं । लोक कथा में एक रूप में गुणाढ्य- विरचित वृहत्कथा सर्वश्रेष्ठ है किन्तु इस ग्रन्थ के सम्प्रति उपलब्ध न होने के कारण भारतीय साहित्य की अत्यन्त क्षति हुई महाभारत और रामायण की भांति यह ग्रन्थ भारतीय साहित्य कला के बड़े भण्डारों में से एक था ।

वर्तमान समय में वृहत्कथा के दो संस्करण उपलब्ध होते हैं- प्रथम- काश्मीरी, और दूसरा नेपाली । इनमें क्षेमेन्द्र कृत" वृहत्कथामंजरी तथा सोमदेव कृत तथा सरित्सागर, काश्मीरी संस्करण है । तथा बुधस्वामी कृत " वृहत्कथाश्लोकसंग्रह" नेपाली संस्करण है । कपिलदेव द्विवेदी आचार्य ने इसी तथ्व की पुष्टि की है ।[1]

---

1. वृहत्कथां समाश्रित्य बुद्धस्वामिकृतः प्रियः ।
   वृहत्कथायाः श्लोकानां संग्रहों राजते शुभः ।।

"कथा सरित्सागर" को वृहत्कथा के विकास की अन्तिम कड़ी माना जाता है । वृहत्कथा की काश्मीरी वाचना होते हुए भी सोमदेव की प्रतिभाशालिनी लेखनी ने उसमें यथेष्ट परिवर्तन किये हैं । फिर भी सोमदेव का ग्रन्थ अन्य सभी की अपेक्षा सर्वोत्कृष्ट माना गया है। स्वयं सोमदेव भी ग्रन्थारम्भ में यह सूचित करते हैं कि उनका ग्रन्थ वृहतकथा के बाहर का संग्रह हैं ।[1] तथा ग्रन्थ के अन्त में भी प्रशस्तिस्वरूप इसे अनेक कथाओं के अमृत की खान " वृहत्कथा" नामक ग्रन्थ का सार बताते हैं ।[2]

वृहत्कथा की भाषा पैशची मानी गई हैं तथा इसका रचनाकाल सातवाहन राजाओं के समय में प्रथम-द्वितीय शती के लगभग माना जाता है। आन्ध्रसातवानहन युग में स्थल-जल-मार्गों पर अनेक सार्थकवाह, पोताधिपति एवं सायंत्रिक व्यापारी रात-दिन चहल-पहल रहते थे । टकटक करते तारों से भारी हुई लम्बी

---

1. वृहत्कथाया: सारस्य संग्रह रचयाम्यहम् §प्रथम तरंग, श्लोक3§

2. नानाकथामृतमयस्य वृहत्कथाया: सारस्य सज्जनमनोम्बुधिपूर्णचन्द्रः सोमेन विप्रवरभूरिगुणाभिरामरामात्यजेन सविहितः खलु संग्रहोऽयम् ।।

रातों में उनेक मनोविनोद के लिए अनेक कहानियों की रचना स्वाभाविक थी, जिनमें उन्हीं के देशान्तर भ्रमण से उत्पन्न अनुभवों का अमृत निचोड़ा जाता था ।..... उन्हीं उधमी सार्थों और नाविकों के अनुभवों की बहुमुखी सामग्री को गुणाढ्य ने अपनी विलक्षण प्रतिभा से बृहत्कथा के साँचे में डाल दिया था ।[1] सोमदेव ने इसी बृहत्कथा के आधार पर अपनी प्रतिभ का विलक्षण प्रदर्शन करते हुए कतिपय परिवर्तनों से समन्वित " कथासरित्सागर की रचना की जो बृहत्कथा के विकास की अन्तिम कड़ी मानी जाती है ।

पूर्ववर्ती कवियों का अनुकरण करते हुए सोमदेव सबसे आगे बढ़ गये हैं, क्योंकि उनका उद्देश्य पाण्डित्य प्रदर्शन न होकर कथा को सरल बनाकर स्मृति पटल पर अंकित कर देना था ।[2] कथासरित्सागर जैसे विशाल ग्रन्थ का प्रणयन पण्डित सोमदेव ने त्रिगर्त या कुल्लू कांगड़ा के राजा की पुत्री, काश्मीरी के महाराज अनन्त की रानी सूर्यमती, जो जलन्धर की राजकुमारी तथा कलश की माता थीं ।

---

1. कथासरित्सागर § प्रथम खण्ड§ पृ0 5

2. वही , 1/10-12

इस ग्रन्थ में 21,388 पद्य हैं तथा जिनका विभाग 124 तरंगों में हुआ है । लम्बकों में भी इनका एक विभाजन है जिनकी संख्या 18 है ग्रन्थ के नाम की सार्थकता उसकी विशालता में ही निहित हैं । सोमदेव ने यथार्थ ही उसे " कथारूपी नदियों का सागर कहा है । जिस प्रकार सागर में अनेक छोटी-बड़ी सरिताओं की धाराएं मिलती है और सागर ही उसे मार्यादा की सीमा में बांधे रखता है, उसी प्रकार सोमदेव के इस विशाल ग्रन्थ में अनेक छोटी-बड़ी कथाएं तरंगों के रूप में प्रवाहमान दृष्टिगत होती है । ग्रन्थ में कुल 18 लम्बक है जिनके नाम हैं - कथापीठ, कथामुख, लावाणक, नरवाहनदत्त-जनन, चतुर्दारिका, मदनमंचुका, रत्नप्रभा, सूर्यप्रभा अलंकारवती, शक्तियशा, बेला, शशांकवती, मदिरावती, महाभिषेवती, पंच, सुरतमंजरी, पदमावती, तथा विषमशील लम्बक[1] इस ग्रन्थ होमर के विकशाल इलियड और ओडिसी नामक ग्रन्थो में संयुक्त परिमाण का दुगुना है ।[2]

कथा सारित्सागर का महत्व उसकी विशालता अथवा शिल्प विधि के कारण नही है । इसकी प्रसिद्धता अमरत्व की आधार -

---

1. वही, अध्याय 1, श्लोक- 4-9
2. टानी, दी ओसन आफ स्टोरी, जि0 1, पृ0 3।

शिला विशाल संस्कृत वांग्मय में कहानियों को रूचिकर एवं आकर्षक ढंग से प्रस्तुत करने की विलक्षण रीति हैं । कीथ का भी अभिमत है कि कथा सरित्सागर के उत्कर्ष का आधार उसकी घटना पर नहीं है उसका आधार इस ठोस वस्तुस्थिति पर है कि सोमदेव ने सरल और अकृत्रिम होते हुए भी आकर्षक और सुन्दर रूप में ऐसी कथाओं की एक बड़ी भारी संख्या को प्रस्तुत किया है जो कि निरन्तर विभिन्न रूपों में मनोविनोदी अथवा भयानक अथवा प्रेम संबन्धी अथवा समुद्र और स्थल के उद्‌भुत दृश्यों के प्रति हमारे अनुराग के लिए आकर्षक , बाल्यकाल से परिचित कहानियों के सादृश्यों को देने वाले रूपों में हमारे लिए रूचिकर हैं।..... सोमदेव में हम देखते हैं कि सावधानता से अभीष्ट अर्थ का पूरा प्रकाशन पाठक को श्रान्त किये बिना, किया जा सकता है ।[1] इसी कारण कथा सरित्सागर की कथाएं मनोरंजन करने के साथ-साथ किसी 6 न किसी विशिष्ठ उद्देश्य का सम्प्रेषण करती है ।

अत: सोमदेव ने असंख्य कहानियों को चाहे वे हास्य-प्रधान हो , प्रेम संबन्धी हो, श्रृंगारिक अथवा मूर्खों से सम्बन्धित हो,

---

1. सिद्धेश्वर प्रसाद , कथा सरित्सागर एण्ड इण्डियन कल्चर, पृ0 73.

एक सुनियोजित मंजूषा कथासरित्सागर में बड़ें करीने से सजाकर रखा है.। भारत की प्राचीन कथाओं का यह महाग्रन्थ है ।[1]

सोदेव ने कथासरित्सागर की कथा की उत्पत्ति के संबंध में लिखा है- " एक बार शिव ने पार्वती से सात विद्याधर - चक्रवर्तियों की आश्चर्यमयी कथाओं का वर्णन किया यद्यपि शिव की वार्ता पूर्णतः एकान्त में हुई थी, किन्तु उनके अनुचर पुष्पदन्त ने गुप्तरीति से वे कहानियां सुन ली और अपनी पत्नी जया को भी सुना दी । जया ने भी अपनी सखियों से उन कथाओं को कहा जब यह बात पार्वती जी को ज्ञात हुई तो उन्होंने क्रोधवश पुष्पदन्त को मर्त्यलोक में जन्म लेने का शाप दिया । पुष्पदन्त के भाई माल्यवान ने उसकी ओर से क्षमा याचना की तो उसे भी ही शाप मिला, पुष्पदन्त की पत्नी जया पार्वती की परिचारिका थी उसे दुखी देखकर पार्वती जी ने करुणावश अपने शाप का परि- हार्य करते हुए कहा कि " पुष्पदन्त का विन्ध्यपर्वत पर काणभूति नामक एक पिशाच से मिलन होगा उसे अपेन पूर्व जन्मों की स्मृति बनी रहेगी और जब वह काणभूत को यह कथाएं सुनायेगा तब उसकी शाप मुक्ति होगी । माल्यवान, भी जब काण्भूति से इन बृहत्क- थाओं को सुनकर लोग में इनका प्रचार कर चुकेगा , तब वह पुनः स्वर्ग में लौट जायेगा । इस विधान के अनुरूप पुष्पदन्द ने कौ- शाम्बी में बररूचि कात्यायन के रूपमें जन्म लिया और वह महान-

तथा नन्दबन्श के अन्ति राजायोगानन्द का मंत्री हुआ अन्त में वह अरण्यवासी हो गया और विध्याचल की विन्ध्यवाशिनी देवी की यात्रा में काणभूति से उसकी भेंट हुई तब उसे अपने पूर्वजन्म की स्मृति हुई और उसने काणभूति को वे सात वृहत्कथाएं सुनाई तदन्तर वह शाप मुक्त होकर स्वर्ग चला गया । उसके भाई माल्यवान ने भी मृत्य लोक में प्रतिष्ठान पुरी में गुणाड्य के रूप में जन्म लिया और वह वहाँ के राजा सातवाहन का मंत्री बना । गुणदेव और नन्दिदेव उसके दो शिष्य थे उन्हें लेकर वह प्राणभूति के समीप आया वहाँ काणभूति से उसे पिशाच भाषा मे सात - वृहत्कथाए प्राप्त हुई और उसने प्रत्येक को एक एक लाख श्लोकों में अपने रक्त से लिखा। अपने शिष्यों की सलाह से उसने उन्हें राजा सातवहन के पास इस विचार से भेजा कि राजा उनकी रक्षा करेगा किन्तु पिशाचों की भाषा में लिखी हुई कहानियों को राजा ने पसन्द नही किया इस समाचार से गुणाड्य को बहुत दुख हुआ और उसने अपनी छः कथाएं जलाडाली अपने शिष्यों को अनुरोध मानकर केवल सातवी कहानी बची रहनी दी ।

कथा को सुनकर जंगल के जीवमी मोहित हो गये जब राजा सातवाहन को यह ज्ञात हुआ तो उसे पाश्चाताप हुआ और उसने गुणाड्य के समीप जाकर अवशिष्ट कथा भाग को उससे ले लिया ।

उसने गुण्देव और नन्दिदेव की सहायता से उसका अध्ययन किया और कथा की उत्पत्ति का वर्णन करने वाला एक अंश स्वयं उसने जोड़ा[1] नेपाल महात्म्य ने इसी कहानी का रूप थोड़ भिन्न है।

नरवाहनदत्त कथा सरित्सागर मूल नायक की भांति एक के बाद एक विभिन्न सुन्दर युवतियों के हृदयों पर विजय प्राप्त करता जाता ।[2] विभिन्न कष्ट सहते हुए या तो उसका प्रेयसी से पुनर्मिलन होता अथवा किसी नयी प्रेयसी क. प्राप्ति होती । f इस प्रक्रिया में वह 26 पत्नियां एकत्र कर लेता उन सब में श्रेष्ठ और प्रमुख नायिका मदनमंचुका है । "साहसिक कार्य एवं एक महा काव्य का निर्माण करते हैं f.से प्रेमालाप , परीकथा और सम्पत्ति और स्त्री विजित करने का प्रचुर सम्मिश्रण है । तथा जो राज-कुमार के विद्याधरों के सम्राट बन जाने के साथ समाप्त होता है। इस मूल कथा के साथ अनेक उपकथाएं भी सम्मिलित हैं । जो किसी नीति या शिक्षा को प्रेषित करने के लिए उदाहरण स्वरूप मानी गई हैं ।, किन्तु कथाएं ग्रन्थ के कलेवर को विस्तृत करने के साथ

---

1. कृष्णमाचार्य, संस्कृत साहित्य का इतिहास पृ0 414-415

2. विन्टरनित्स, हिस्ट्री आफ इण्डियन लिटरेचर, पृ0 355

इसकी रोचकता को भी द्विगुणित करती है ।

कथाओं का सम्बन्ध प्रायः सभी विषयों से है, किन्तु उन सब का उद्देश्य एक ही है । पंचतंत्र की बहुत सी कहानियां इस ग्रन्थ में प्राप्त होती है, पंचतंत्र के हिरण्यक चूहे, लघुपतन, कौवे चित्रग्रीव, कबूतर और मन्थरक कछुए की कहानी भी दसवें लंबक में है जिसे सोमदेव ने प्रज्ञानिष्ठ या व्यवहारिक बुद्धिमानी की कहानी कहा है। दसमं लम्बक में प्रस्तुत पंचतंत्र की इन कथाओं द्वार किसी शिक्षा या नीति का सम्प्रेषण भी प्रमुख ध्येय है । जैसे संजीवक बैल और पिंगलक सिंह की कथा ।[1] द्वारा यह शिक्षा दी गई है कि संतुलित बुद्धि वाला व्यक्ति , विपत्तियों से कभी बाधित नही होता, पशुओं की भी बुद्धि ही कल्याणकारी होती है, पराक्रम नहीं ।[2] कीलोत्पाटी वानर की कथा, नगाड़ा और

---

1. पंचतंत्र के " मित्रभेद" नामक प्रथ तंत्र की कथा, जिसका प्रारंभ इस श्लोक में किया गया है-

   वर्धमानों, महान स्नेहः, सिंहगोवृषयोर्वने ।
   पिशुनेनातिलुब्धेन जम्बुकेन विनाशितः ।।

यही कथा बगदाद के शाह हारू रशीद के समय, कलीला दिननाके नाम से अरबी में अनुदित हुई है ।

2. कृतप्रज्ञश्च विपदादेव जातु न बाध्यते ।-----पराक्रमः ।।

सियार की कथा , बगुला और केकड़े की कथा, सिंह और शशा की कथा आदि कथाओं द्वारा भी यही शिक्षा दी गई है बुद्धि ही वास्तविक बल है । बुद्धिहीन व्यक्ति के पास बल हो तो भी व्यर्थ है । बुद्धिहीन सदा विनाश तथा अधोगति ही प्राप्ति करते हैं जैसे- कछुए और हंस की कथा- कथा में कछुए की मृत्यु बुद्धिहीनता के कारण हुए तथा तीन मत्स्यों की कथा द्वारा भी यही उपदिष्ट है कि विपत्ति के समय बुद्धि ही कल्याणकारी होती है ।

विद्वान व्यक्ति यदि स्वयं कोई अपराध नहीं करता तो भी दुष्ट के संसर्ग में उसमें भी दोष उत्पन्न हो ही जाते हैं । इस प्रसंग में " मन्दविसर्पिणी जूँ और खटमल की कथा दृष्टव्य है । धैर्येण साध्यते सर्व" के प्रसंग में टिटिभ दम्पत्य की कथा द्वारा यह सूचित किया गया है कि जो बुद्धिमान आपत्ति के समय धैर्य न छोड़ कर दृढ़ रहता है उसे ही सफलता प्राप्त होती है ।

सूचीमुख पक्षी और वानर की कथा में सूचीमुख ने वानर को उपदेश देकर अपने ही प्राण गवायें । अतः न मानने वाले से हित-कारी वचन नहीं कहना चाहिए । इसी भांति दुष्टबुद्धि से सम्पन्न कार्य का फल भी अशुभ ही होता है जैसे- धर्म बुद्धि और दुष्ट बुद्धि वैश्यों की कथा द्वारा यह प्रदर्शित किया गया है कि दोनों ने धर्म बुद्धि ही श्रेष्ठ था । इसलिए न्याय बुद्धि से कार्य करना ही

श्रेयष्कर है 2 जैसा कि बगुले ने सर्प से किया ।[1] बुद्धिमान व्यक्ति उपाय से अपना काम बनाते हैं ।[2] बुद्धिमता से सम्बन्धित अन्य कहानियों में कौआ, कछुआ, मृग, और चूहे की कथा [3], चतुर्दन्त नामक हाथी और खरगोश की कथा, मगर और वानर की कथा, कान और हृदय से हीन गधे की कथा, चूहे से धनी बने सेठ की कथा, [4] सिकता-सेतु की कथा,[5] विरूपशर्मा ब्राह्मण की कथा [6] राजा कुलधर के सेवक की कथा, [7] राजा भद्रबाहु की कथा[8] तथा निपुण वेश की कथा[9] आदि प्रमुख है ।

---

1. सांप और बगुले की कथा दशम लम्बक, चतुर्थ तरंग
2. "इत्युपायेन घटयन्त्यभीष्टं बुद्धिशालिनः,

   लौहतुलावैश्यपुत्रयोः कथा, कथासरित, दशम लम्बक चतुर्थ तरंग,
3. पंचतंत्र के " मित्रलाभ" प्रकरण की प्रथम कथा
4. प्रथम लम्बक, षष्ठ तंरग
5. सप्त लम्बक, षष्ठ तंरग,
6. वही वही
7. दसम लम्बक, चतुर्थ तरंग
8. द्वादश लम्बक द्वितीय तरंग
9. तृतीय लम्बक, प्रथम तरंग

मूर्खों से सम्बन्धित कथाओं में " अगर जलाने वाले वैश्य की कथा" तिल बोने वाले मूर्ख मूषक की कथा, पानी में आग फेंकने वाले की कथा, नासिकारोपण की कथा, मूर्ख पशुपाल की कथा, अलंकार लम्बक की गी कथा, मूर्ख रुई वाले की कथा, खजूर काटने वाले की कथा, मूर्ख मंत्री की कथा, नमक खाने वाले की कथा, गाय दुहने वाले को कथा, मूर्ख गंजे की कथा, केशमूर्ख की कथा, तैल-मूर्ख की कथा, अस्थिमूर्ख को कथा, मूर्खचाण्डाल कन्या की कथा, कृपण राजा की कथा, दो मित्रों की कथा, जल भत मूख की कथा, पुत्रघाटी मूर्ख की कथा, भ्रातृमूर्ख की कथा । ब्रहमचारी पुत्र की कथा, मूर्ख ज्योतिषी की कथा, क्रोधी मूर्ख की कथा, मूर्ख राजा की कथा, मूर्ख कृपण की कथा, समुद्र की लहरों में निशाल लगाने वाले की कथा एक को मारकर दूसरा पुत्र चाहने वाली स्त्री की कथा, मूर्ख सेवक की कथा, मूर्ख योद्धा की कथा, कुछ न मांगने वाले मूर्ख की कथा, रथकार और उसकी भार्या की कथा, सुवर्णमुग्ध की कथा, मूर्ख सेवकों की कथा महिषी मुग्ध की कथा, मूर्ख-शिष्यों की कथा, चावल खाने वाले मूर्ख की कथा, घट और कपर नामक चोरो की कथा, मूर्ख टक्ट को कथा, इत्यादि अनेक कथाएं हैं जो मूर्खों का उपहास करके बुद्ध की श्रेष्ठता प्रतिपादित करती है ।

सोमदेव की प्रमुख विशेषता यह है कि उनकी कहानियाँ छोटी-2 होती हैं किन्तु उनके द्वारा अभीष्ट अर्थ की पूर्ति सहज ही हो जाती है । कथा के सम्पुष्ट को यथाशक्ति न्यून रखते हुए भी सरसता कम नही होने पाती । यथा- किसी धनी सेठ का एक मूर्ख सेवक था जो शरीर में मालिस करना नही जानता था किन्तु जानता हूँ इस अभिमान से बलपूर्वक मालिस करते हुए उसने स्वामी के शरीर की चमड़ी उधेड़ दी तब स्वामी ने उसे निकाल दिया ।

मालव देश में दो ब्राहमणबन्धु रहते थे उनके पैत्रिक धन का बंटवारा नही हुआ जब वे बंटवारा करने लगे तब आपस में कमऔर अधिक भाग का झगड़ा खड़ा हो गया उन्होंने एक वेदपाठी ब्राह-मण को निर्णायक माना । उसने कहा -" तुम दोनो प्रत्येक वस्तु को दो भागों में बराबर बांटों इससे तुम दोनो में कम और अधिक का झगड़ा न होगा । मध्यस्थ की आज्ञा से उन दोनो ने मकान, खाट, वर्तन, पशु आदि सब के दो- दो बराबर हिस्से कर के बांट लिए अब उनके पिता की एक दासी रह गई । उसको भी काट कर उन दोनो ने दो टुकड़े कर डाले । इस हत्या के अपराध में, राजा ने उन दोनो का , सब माल हरण करके उन्हें सजा दे दी [1] । अतः मूर्ख व्यक्ति अपनी हानि स्वयं ही करते हैं ।

1. वहीं, श्लोक 172-176

एक मूर्ख रूई बेचने बाजार में गया पर साफ न होने से उसे किसी ने नहीं लिया तब उसने देखा कि एक सुनार सोने को आग में तपाकर शुद्ध कर रहा है यह देखकर उसने अपनी रूई को साफ करने के लिए आग में डाल दिया इससे सब लोग उस उल्लू पर हंसने लगे । ऐसी ही एक हास्यरस से परिपूर्ण छोटी-बड़ी कहानियाँ सम्पूर्ण ग्रन्थ में बिखरी हुई हैं ।

सोमदेव ने अपने ग्रन्थ में किसी एक विशिष्ट वर्ग के व्यक्ति का चित्रण न करके समाज के प्रत्येक क्षेत्र से विभिन्न सुझाव वाले व्यक्तियों को अपना विषय बनाया है इसीलिए जहाँ एक ओर इसमें हम चोर, जुवारी, धूर्त, ठग, वेश्यागामी, कपटवेशी, तथा ढोंगी साधुओं से सम्बन्धि कथाओं को देखते हैं वहाँ दूसरी ओर उदार, दानी, धर्मात्मा, पराक्रमी, वीर और विभिन्न सद्गुणों से संबन्धित व्यक्तियो की कथाओं का भी अवलोकन करते हैं ।

स्त्री- चरित्र की कहानियां " कथा सरित्सागर में प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होती है । इस दृष्टि से सोमदेव ने स्त्री स्वभाव के विश्लेषण में विशेष रूचि लेते हुए उनके गुण और दोष दोनो पक्षों का चित्रण करने का प्रयत्न किया है । फिर भी स्त्रीयों के सम्बन्ध में सोमदेव का दृष्टिकोण अधिक उदार नही है यही कारण

है कि स्त्रियों से सम्बन्धित अधिकांश कथाएं उनके दुष्चरित्र तथा निम्न आचरण से सम्बन्धि त है गयारहवी शती का कश्मीरी - स्त्रियों के विषय में कुछ अधिक सम्मान सूचक भाव से प्रभावित नही था । चरित्र सम्बन्धी हीनता और अमर्यादित उच्छृंखलता प्राय: स्त्री चरित्र के ऐसे पक्ष को साम्य रखती है जो किसी प्रकार भव्य नही कहा जा सकता ।[1] दुष्चरित्र पत्नियों से सम्बन्धित ऐसी अनेक कथाएं हैं, यथा- देवदास वैश्य की कथा,[2] सिंह विक्रम और उसकी कलाकारिणी भार्या की कथा[3], विष्णुदत्त और उसके साथ साथियों की कथा[4] नाई और राजा की कथा[5], शत्रुघ्न औन उसकी दुष्ट स्त्री की कथा[6] आदि अनेक कथाएं स्त्री चरित्र की अगम्य और पतनकारण बताती हैं । " राजा रत्नाधिप की

---

1. वासुदेवशरण अग्रवाल, कथा सरित्सागर पृ0 24
2. तृतीय लम्बक, श्लोक 16-49
3. चतुर्थ लम्बक, श्लोक 31-51
4. षष्ठ लम्बक, श्लोक 42-89
5. षष्ट लम्बक, श्लोक 146- 191
6. सप्तम षष्ठ लम्बक श्लोक - 182-187

की कथा । एक ऐसे राजा की कथा है जिसमें अस्सी हजार राज-
कन्याओं से विवाह किया । ऐक बार देवगति से उपलब्ध राजा
का श्वेत हाथी मूर्च्छित हो गया । उसका निदान आकाशवाणी
द्वारा यह बताया गया कि यदि कोई पतिव्रता स्त्री अपने हाथ से
उस हाथी का स्पर्श करे तो वह ठीक हो जायेगा यह सुनकर राजा
ने अपनो प्रधान रानी सहित अस्सी हजार पत्नियों को बुलवाया
किन्तु किसी के स्पर्श से भी वह हाथी नही उठा । इससे यह
सिद्ध हो गया कि राजा की कोई भी रानी स च्चरित्र एवं निष्-
कलंक नही हैं। राजा अत्यन्त लज्जित हुआ ।

अन्त में उसके नगर में एक भी सदाचारिणी स्त्री नही निकली
तब दूसरे देश की शीलवाती नामक एक निर्धन पतिव्रता स्त्री के स्पर्श
से हाथी ठीक हो गया राजा ने प्रसन्न होकर उस स्त्री को प्रचुर
धन सम्मपत्ति प्रदान की । तथा उसी के समान सच्चरित्र उसकी
राजदत्ता, बहन से विवाह कर लिया । उसकी रक्षा हेतु राजा
ने उसे मनुष्यों से अगम्य एक द्वीप के मध्यस्थित महल में रखा दिया।
राजा के अतिरिक्त अन्य किसी भी पुरूष का प्रवेश वहाँ सर्वथा
वर्जित था संयोगवश एक बार कोई समुद्री व्यापारी नांव टूट
जाने से उस द्वीप पर पहुँच गया और राजदत्ता के साथ वह
दिन व्यतीत किया । समस्त वृतान्त ज्ञात कर राजा को संसार

से विरक्ति हो गई और उसने राज्य का परित्याग करके वैराग्य ग्रहण कर लिया । इससे यह सिद्ध होता है कि संसार में कहीं भी कोई स्त्री को नियंत्रण में रखकर रक्षा करने में समर्थ नही हो सकता ।

प्रायः स्त्रियाँ चंचला ही होती हैं और विश्वास के योग्य भी नही होती ।[1] इस प्रसंग में निश्चयदत्त और अनुरागपरा की कथा दी गई है ।[2] " बन्दर बनें सोमस्वामी की कथा [3] में भी यही शिक्षा दी गई है कि स्त्री और श्री § कभी स्थिर नही होती वे संध्या के समान क्षणिक राग वाली होती है नदी के समान इनका हृदय कुटिल रहता है । और नागिन की तरह से ये अविश्वसनीय और बिजली की तरह चंचल होती हैं ।[4]

गुणशर्मा ब्राह्मण की कथा [5] में तो यहाँ तक कहा गया है कि पहले झूठ को उत्पत्ति हुई और उसके उपरान्त दुष्ट - स्त्रियों की , स्त्रियों को बातों पर विश्वास करने से बड़े -बड़े

---

1. सत्यं साध्व्याः ---- अविश्वास्यस्तथा ।।2।।
   सप्तम लंबत, तृतीय तरंग ।

2. सप्तम लम्बक, तृतीय तरंग

3. वही, वही

4. वही वही श्लोक 142-143
5. अष्टम लम्बक, षष्ठ तरंग

विवेकियों का विवेक नष्ट हो जाता है ।[1] अनंगप्रभा की कथा[2] में भी निर्दिष्ट है कि विलासिनी स्त्री, संसार की स्थिति के समान अन्त में नीरस, दुखदायनी, प्रत्येक क्षण में परिवर्तनशील और अनित्य संबन्धवाली होती हैं, । गिरे हुए को डुबाती हुई और उत्कण्ठा को दिखाती हुई अथाह नदियों और स्त्रियों के चक्कर मेंं बुद्धिमान फंस जाते हैं । औन उनमें डूब जाते हैं ।

चन्द्रश्री और शीलहर वैश्य की कथा[3] एक बार उस स्त्री ने अपने गवाक्ष से शीलहर नामक ऐ क सुन्दर वैश्य पुत्र को देखा तक अपनी एक शहेली की सहायता से उसी के घर पर कामोन्मत उस स्त्री ने गुप्त रूप से उसके साथ समागम किया जब वह प्रतिदिन ऐसा करने लगी तब घर के लोगों ने और भाई बन्धों ने उसे जान लिया केवल उसका पति बलिवर्मा ही उसके दुराचरण को नहीं जान सका । कुछ दिनों के उपरान्त उस बलवर्मा को दाहज्जवर हुआ और वह धीरे -धीरे अन्तिम अवस्था को पहुँच गया उसकी उस अवस्था में भी उसकी पत्नी सहेली के घर पर उस प्रेमी के साथ जाती रही एक दिन उसके वहीं रहते हुए उसका पति मर गया यह जानकर उसकी स्त्री अपने प्रेमी शीलहर से पूँछकर तुरंत आई और पति के शोक में उसकी चिता पर उसके चरित्र को जानने वाले

1. वही, वही, श्लोक 120-12, §2§ नवम लम्बक, द्वितीय तरंग
3. दशम लम्बक द्वितीय तरंग

भाई बन्धुओं के द्वारा रोके जाने पर भी जलकर मर गई ।

दुःशील और देवदात्त की कथा [1] " बृहसार और उसकी स्त्री की कथा [2] तथा राजा सिंहबल और रानी कल्याणवती की कथा [3] में भी स्त्री हृदय की चंचलता, दुष्टता और कृतघ्नता को ओर संकेत किया गया है। ईर्ष्यालु पुरुष और उसकी दुष्टा स्त्री की कथा [4] तथा नाग और गरुण की कथा [5] में भी स्त्रियों की निन्दा की गई है। यशोधरा और लक्ष्मीधर की कथा, [6] दो ऐसी स्त्रियों की कथा है जिनमें एक व्यभिचारिणी होते हुए भी पति को अधिक प्रिय थी और दूसरी ने अपने पति धर्म व्रत तेज से पति की रक्षा की। सती स्त्री केवल एक अपने चरित्र से ही रक्षित होती हैं और दुराचारिणी स्त्री की रक्षा

---

1. दशम लम्बक, द्वितीय तरंग,
2. वही वही
3. वही वही
4. दशम लम्बक, तृतीय तरंग
5. वही, वही
6. दशम लम्बक सप्तम तरंग

करने में कोई भी समर्थ नही हो सकता । "घट और कपर नामक चोरो की कथा[1] के प्रसंग में ई ऐसी स्त्रियों का वर्णन है जिन्होने चोर, भूत और चोरी पर पुरुषों के समर्थन में भी संकोच नही किया यहाँ तक कि एक नाग के द्वारा अपने शरीर के भीतर सुरक्षित उसकी पत्नी ने बाहर निकलते ही भिन्न पुरुषों से समागम किया अतः जहाँ शरीर के भीतर रखे हुए भी स्त्री रक्षित नही हो सकती । वहाँ घर में उनकी बात ही क्या है । इन कथाओं में यह शिक्षा मिलती है कि स्त्रियों में मोह के कारण होने वाला राग किसके लिए दुखदायक नही होता । तथा सारासार का विवेक रखने वाले महापुरुषों का स्त्रियों के विराग मोक्ष के लिए होता है ।[2] विवेकहीन और निम्न चित्रवृत्त वाली स्त्रियों की चितवृत्त के समान नही जानी जा सकती है । जैसे - "बोधिसत्व के अंश से उत्पन्न बनिए की कथा,[3] में प्रदर्शित है ।

- -

1. वही अष्टम तरंग

2. वही वही

एवं मोहप्रभवोरागो न स्त्रीषु कस्य दुःखाय ।
तास्वेव विवेकभूतां भवति विरागस्तु मोक्षाय ।। 63 ।।

3. दशम लम्बक, नवम तरंग

4. वही वही

इसी प्रकार " दुष्ट स्त्री की आत्मकथा [1] ग्यारह पतियों को मारने वाली स्त्री की कथा वामदत्त का कथा शील पारिमित। का कथा, [3] तथा ब्राह्मण अग्निशर्मा की कथा[4] आदि ऐसी ही कथाएं हैं जिनमें स्त्रियों की अधिकाधिक निन्दा की गई है। इसमें सन्देह नही है कि जहाँ एक ओर स्त्रियों की भर्त्सना निन्दा की गई है वहाँ सच्चरित्र एवं पति व्रता स्त्रियों से सम्बन्धित कथाओं का सर्वथा आभाव नही है ।[5] वे ऐसी कथाओं की संख्या अपेक्षाकृत न्यून अवश्य है ।

उपकोष की कथा एक ऐसी ही स्त्री की कथा है जिसमें अपने पति की अनुपस्थिति का अनुचित लाभ उठाने को तत्पर व्यक्तियों को यथेष्ट लज्जित ही नही किया बल्कि अपने सतीत्व की रक्षा भी की है। इसीलिए कहा गया है कि चरित्र की रक्षा करने वाली स्त्रियों के चरित्र अचिन्तीय होते हैं । गुहसेन और देवस्मृता की कथा [6] ही दृष्टि से अवलोकनीय है --

---

1. वही वही
2. द्वादस लम्बक प्रथम तरंग
3. वही पंचम वही
4. अष्ठादशम लम्बक पंचम तरंग
5. प्रथम लम्बक चतुर्थ तरंग
6. द्वितीय लॅम्बक पंचम तरंग

ताम्प्रलिप्त नगर में धनदत्त नामक धनी वैश्य था ब्राह्मणों की अनुकम्पा से उसके गुहसेन नामक बालक उत्पन्न हुआ युवा होने पर देवस्मिता नामक एक वैश्यापुत्री से उसका विवाह हुआ । एक बार व्यापार के लिए कटाहद्वीप जाते समय दोनो ने शिव को प्रसन्न करके एक- एक कमल का फूल प्राप्त किया। उस कमल की विशेषता बताते हुए शिव ने उनसे कहा कि यह कभी मुरझाएगा नही किन्तु तुम दोनो में से किसी एक ने भी यदि सदाचरण का परित्याग कर दिया तो जो भ्रष्ट होका उसको सूचना स्वरूप दूसरे के हाथ का कमल मुरझा जायेगा । वह फूल लेकर गुहसेन कटाहद्वीप चला गया और उसकी पत्नी ताम्रलिप्ति में रह गई ।

एक बार चार वैश्यपुत्रों ने गुहसेन के हाथ में स्थित कमल का रहस्य जानकर उसकी पत्नी को भ्रष्ट करने का विचार किया और ताम्रलिप्ति का ओर रवाना हुए । वहाँ उन्होने योगकरण्डिका नामक एक परिव्राणिका से सहायता मांगी । उसने अपनी शिष्या सिद्धिकरी की सहायता से उनको सहयोग देना स्वीकार कर लिया । उस कुट्टनी ने धूर्ततापूर्वक देवस्मिता को वश में करके उन वैश्यापुत्रों से मिलने का समय निश्चित कर लिया । किन्तु देवस्मिता ने भी अपनी बुद्धिमता से उसके कपट व्यवहार को

पहचान लिया और अपनी दासियों से धतूरा मिश्रित मद्य और कुत्ते के लोहे के पैर बनवा डालने को कहा । सन्ध्या के समय सब चारों में से उसकी एक परिचारिका ने उसे धतूरा मिश्रित मद्य एक वैश्यपुत्र गुप्तरूप से लाया गया तो वहाँ देवस्मिता का रूप धारण किए हुए उसकी एक परिचारिका ने उसे धतूरा मिश्रित मद्य का यथेष्ट पान कराया फिर उसका मस्तक गरम किए हुए कुत्ते के पैर के चिन्ह से दाग कर तथा उसे वस्त्रहीन करके मलयुक्त एक नाले में डलवा दिया। प्रातः होश आने पर अपनी दुर्दशा देखकर वह अत्यन्त लज्जित हुआ और माथे पर पट्टी बांधकर सिर-दर्द के बहाने का करता हुआ घर पहुँचा और लज्जावश। सत्य बात न कहकर बोला कि चोरो ने मेरी यह दुर्दशा कर दी ।

देवस्मिता को शंका हुई कि कहीं वे चारों उसके पति को हानि न पहुँचाये । अतः उसने एक व्यापारी का वेष बनाया और कटाहद्वीप पहुँची, वहाँ राजा से उसने निवेदन किया कि आप अपने नगर की सारी जनता को एकत्र करें क्योंकि यहाँ मेरे चार दास भागकर आये हैं। राजाज्ञा से सारी प्रजा एकत्र हुई जिसमें देवस्मिता का पति तथा वे चारों वैश्यपुत्र भी सम्मिलित थे । सिर पर पट्टी बांधे उन चारों को पहचानकर देवस्मिता ने पकड़ लिया । जब सबने कहा कि ये तो वैश्यपुत्र हैं । तेरे

दास कैसे हुए, तब उसने उनके चिन्हित मस्तकों का प्रदर्शन करते हुए सम्पूर्ण वृत्तान्त सुना डाला । यह जानकर सबके सामने उन चारों की अत्यन्त अवमानना हुई दण्ड भी मिला । तथा देव-स्मिता के चातुर्य और साहस से प्रसन्न हो राजा ने उसे पर्याप्त धन दिया ।

इसी प्रकार, समस्त जनता से प्रसंशित वह पतिव्रता देवस्मिता धन और पति को साथ लेकर अपनी नगरी ताम्रलिप्ति को लौट आई । और फिर कभी उसे वियोग नही हुआ। अत : अच्छे कुल में उत्पन्न स्त्रियां ऐसे धीर और उदार चरित वाली होती हैं। जो अनन्य मन से पतिपरायण होती है क्योंकि पति ही सती स्त्रियों का परम देवता होता है ।

सेठ समुद्रदत्त और शक्तिमती की कथा [1] में भी शक्ति मती ने अपने परदारासक्त पति को मृत्युमुख से बचाया ।[2] था । "राज। देवदत्त और उसकी वेश्या पत्नी की कथा [3] में कहा गया है कि " अच्छे वंश में उत्पन्न मोती के समान चरित्रवती

---

1. इति स्त्रियों देवि महाकुलोद्गता विशुद्धधीरैश्चरितैस्पासते ।
सदैव भर्त्तारिमनन्यमानसा: पति: सतीनां परमं हि देवतम्।।।
द्वितीय लम्बक पंचम तरंग

2. द्वितीय लंबक पंचम तरंग, §3§3 चतुर्थ लंबक, प्रथम तरंग

और स्वच्छ हृदयवाली स्त्रियां तो हनी- गिनी ही होती है । जो संसार का भूषण होता है - " कीर्तिसेना और देवसेन की कथा[1] एक ऐसी स्त्रि का चित्रण करती है जिसने विविध कष्ट सहकर भी अपने सतीत्व की रक्षा की । इसलिए कहा गया है कि " विध के भीषण विधानों को सहन करके आपत्तिकाल में भी अपने चरित्र धन की रक्षा करने वाली सच्चरित्र स्त्रियां अपने आत्मकथा से अपने पति का कल्याण करती हैं ।

"पतिव्रता वैश्यापत्नी की कथा[2], राजा रत्नाधिप की कथा[3], राजा पुत्र शृंगभुज और रूपशिखा की कथा,[4] मानपरा और आश्लोप की कथा,[5] पतिव्रता स्त्री की की कथा[6] तथा अष्टादशम लंबक में भूतराज मूलदेव द्वारा उपवर्णित उसकी अपनी

---

1. षष्ठ लम्बक प्रथम तरंग
2. षष्ठ लम्बक अष्टम तरंग
3. सप्तम लम्बक, द्वितीय तरंग
4. सप्तम लम्बक, पंचम तरंग
5. सप्तम लम्बक, सप्तम तंरग
6. नवम लम्बक, षष्ठ तरंग

पतिव्रता स्त्री की कथा आदि स्त्रीचरित्र के उस पक्ष पर प्रकाश[1] डालती है जिससे यह सिद्ध होता है कि सभी स्त्रियां दुष्चरित्र नहीं होती और पतिव्रता स्त्री के तेज को ग्रहण करने में देवता भी असमर्थ हो जाते हैं।

कथासरित्सागर में विवाहित स्त्रियों के अतिरिक्त वेश्याओं और अन्य स्त्री कुटनी के चरित्रों का भी स्वाभाविक विश्लेषण किया गया यद्यपि वेश्याओं को दुष्चरित्र ही माना जाता है किन्तु कभी- कभी वेश्याओ का चरित्र भी अत्यन्त सशक्त होता है। प्रस्तुत ग्रन्थ में इनके चरित्र को प्रकाशित करने वाली दोनो प्रकार की कथाएं समाविष्ट हैं। जैसे लोहवंश की कथा[1] में एक कुटनी और उसकी वेश्या पुत्री रूपणिका की कथा है। दोनो स्त्रियों ने अपने स्वभाव के अनुरूप फल प्राप्त किया राजा देवदत्त और उसकी वेश्या पत्नी की कथा[2] द्वारा यह सूचित किया गया है कि साहस करने में स्त्रियों का जो हृदय वज्र के समान कठिन होता है वही आकस्मिक व्याकुलता होने पर पुष्प से भी कोमल

---

1. द्वितीय लम्बक, षष्ट तरंग

2. चतुर्थ लम्बक, षष्ट तरंग

हो जाता है "राजा विक्रमादित्य और मदन माला वेश्या की कथा[1] के प्रसंग में कहा गया है कि स्त्रियां अधिकांशतः अवश्य ही चंचल होती है- यह कोई निश्चित बात नही है ऐसी वेश्याऐं भी देखी जाती है जो सद्गुणोंवाली होती हैं। वेश्याओं के हृदय में सद्भाव नही रहता, इससे सम्बन्धित आलाजाल की कथा[2] है। इसमें कथित है कि ब्रह्मा ने इस संसार में यौवन से अन्धे धन-वालों के लिए वेश्या को धन और प्राणों को हरण करने वाला सुंदर रूपशाली नरक बना दिया है।

इस ग्रन्थ में स्त्री स्वभाव का चित्रण करने वाली कथाओं का बहुमूल्य है। इनके द्वारा जहाँ तक एक ओर स्त्री मनोविज्ञान के विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डाला है वही दूसरी ओर दुष्ट और दुराचारिणी स्त्रियों से दूर रहने की शिक्षा भी प्राप्त होती है। कतिपय विद्वानों की धारणा है कि दुष्चरित्र पत्नियों से सम्बन्धित अनेक कथाएं बौद्ध सम्प्रदाय से प्रभावित हैं।[3] क्योंकि अनेक कुटिला स्त्रियों से विमुख होकर अनेक लोगों ने बौद्ध संघ।

---

1. सप्तम लम्बक, चतुर्थ तरंग
2. दशम लम्बक, प्रथम तरंग
3. विण्टरनित्स, हिस्ट्री आफ इण्डियन लिटरेचर, पृ0 361

में दीक्षा लेकर भिक्षा वृत्ति अपना ली यद्यपि इसमें संदेह नहीं कि सोमदेव बौद्ध धर्म से प्रभावित थे अतः उसकी श्रेष्ठता प्रतिपादित करने के लिए उन्होंने कुछ स्थलों पर वेदपाठी ब्राह्मणों की निंदा की है ।[1]

कथाओं में मनुष्य जीवन के निर्धारण में पूर्व जन्म के कर्मों का प्रभाव दिखलाया गया है । सुरभिदत्ता अप्सरा की कथा [2], राजा धर्मदत्त की कथा [3], राजा लक्ष्यदत्त और लब्ध-दत्त भिखारी की कथा[4], कथा तरुणचन्द्र वैद्य और राजा अजर की कथा [5] आदि ऐसी ही कहानियाँ हैं जिनमें ये प्रदर्शित किया गया है कि सबकुछ कर्म के ही अधीन है । राजा कलिंगदत्त की कथा [6] प्रसंशा की गई है और यह बताया गया है कि धर्म एक रूप नहीं है सार्वलौकिक धर्म पृथक और पारलौकिक धर्म पृथक है । जैसे ब्राह्मण

---

1. प्रथम लम्बक षष्ट तंरग,
2. वही पृ0 36।
3. षष्ट लम्बक प्रथम तरंग,
4. षष्ट लम्बक प्रथत तरंग
5. नवम लम्बक तृतीय तरंग
6. सप्तम लम्बक षष्ट तरंग

धर्म रागद्वेष हिंसा, सत्य, प्राणिमात्र पर दया करना और जाति पाँति के झूठे झगड़ों से रहित होना सिखाता है वैसे ही बौद्ध सिद्धान्त भी सभी जीवनों पर अभय प्रदान करने वाला है।

कथाओं में विनीतमति की कथा।[1], पवित्र वराह की कथा[2], तथा दान पारमिता, शीलपारमिता, क्षमा पारमिता, धैर्यपारमिता, ध्यानपारमिता तथा प्रज्ञापारमिता- इन छः पारमिताओं की कथाएं प्रमुख हैं।[3] इन कथाओं के अन्त में उपदिष्ठ है कि बुद्धिमान लोग नौका के समान भगवान बुद्ध के द्वारा कही हुई छः पारमिताओं का आचरण करके संसार सागर को पार कर जाते हैं।[4] कलिंग सेना के जंग की कथा[5] में भी उपदिष्ट है कि धन देना ही सबसे महान तप है अर्थ देने वाला प्राणदाता कहा जाता है क्योंकि, प्राणधन में कीलित है। करुणा से व्याकुल

---

1. द्वादस लम्बक, पंचम तरंग
2. वही, वही § वराह जातक§
3. वही वही
4. एवं चारूह्य नौतुल्यामि तरंत्येव भवाम्बुधिम्।
   वत्स बुद्धोक्तदानादिषट्कपारमितां बुधाः ।। 362 ।।
5. षष्ट लम्बक, द्वितीय तरंग

चित्त बुद्ध ने अपनी त्मा को भी तृण । के समान दे डाला अंकिचन धन की क्या कथा ऐसे धैर्ययुक्त तक से निरीह बुद्ध ने दिव्य ज्ञान प्राप्त कर उद्धत्व लाभ किया । इसलिए, सभी प्रिय पदार्थों से आशा को हटाकर बुद्धिमान व्यक्ति को भलीभांति ज्ञान की प्राप्ति के लिए आजीवन प्राणियों का हित करना चाहिए । इसी प्रसंग में सात राजकुमारियों की कथा, एक विगत राजकुमार की कथा, एक तपस्वी और राला की कथा[1] का वर्णन किया गया है ।

"कथासरित्सागर में अनेकानेक ऐसी कथाओं का उल्लेख है जो सामान्य जीवन से संबन्धित किसी शिक्षा या सदाचार की ओर संकेत करती है । उनका सन्निवेश ही किसी प्रेरक-प्रसंग को रखकर किया गया है । इस दृष्टि से उनके द्वारा मनोरंजन, ज्ञान वर्धन तथा शिक्षण सब एक साथ ही हो जाता है । उनकी कहानियों की सबसे बड़ी विशेषता रही है कि सरल भाषा में परिमित शब्दों के प्रयोग द्वारा वे जिस तथ्य का कथन करते हैं उसकी अमित छाप पाठक के मन पर पड़ जाती है ।

---

1. षष्ट लम्बक, द्वितीय तरंग

राजा ब्रह्मदत्त की कथा [1] द्वारा दान की प्रेरणा दी गई है तथा कहा गया है कि " अविवेक से अन्य बुद्धि वाले दुष्ट आपत्तियों को आते और और नष्ट होते देखकर भी अपने स्वभाव को नही छोड़ते तथा " कृतघ्नों " का कल्याण। इसी प्रकार नही हो सकता । धर्म सदा सहायक ही होता है, विपरीत नही होता - यह शिक्षा " राजा आधिकत्य वर्मा और मंत्री शिव वर्मा की कथा [2] द्वारा प्राप्त होती है। "राजा धर्मदत्त की को कथा [3] में उपदिष्ट है कि धर्म का आदर करने से ही शुभ फल प्राप्त होते हैं इसी भांति भली प्रकार किया गया थोड़ा भी धर्म महान फल देने वाला होता है। इस सम्बन्ध में सात ब्राह्मणों की एक कथा [4] है - एक बार, दुर्भिक्ष पड़ने पर, उस अध्यापक ने उन सातों शिष्यों को अनेक गायों वाली अपने श्वसुर से एक गाय मांगने के लिए अपनी ससुराल भेजा । दुर्भिक्ष से सूखे

---

1. प्रथम लम्बक, तृतीय तरंग
2. प्रथमलंबक, तृतीय तरंग
3. षष्ठ लम्बक, प्रथम तरंग
4. षष्ठ लम्बक, प्रथम तरंग

पेट वाले उन सातों सिष्यों ने गुरू के कथनानुसार उसके स्वसुर से जाकर गाय मांगी । उस कृपण और बुभुक्षित स्वसुर ने अपनी जीविका की आधारभूत उस गाय को उन्हे दे दिया किन्तु भोजन के लिए नही पूछा वे सातों शिष्य, गाय को लेकर आते हुए मार्ग में भूख की गहरी वेदना से थककर भूमि पर गिर गये । और यह सोचने लगे, गुरूजी का घर दूर है, इधर हम लोग गंभीर विपत्ति से विवश है । अन्य सभी ओर दुर्लभ है । अतः, अब हमारे प्राण गये । इसी प्रकार, यह अकेली गाय, बिना घास-पानी और मनुष्य के इस जंगल में मर जायेगी । इसके मरने से गुरु जी का छोटा सा कार्य भी सिद्ध न हो सकेगा अतः इस गाय के मांस से अपने प्राणों को बचाकर और बचे हुए मांस से भी गुरू जी की भी प्राण की रक्षा की जाय । क्योंकि यह आपत्तिकाल है ऐसा सोचकर उन सातों सहपाठियों ने शास्त्र विधि के अनुसार गाय को पशु बनाकर मार खाया और बचा हुआ मांस लेकर गुरूजी के समीप गये । गुरु जी को प्रमाण करके उन्होने मार्ग का सारा समाचार सुनाया अपराध करके सत्य बोलने के कारण गुरू जी ने उन्हें क्षमा प्रदान की । कुछ दिनों में अकाल के कारण सातों सिष्य मर गये, किन्तु सत्यभाषण के प्रभाव से वे पूर्व जन्म का स्मरण करते । थे, इस प्रकार, पुण्यात्माओं का

छोटा सा बीज भी, शुद्ध संकल्प के बल से सींचा, जाकर अच्छा फल देता है और वही दुष्ट भावना से दूषित होकर अनिष्ट फल देता है ।

एक ब्राहमण और एक चाण्डाल की कथा [1] है --
प्राचीन समय , माघमास में एक ब्राहमण और एक चाण्डाल एक साथ अनशन करके तपस्या कर रहे थे। एक बार भूखे ब्राहमण ने गंगा तट पर मछलियां पकड़ कर धीवरों को देखकर सोचा कि ये दुष्ट धीवर संसार में धन्य हैं, जो प्रतिदिन ताजी - ताजी मछलियां निकाल कर यथेष्ट भोजन करते हैं । दूसरे चाण्डाल ने उन्हीं धीवरों को देखकर सोचा कि इन प्राणिहिंसक मांसाहारी धीवरों को धिक्कार है । इसलिए, ऐसे दुष्टों का मुह देखने से क्या लाभ? ऐसा सोचकर और आँख बन्द करके वह आत्मचिन्तन करने लगा ।

वे दोनो ब्राह्मण और चाण्डाल गलकर मर गये । उनमें ब्राहमण को को कुत्ते खा गये और वह चाण्डाल गंगाजल में ही मर गया । मरने पर, दुष्ट भावना के कारण वह असफल ब्राहमण, धीवरों के कुल में ही उत्पन्न हुआ, किन्तु तप के

---

1. षष्ठ लम्बक, प्रथम तरंग

प्रभाव से उसे पूर्व जन्म का स्मरण रहा । धैर्यशाली, तत्वज्ञानी चाण्डाल राजा के घर में जन्म लेकर जाति स्मर बना रहा। इस प्रकार पूर्व जन्म को स्मरण करते हुए उन दोनो में एक दास होकर अत्यन्त दुखी और दूसरा राजा होकर अत्यन्त प्रसन्न हुआ ।

इसी भांति धर्म की महत्ता प्रदिपादित करने वाली अनेक कथाएं उपलब्ध होती है । सद्वृत्तियों की ओर प्रेरित करने वाली अन्य अनेक कथाएं भी प्राप्त होती हैं । अहंकार , ज्ञान-मार्ग में कठिनाई से छटने वाली बाधा है । और ज्ञान के बिना सैकड़ों व्रतो से भी मुक्ति नही होती अतः अहंकार का परित्याग कर मुक्ति की ओर प्रेरित करने वाली शाकाहारी मुनि की कथा [1] है ।

प्राचीन युग के परम तपस्वी, दयालु, दाता, धीर एवं समस्त प्राणियों को अभय देने वाले "राजा शिव की कथा [2] जीवमूतवाहन की कथा [3] भी उपलब्ध होती है । दुष्चरित्रता

---

1. प्रथम लम्बक, पंचम तरंग
2. प्रथम लम्बक, सप्तम तरंग
3. चतुर्थ लम्बक, द्वितीय तरंग

किसके पतन का कारण नही बनती, यहाँ तक कि देवता भी उससे नही बच पाते । इन्द्र और अहल्या की कथा[1] से यही बात सूचित होती है। यह सर्वविदित सत्य है कि उच्चकोटि के व्यक्तियों के सम्पति प्राप्त करने में अपना पुरुषार्थ भी एक मात्र कारण होता है। बलवान उच्च व्यक्ति, आश्रयहीन होकर भी लक्ष्मी प्राप्त करता है । इस दृष्टि से वीर विदूषक ब्राहमण की कथा [2] का वर्णन किया गया है ।

राजा विक्रम सिंह तथा दो ब्राहमणों की कथा [3] यही सिद्ध करती है कि सम्पत्तियां सत्व का अनुसरण करती हैं । राजा सत्वशील की कथा [4] तथा विक्रमतुंग राजा की कथा, [5] से भी यही सूचित होताहै कि मन्द सत्ववालों को सिद्धियां देर से प्राप्त होती है और उग्र सत्वशाली को ईश्वर शीघ्र ही सिद्धि प्रदान करता है। गुणशर्मा ब्राहमण की कथा [6] तथा वीरवर ब्राहमण

---

1. तृतीय लंबक, तृतीय तरंग, §2§ वही वही चतुर्थ तरंग
3. तृतीय लम्बक, षष्ठ तरंग §4§ षष्ठ लम्बक, प्रथम तरंग
5. सप्त लम्बक, वही वही
6. वही वही

की कथा[1] भी सात्विक है ।

इस संसार में कुछ लोग धन प्राप्त करके भी उसे वंचित करते हैं। और व्यय नही करना चाहते किन्तु लक्ष्मी का भोग और दान करना भी श्रेयष्कर है। इस सम्बन्ध में अर्थवर्मा और भोवर्मा बन्ने को कथा[2] द्रष्टव्य है । लोभ प्राणियों के लिए महान हानिकारक है इसलिए अत्यन्त संग्रह करने की बुद्धि नही करनी चाहिए जैसा कि निम्न कथा[3] में प्रदर्शित है- कहीं जंगल में एक बहेलिया , शिकार करके मांस लिए हुए धनुष वाण चढ़ाकर सुअर को ओर झपट पड़ा और वाण से आहत सुअर के दाढ़े के आघात से वह स्वयं भी मर गया । दूर से एक सियार यह सब देख रहा था वह वहाँ आया और भूखा होने पर भी, भोजन का संग्रह करने की दृष्टि से उसने सुअर, बहेलिया आदि के प्रचुर परिमाण वाले मांसों को नही चखा बल्कि सर्वप्रथम

---

1. नवम लम्बक, तृतीय तरंग
2. नवम्ब लम्बक चतुर्थ तरंग
3. दशम लम्बक, सप्मत तंरग,
4. द्वादश लम्बक, चतुम्त्रिंश तरंग

धनुष में लगी चमड़े की डोरी को ही खाना प्रारम्भ किया उसी समय धनुष के हिलने से उससे छूटे हुए बाण से वह स्वयं बिंध कर मर गया ।

इस प्रकार " सुन्दरसेन और मन्दरावती की कथा द्वारा यह उपदेश दिया गया है जो सत्य पुरूष होते हैं वे आपत्ति में घबड़ाते नही, ऐश्वर्य पाकर अभिमान नही करते, और किसी भी हालत में उत्साह को हाथ से जाने नही देते जो लोग बड़े होते है वे बड़े- से बड़े कष्ट को धैर्य पूर्वक सहकर बड़े काम करते हैं । और तब जाकर " बड़प्पन पाते है । उच्च व्यक्तियों को दुष्ट व्यक्ति प्राय: मिथ्या निन्दा से कलंकित कर देते हैं । और उनके हित साधने में बाधा उपस्थित कर देते हैं । अत: सज्जनों को किसी का भय किए बिना धैर्य रखना चाहिए जैसा कि हरस्वामी की कथा [1] में दिखाया गया है इसी भांति धैयशाली व्यक्ति अनिश्चित अवधि तक चिरकालीन विरह को सहन करते है । इस सम्बन्ध में रामभद्र और सीता देवी की कथा [2] का वर्णन उल्लेख किया गया है ।

.1 पंचम लम्बक, प्रथम तरंग

2. नवम लम्बक प्रथम तरंग ।

" देव की महत्ता भी कई कथाओं द्वारा प्रतिपादित की गई है। जैसे - लापरवाह मालिक की कार्यसिद्धि के लिए अच्छे सेवक सावधान रहते है, उसी प्रकार भाग्यवान व्यक्तियों की कार्यसिद्धि के लिए देव ही जागरूक रहता है । जैसे- तेजस्वी की कथा [1] तथा हरिशर्मा ब्राहमण की कथा[2] , समुद्र वैश्य की कथा[3], तथा समुद्र सूर वैश्य की कथा[4], में भी यही दिखाया गया है कि देव मनुष्यों के उत्थान पतन से खेल करता है । इसी को अयाचित ही धन प्राप्त हो जाता है और किसी का प्राप्त हुआ भी धन नष्ट हो जाता है । सोमदेव ने यदि एक ओर उच्च कोटि के सद्गुण समन्वित व्यक्तियों का चित्रण किया है तो दूसरी ओर चोर, जुआरी, धूर्त, कपट, बदमाश, ठग, वेश्यागामी, शराबी और अन्य निम्नवर्गीय व्यक्तियों का चित्रण भी स्वाभाविक रीति से किया है। ऐसे व्यक्तियों के चित्रण द्वारा उन्होंने यही सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि दुर्व्यसन और दुर्बुद्धि से मनुष्य कभी सुखी नही रह सकता ।

---

1. षष्ठ लम्बक चतुर्थ तरंग
2. वही वही
3. पंचम लम्बक, तृतीय तरंग
4. द्वादश लम्बक, षष्ठ तरंग

देवदत्त ब्राह्मण की कथा में जुए के व्यसन की निन्दा करते हुए सौदामिनी की कथा[1] तथा भूनन्दन की कथा[2] में यह प्रदर्शित किया गया है कि जुए में सारा धन गंवाकर व्यक्ति अन्य वस्त्र से हीन होकर सोचनीय स्थिति को पहुँच जाता है। क्यों कि पासे दरिद्रता को निमन्त्रण देते हैं। जुआ खेलनेवालें के हाथ ही उनके शरीर ढकने के वस्त्र हैं, धूल ही बिछौना है, चौराहा ह' घर है और सर्वनाश ही उनकी स्त्री है। ऐसी व्यवस्था विधाता ने ही की है। जिनके हृदय को न मित्रता न घृणा न परोपकार ही छुआ है, ऐसे छलमात्र विधावाले जुआड़ियों का विश्वास नही करना चाहिए। बलजोरी करना और किसी की परवाह न करना ये दोनो गुण जुवाड़ियों में रहते ही हैं इस विषय में ठिण्ठाकराल की कहानी [3] अवेक्षणीय है। ठिण्ठाकराल में अपनी मायायुक्त वंचना से देवताओं को भी ठग लिया था।

पूर्वकाल में किसी नगर में एक जुआड़ी रहता था उसका नाम कुटनी कपट था। और वह जुए की चालाकी में पारंगत था।

---

1. द्वादश लम्बक, षष्ट तरंग
2. वही वही
3. अष्टादश लम्बक, पंचम तरंग

मरणोपरान्त जब वह यमलोक पहुँचा तब धर्मराज ने उससे कहा- "अरे जुआड़ी तुमने जो पाप किसे हैं, उनसे तुम एक कल्प पर्यन्त नरक में बास करोगे किन्तु दान के पुण्य से तुम्हे केवल एक दिन इन्द्र का पद लिखा है, क्योंकि तुमने किसी समय किसी वेद ज्ञाता ब्राह्मण को एक सोने का सिक्का दिया था इसलिए कहो- पहले तुम क्या भोगोगे ? नरक या इन्द का पद ? यह सुनकर उस जुआड़ी ने कहा मैं पहले इन्द्र का पद भोगूगा, तब धर्मराज ने उसे स्वर्ग भेज दिया और देवताओं ने एकदिन इन्द्र को उठा कर उसे देवराज के पद पर बैठा दिया । देवराज का पद प्राप्त करके उस जुआड़ी ने अपने साथी जुआड़ी और वेश्याओं को भी लेजाकर अपने प्रभुत्व से देवताओं को आदेश दिया कि - हे देवताओं स्वर्ग में, पृथ्वी पर और सातों द्वीपों में जितने तीर्थ हैं उन सबमें हम सबको लेजाकर तुरन्त स्नान कराओं और आज ही पृथ्वी पर सभी राजाओं की शरीर में प्रवेश करके उन लोगों के द्वारा मेरे निमित्त निरन्तर महादान कराते रहो । उसकी आज्ञा पाकर देवताओं ने तुरन्त वैसा ही किया और उन पुण्यों से पापमुक्त होकर उस धूर्त जुआड़ी ने इन्द्र का पद स्थायी रूप से प्राप्त कर लिया । तथा उसके जो मित्र और वेश्याएं स्वर्ग लाई गई थी, उन सबने भी उसकी कृपा से मुक्त हो देवत्त्व को प्राप्त किया ।

सोमदेव के वृहत्कथा संस्करण में विक्रम और वेताल की कथायें मिलती है ऐसा प्रतीत होता है कि यह एक स्वतंत्र कथा चक्र था। जो मूलतः वृहत कथा का अंग नही रहा होगा । फिर भी इन कथाओं के समावेश से ग्रन्थ में रोचकता आ गई है ।

मूल नरवाहन दत्त की कथा में अभी अधिक आकर्षण नहीं है क्योंकि उसमें विविध प्रेम कथाओं का आधिक्य तथा अवश्यं-भाविता की अभिमात्रा है ।- क्योंकि वे सब भाग्य द्वारा पूर्व निर्धारित है ।[1] ग्रन्थ की वास्तविक रोचकता उसमें सन्निविष्ट विभिन्न प्रासंगिक कथाओं से है । जिनमें कुछ नैतिक , कुछ हास्यपूर्ण, कुछ प्रेम- सम्ब न्धी तथा कुछ पंचतंत्र एवं विक्रमादित्य के जीवन से संगृहीत है । इस भांति कथा - सरित्सागर में एक मुख्य या बड़ी कथा के कलेवर में उसके मुख्य संदेश हो समर्थिक करने वालो अनेक अन्तः कथाएं उप कथाएं या प्रासगिक कथाएं साक्ष्य, उदाहरण, प्रागुक्ति अथवा प्रमाण की तरह जुआड़ी ही है और जिसमें कथा के घोसलें के भीतरी भाग

---

1. ए0वी0कीथ, संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ0 355
   भाषान्तरकार - डा0 मंगलदेव शास्त्री ।

की नाई अनेक, वेश्य, वेश्यमान्त, प्रकोष्ठ और प्रकार हैं ।[1] इन कथाओं द्वारा मनोरंजन प्राप्त करके मानसिक तनाव तो दूर होता ही है साथ ही विभिन्न शिक्षाओं और उपदेशों से प्रेरणा भी प्राप्त होती है ।

कथासरित्सागर के रूप में कल्पना में एक ऐसे महान कथा सागर की सृष्टि की है उसमें अद्भुत कन्याओं और उनके साहसी प्रेमियों, राजाओं और नगरों , राजतन्त्र एवं षडयंत्र, जादू और टोने, छल और कपट, हत्या और युद्ध, रक्तपायी वैताल, पिशाच, यक्ष और प्रेम, पशु-पक्षियों की सच्ची और गढ़ी हुई कहानियां एवं भिखमंगे, साधू, पियक्कड़, जुआरी, वेश्या, विट और कुटनी, इन सभी की कहानियां एकत्रित हो गई हैं । ऐसा यह कथा सरित्सागर भारतीय कल्पना जगत का दर्पण है जिसे सोमदेव भविष्य को पीढ़ियों के लिए छोड़ गये हैं ।

---

1. डा० कुमार विमल, कथासरित्साग § तृतीय खण्ड § पृ० अनुवादक, श्री केदारनाथ शंकर झा, श्री प्रफुल्लचन्द्र ओझा ।

नीति कथाएं :-
==========

इसमें मुख्यत: जन्तु-कथाओं द्वारा लोकव्यवहार, नीति, सदाचार आदि की शिक्षा दी गई है । संस्कृत कथा साहित्य में "पंचतंत्र" का स्थान सर्वोपरि है । प्रमुखत: एक आधार कथा की सहायता से पंचतंत्र में पशु-आख्यायिकाओं की प्लवमान राशि को अत्यन्त उत्कृष्टि रूप से सम्पादित किया गया है । दक्षिण में महिलारोप्य के राजा अमरशक्ति अपने तीन परम मूर्ख पुत्रों - बहुशक्ति, उग्रशक्ति, और अनन्तशक्ति को शास्त्रविमुख देख परम चिन्तित हुए और अपने मन्त्रियों से परामर्श किया । उन मूर्ख पुत्रों को छ: मास के अत्यन्त समय में समस्तशास्त्रवेत्ता बनाने का दृढसंकल्प विष्णुशर्मा नामक एक अत्यन्त विद्वान ब्राहमण ने किया । विष्णुशर्मा ने उन बालकों की शिक्षा के निमित्त " पंचतंत्र के पांच मंत्रों - मित्रभेद, मित्रप्राप्ति, काकोलूकीय, लब्धप्रणाश और अपरीक्षितकारक - में संनिहित कथाओं की रचना करके उन मूर्ख राजपुत्रों को भी नीतिशास्त्र में निपुण बना दिया । अत: पंच-तंत्र के प्रणयन का एकमात्र उद्देश्य सुकुमारमति राजकुमारों को कथा के व्याज से विनोदपूर्वक राजनीति का ज्ञान कराना था ।

पंचतंत्र नीतिशास्त्र के साथ ही विभिन्न सांसारिक विषयों

के ज्ञान से सम्पन्न ग्रन्थ के रूप में सर्वश्रेष्ठ एवं सर्वमान्य है ।

इससे यह स्पष्ट है कि ज्ञान अनायासेन देने की योजना कहानियाँ कहकर ही सफल हुई । मनोरंजन के साथ - साथ ही ज्ञान की प्राप्ति पंचतंत्र का प्रमुख ध्येय रहा है। विष्णुशर्मा जैसे प्रकाण्ड विद्वान को यह सम्यक रूपेण विदित था कि कहानियाँ सरलबुद्धि बालकों को आकृष्ट करने का सर्वोत्कृष्ट माध्यम है । संस्कृत कथा साहित्य में बहुधा पशुकथा के माध्यम से राजनीति शास्त्र की शिक्षा देने के कारण पंचतंत्र का विश्वव्यापी प्रचार हुआ है। जन्तु कथा के पात्र मुख्यतः इनका तथा अन्तर्भाव नीति कथा में हो जाता है। पशु - पक्षियों को मानव सदृश आचरणों तथा गुणों का जामा पहनाकर प्रस्तुत करने से जो विनोदपूर्ण स्थिति उत्पन्न हो जाती है, उसके प्रभाव से जन्तु-कथा श्रोता या पाठक के मन में सहज ही घर कर जाती है और उसके माध्यम से दिया गया उपदेश भुलाए नहीं भूलता ।[1]

संस्कृत कथा साहित्य में पंचतंत्र इतना लोकप्रिय हुआ कि इसका प्रचार- प्रसार संसार में बाइबिल के बाद सर्वाधिक

---

1. वही, पृ0 220

हुआ । पंचतंत्र के सम्पादक हार्टेल का कहना है कि इनके दो सौ से अधिक संस्करण लगभग पचास भाषाओं में हुए, जिनमें तीन चौथाई भाषाएं भारतीयेतर है। एशिया और यूरोप के साथ ही अन्य महाद्वीपीयों में भी इसका प्रचार- प्रसार है। पहली बार, स रियन और अरबी अनुवाद के द्वारा इसका विस्तृत प्रचार यूरोप में हुआ है और इसके ही एक रूपान्तर तन्त्रोपाख्यान का प्रचार जावा, थाइलैण्ड, और लाओस आदि में अत्यधिक मात्रा में है। डा० कीथ ने अपने संस्कृत साहित्य के इतिहास में पंचतंत्र के विविध अनुवादों का विस्तृत वर्णन दिया है ।

§1§ सबसे महत्वपूर्ण अनुवाद हकीम बुर्जोई का है । उसने खुसरों अनोशेरवां § 531-579 ई० § की आज्ञा से पंचतंत्र का पहलवी भाषा में अनुवाद किया था । यह अब अप्राप्य है ।

§2§ 570 ई0 में बूद ने पहलवी से सीरियन भाषा में अनुवाद किया ।

§3§ 750 ई0 में अब्दुल हव्मल मोकफ्फा ने इसका अरबी अनुवाद किया । अरबी अनुवाद " कलिलह दिमनह" के नाम से विख्यात है। इस अरबी संस्करण से ही पश्चिमी संस्करण निकले हैं ।

अन्य अनुवाद हैं - सिमियन, कृति ग्रीक § यूनानी § अनुवाद §11 ई0 अन्त§, गियुकियों मूति कृत इटालियन अनुवाद §1583 ई0§ ग्रीक अनुवाद से ही दो लेटिन, एक जर्मन और और कई स्लाव अनुवाद हुए । रब्बी जोइल कृत अरबी से हिंदू अनुवाद § 1100 ई0§ इसमें जान आफ कैपुआ कृत लेटिन अनुवाद §1263-1278 ई0§ हुआ । एन्थानियम फान फर ने 1483 ई0 में जर्मन अनुवाद किया । इससे डेनिश, आइसलेण्डिक अनुवाद, 1556 में फ्रेंच अनुवाद, 1570 में सर टामस नाथ, कृत अंग्रेजी, में किया । 1142 में एक महत्वपूर्ण अनुवाद अबुल अनवारि सुहेली हुआ । उसमें 1470-1505 ई में फारसी अनुवाद अनवारि सुहेली, हुआ । इससे ही तुर्की, फ्रेंच, डच, हंगारियन, जर्मन और मलय भाषाओं में अनुवाद हुए । इस भांति पंचतंत्र का विश्वव्यापी प्रचार हुआ ।

पंचतंत्र की रचना कब हुई, इस विषय में निश्चित रूप से कुछ कहना कठिन है, किन्तु इतना तो मानना ही पड़ेगा कि इसका प्रथम पहलवी अनुवाद जो 570 ई0 के लगभग हुआ था उससे बहुत पहले इसकी रचना हो चुकी होगी । पंचतंत्र में चाणक्य का नामोल्लेख है तथा इस पर उन्हीं के अर्थशास्त्र का व्यापक प्रभाव

है । इससे सिद्ध होता है कि पंचतंत्र की रचना 300 ई0पू0 के बाद ही हुई होगी । पंचतंत्र में दीनार शब्द का प्रयोग भी हुआ है । डा0 कीथ के अनुसार इस दीनार शब्द के आधार पर पंचतंत्र का रचनाकाल ईसा के बाद ही ठहरता है। ऐतिहासिक प्रमाणों से पता चलता है । कि ईसा की द्वितीय शताब्दी के आसपास रक्तसभाओं में संस्कृत को प्रधानता मिलने लगी थी । अतः ऐसे राजकाल में संस्कृतभाषी ब्राह्मणों को भी स्थान मिलने लगा था। अतः ऐसे ग्रन्थों की आवश्यकता पड़ने लगी होगी जो संस्कृत बोध के साथ-साथ राजनीति की भी शिक्षा सरल ढंग से दे सके । इसी उद्देश्य से पंचतंत्र की रचना हुई होगी और इस हिसाब से पंचतंत्र का रचनाकाल ईसा की तीसरी शताब्दी माना जाता है । [1]

इस कथा साहित्य में पंचतंत्र में पाँच मुख्य कथाएं हैं

---

1. डा0 वचनदेव कुमार, संस्कृत साहित्य का इतिहास, प्र0- नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 23 - दरियागंज, नई दिल्ली 110002, पृ0 207-208

सं0	तन्त्रनाम	कथा
1.	मित्रभेद	शेर और बैल की मित्रता भंग
2.	मित्रसम्प्राप्ति	काक, कूर्म, मृग और चूहे की मित्रता
3.	काकोलूकीय	कौए और उल्लू की कथा
4.	लब्धप्रणाश	बन्दर और मगर की कथा
5.	अपरीक्षितकारक	ब्राह्मणी और नेवले की कथा ।

मित्रभेद " में यह नीतिशिक्षा है कि राजनीति में कूट-चाल द्वारा मित्रता-भंग करवाना भी एक निपुणता मानी जाती है । इसमें राजनीति के मूल सिद्धान्त और राजा तथा मंत्री के सम्बन्धों के विषय में जानकारी दी गई है । शेर पिंगलक और बैल संजीवक घनिष्ट मित्र थे। करकट और दमनक नामक मंत्री गीदड़ों ने उनसे वैमनस्य करवा के बैल की हत्या करवा दी ।

मित्रसंप्राप्ति" में नीतिशिक्षा है कि अनेक उपयोगी मित्र बनाने चाहिए । कौआ, कछुआ, हिरन और चूहे साधनहीन होने पर भी मित्रता के बल पर सुखी रहे । तृतीय तंत्र काकोलूकीय में सन्धि विग्रह की शिक्षा दी गई । अर्थात सर्वार्थसिद्धि

के लिए शत्रु से भी मित्रता कर ले और बाद में उसे धोखा देकर नष्ट कर दें । वस्तुतः लेखक ने एक प्राचीन कथा का आधार लिया है जो पहली बार महाभारत में उपलब्ध होती है - इस कथा में वर्णित है कि युद्ध में अवशिष्ट कौरव एक रात जब एक ऐसे वृक्ष के नीचे विश्राम कर रहे थे जिस पर उल्लकों का आवास था तो उन्होंने देखा कि रात्रि में कौवों में उन सब उल्लूकों को नष्ट कर दिया । इसी से प्रेरणा ग्रहण कर कौरवों ने रात के समय पाण्डवो पर आक्रमण किया जो सम्पूर्ण महाभारत के भीषण रक्तपात का कारण हुआ। महाभारत की इस अत्यन्त सरल कथा के आधार पर ही तन्त्राख्यायिका के लेखक ने उल्लू और कौरवों कौओं के युद्ध की कथा, मंत्रियों की चतुरता आदि का वर्णन किया । इसके साथ ही उन्होंने अन्य शिक्षा व का भी समावेश किया, जैसे - विभिन्न प्रकार के मंत्री, उनेक कर्तव्य, राजा और मंत्रियों से उनका सम्बन्ध, युद्ध की तैयारी और युद्ध में प्रयुक्त होने वाली रीतियां और साहस तथा अन्य शिक्षा समन्वित उपकथाएं हैं । चतुर्थ तन्त्र लब्धप्रणाशन में नीतिशिक्षा है कि बुद्धि-मान बुद्धिबल, से जीत जाता है। और मूर्ख हाथ में आई हुई वस्तु से भी हाथ धो बैठता है। मगर और वानर की मित्रता इसी मूर्खता का कारण ही समाप्त हो जाती है ।

पंचम तंत्र अपरीक्षितकारक में यह नीतिशिक्षा है कि बिना विचार किए कार्य करने वाला बाद में पश्चाताप करता है। जैसे ब्राह्मणी ने सर्प से अपने शिशु की रक्षा करने वाले नेवले की यह समझकर हत्या कर दी कि इसी ने मेरे बच्चे को मारा है।

अतः पंचतंत्र के लेखक ने अत्यन्त सरल भाषा में एक छोटी सी कहानी का आश्रय लेकर गूढ़ राजनीति और उच्च शास्त्रीय बातों की शिक्षा दी है। छोटी से छोटी राजनैतिक या नैतिक शिक्षा के लिए एक कहानी दी गई है। जाति मुख्यतः कथा के पात्र मनुष्य न होकर पशु पक्षी या जीव जन्तु हैं, अतः ये कथाएं धर्म, जाति, व्यक्ति, राष्ट्र और इसी प्रकार की संकीर्णताओं से ऊपर उठकर मानव-मात्र की सम्पत्ति की प्रभु हो गई है। यही कारण है कि संसार को प्रमुख लघु कथाएं नामक आधुनिक कहानी संग्रह में पंचतंत्र की कहानियों को प्रमुख स्थान प्राप्त हुआ है।[1]

पंचतंत्र जिन कथाओं का संग्रह है वे भारत में नितान्त प्राचीन हैं पंचतंत्र के भिन्न- भिन्न शताब्दियों में तथा भिन्न-भिन्न

---

1. कपिलदेव द्विवेदी , संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास, पृ० 706

प्रान्तों में अनेक संस्करण हुए । एडगर्टन ने मूलरूप के पुनर्निर्माण के लिए निम्नलिखित संस्कारणों को महत्वपूर्ण बतलाया है -

§1§ <u>सरल पंचतंत्र</u> :-

इसका समय 1100 ई0 के लगभग है । इसका संपादक कोई जैन विद्वान हैं । डा0 व्यूलर और कीलहार्न ने इसका संस्करण निकाला है। यह भारत में सबसे अधिक प्रचलित है।

§2§ <u>तंत्राख्यायिका</u> :-

यह मूल पंचतंत्र के अत्यन्त समीप है । इसमें मूल अंश सर्वाधिक है। इसका समय 300 ई0 के लगभग माना जा सकता है। इसमें कुछ कहानियां जोड़ी गई हैं । हार्टल ने 1910 में यह संस्करण निकाला था ।

§3§ <u>पूर्णभद्र-कृत संस्करण</u> :-

इसको पंचाख्यानक भी कहते हैं इसका संपादन पूर्णभद्र जैन ने किया था। इसका समय 1169 ई0 इसमें 21 कहानियां म नई हैं। इसमें गुजराती और प्राकृतिक शब्दों का भी प्रयोग है ।

§4§ <u>नेपाली पंचतंत्र</u> :-

एक हस्तलिखित प्रति में केवल पद्य ही मिलते हैं और दूसरी में पद्य के साथ संस्कृत या नेवारी में गद्य में भी मिलती है।

§5§ <u>दक्षिणी पंचतंत्र</u> :-

यह कम से कम पाँच संसकरणों में उपलब्ध है। यह दाक्षिणात्य पाठ प्रस्तुत करता है। इसमें कथाएं संक्षिप्त करके दी गई है। एडगार्टन के मतानुसार इसमें मूल-ग्रन्थ का 3/4 गद्य और 2/3 पद्य सुरक्षित है। एक भारवि 600 ई0 के बाद का है।

§6§ <u>हितोपदेश</u> :-

यह नारायणपण्डित द्वारा सम्पादित है और पंचतंत्र का किंचित परिवर्तित रूप है।

§7§ <u>पहलवी संस्करण</u> :-

खुसरो अनोशेखां § 531-579§ ई0 के शासन काल में हकीम बुर्जोई ने पंचतंत्र का पहलवी भाषा में अनुवाद किया था। इसके ही अनुवाद अरबी सीरियन भाषा में हुए। इस अरबी भाषा से ही यूरोप की भाषाओं में अनुवाद हुए।[1]

§ 4 § उत्तर पश्चिमीय संस्करण :-

गुणाढ्य ने बृहत्कथा में इस संस्करण को अपनाया था। यह अंग क्षेमेन्द्र कृत बृहत्कथामन्जरी §1037 ई0§ और सोमदेव कृत कथासरित्सागर §1037 ई0§ में सुरक्षित है। [1]

पंचतंत्र में मुख्य कथाओं के साथ अनेक अवान्तर या प्रासंगिक कथाएं गुम्फित की गई है। जैसा कि हम देख चुके हैं पंचतंत्र के पांचों तंत्र अन्वर्थनामा हैं और सभी में एक मूलकथा के भीतर अनेक उपकथाएं अथवा अवान्तर कथाएं सन्निविष्ट की गई हैं, जिनका मूल ध्येय उस मूलकथा को अधिक पुष्ट तथा यथार्थ बनाना है।

यह सर्वविदित सत्य है कि निर्बल व्यक्ति भी बुद्धिपूर्ण युक्तियों एवं संगठित शक्ति के द्वारा बलशाली को भी पराभूत करने में असमर्थ हो जाते हैं। अतः बुद्धि एवं उपाय की सहायता से दुर्बल सबल का विजित कर लेते हैं। इसका निदर्शन कई

---

1. डा0 कपिलदेव द्विवेदी, संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास, संस्कृत साहित्य संस्थान, 37 कचहरी रोड, इलाहाबाद-2, पृ0 276-77

कथाओं में किया गया है । उदाहरणार्थ - एक कृष्ण सर्प किसी काक - दम्पत्ति के अण्डों का सदैव भक्षण कर लिया करता था। उस कौवे ने उससे मुक्ति प्राप्त करने के लिए रानी का कण्ठहार लाकर उस सांप की बांबी में गिरा दिया । हार ढूढ़ते हुए सेवकों ने सर्प को मार डाला और हार लेकर चले गये । इस भांति कौवे ने उपाय द्वारा अपने अण्डों की सदैव के लिए रक्षा कर ली ।[1] ऐसे ही एक लोभी बगुले को कथा है जिसने विभिन्न मछलियों को अपना ग्रास बनाया किन्तु एक केकड़े की चतुराई के कारण मारा गया ।[2] शशा और सिंह की कथा द्वारा भी यही शिक्षा दी गई है कि बुद्धिमान के पास ही वास्तविक बल है।[3] ऐसी ही एक कथा कुछ धूर्तो की है जिन्होंने एक ब्राहमण को बकरे से वंचित कर दिया [4]:-

---

1. उपयोग हि यत्कुर्यातिन्न शक्यं पराक्रमैः।
   काक्या कनकसूत्रेण कृष्णसर्पो निपातितः ।।{मित्रभेदः कथा 6}
2. मित्रभेद, कथा 7
3. यस्य बुद्धिर्बलं तस्य निर्बुद्धेस्तु कुतो बलम् ।
   वने सिंहो मदोन्मत्तः शशकेन निपातितः।।मित्रभेद, कथा-
4. बहुबुद्धिसमायुक्ता: सुविज्ञाना बलोत्कटान् ।
   शक्ता वञ्चयितुं धूर्ता ब्राहमणं छागलादिव{काकोलूकीयम्, कथा

किसी स्थान में मित्रकर्मा नामक ब्राह्मण रहता था । एक बार उसने अग्निहोत्र कर्म के लिए किसी दूसरे ग्राम जाकर यजमान से एक पशु की याचना की । यजमान ने शास्त्रविहित नियमानुसार एक परिपुष्ट बकरा उसे दे दिया । उसे कन्धे पर रखकर उसने जल्दी- जल्दी अपने गाँव की ओर प्रस्थान किया मार्ग में तीन धूर्तों ने उस बलिष्ठ बकरे को देखकर सोचा कि किसी उपाय द्वारा आज इस ब्राह्मण के बकरे को ग्रहण कर इसका मांस भक्षण किया जाय । अनन्तर उनमें से एक धूर्त वेश बदलकर ब्राह्मण के निकट पहुँचा और बोला - अरे मूर्ख अग्निहोत्री इस अपवित्र कुत्ते को कन्धे पर चढ़ाकर क्यों ले जा रहे हो । ब्राह्मणी के डाटने पर वह चला गया किन्तु थोड़ी देर बाद दूसरा धूर्त उसके सामने आकर बोला कि मरे हुए बछड़े को कन्धे पर चढ़ाकर क्यों ले जा रहा है। उसे भी डाँटकर जब ब्राह-मण कुछ और आगे बढ़ा तो तीसरा धूर्त पहुँचा और बोला — भो: ब्राह्मण । यह बहुत अनुचित हैं कि तुम गधे को कन्धे पर चढ़ाकर ले जा रहे हों, इसीलिए इसको छोड़ दों । तब ब्राह्मण ने सोचा अवश्य ही यह बकरा नहीं कोई अपवित्रात्मा प्राणी है जो सभी इसे अपवित्र जानवर बताते हैं। अत: वह बकरे को कन्धे से उतारकर वहीं छोड़कर अपने गाँव की ओर भाग

तथा उन तीनों धूर्तों ने उस पशु का यथेष्ट भक्षण किया ।

इसी भांति बहुत से संगठित व्यक्तियों के साथ विरोध करना समुचित नही है भले ही वे दुर्बल क्यों न हो । जैसे चीटियां फुंकारते हुए महासर्प को भी खा गई ।[1] किसी बाल्मीक में बड़े शरीर वाला अतिदर्प नामक काला सर्प रहता था । एक बार वह बिल से निकलने के उत्तम मार्ग को छोड़कर अन्य छोटे मार्ग से निकलने लगा । शरीर की विशालता तथा मार्ग के संकरेपन के कारण निकलते समय उसके शरीर में घाव हो गया । घाव के रूधिर की गन्ध पाकर बहुत सी चीटियाँ चारों ओर से लिपट गई और उन्होने उसे व्याकुल कर दिया। उसमें कुछ चीटियों को मारडाला और कुछ को घायल कर दिया किन्तु चीटियों की संख्या अधिक होने के कारण उसका घाव बढ़ गया और उसको कमजोर शरीर रक्तमय हो गया । और अन्ततः उसकी मृत्यु हो गई ।

कृष्णसर्प और मण्डूकों की कथा [2] में भी कहा गया है

---

1. बहवों न विरोद्धव्या दुर्जया हि महाजनः।
   स्फुरन्डमपि नागेन्द्रं भक्षयन्ति पिपीलिकाः ।।
   § काकोलुकीयम कथा §

2. काकोलुकीयम - कथा-15

कि बुद्धिमान व्यक्ति को अपने कार्य सिद्धि के लिए शत्रु से भी मित्रता कर लेनी चाहिए मत्स्य मण्डूक कथा[1] में भी विद्या की अपेक्षा बुद्धि का बड़ा मान्य प्रदर्शित किया गया । देव के अनुकूल होने पर कम बुद्धि वाला व्यक्ति भी जीवन में सफल हो सकता है - जैसे- शतबुद्धि और सहस्रबुद्धि मत्स्य जाल में फंसकर मर गये तथा एक बुद्धिवाला मेंढक बच गया । यदि व्यक्ति स्वयं बुद्धिमान न होकर तो उसे अपने बुद्धिमान व्यक्तियों {मित्रों} के हितकारी वचनों का ही पालन करना चाहिए । अन्यथा संकट उपस्थित हो जाता है । जैसे- रासभ श्रृगालकथा[2] में रासभ ने अपने मित्र श्रृगाल की बात न मानकर गीत गाना आरम्भ कर दिया जिसका परिणाम भी वैसा हुआ । काठ से गिरे कछुवे की कथा में भी इसी की ओर संकेत किया गया है । इसी प्रकार वह विद्या भी व्यर्थ है जिसका उपयोग बुद्धिहीनता से किया जाय । क्योंकि विद्या की उपेक्षा बुद्धि ही श्रेष्ठ होती है ।

एकता की शक्ति दिखाने के लिए भी कई कथाएं कहीं गई हैं । अतः दुर्बल को देखकर उसका विरोध नही करना चाहिए। अपितु पहले उसका पराक्रम ज्ञात कर लेना चाहिए । अन्यथा पराजय प्राप्त होती है ।

---

1. पंचम तंत्र , कथा -6
2. वही , कथा - 7

लोभी व्यक्ति विभिन्न क्लेश प्राप्त करता है और कभी-कभी भयंकर विपत्ति में पड़कर विनाश कोप्राप्त हो जाता है। दूसरी कथा [1] में एक ब्राह्मण पुत्र ने अधिक मोहरों के लालच में अपने प्राण भी गवाँ दिये। चन्द्रभूपति की कथा [2] भी एक ऐसे लालची राजा की कथा है जिसने प्रचुर रत्नमाला के लोभ में अपने सम्पूर्ण परिवार का नाश कर दिया हम उस लालची गीदड़ का भी दर्शन करते हैं जिसने अधिक भोजन के लोभ से प्रत्यंचा की चोट से स्वयं अपने ही प्राण गवाँ दिये। [3]

इसलिए कहा गया है कि विपत्ति में धैर्य धारण करना बुद्धिमानों का ही कार्य है। जिस पुरुष को की बुद्धि लुप्त नहीं होती, जो संकट में भी धैर्य पूर्वक अपना कर्तव्य बनाये रखता है वही पुरुष जल में स्थित वानर की तरह संकटों को पार कर सकता है। दुखों से छूट सकता है। [4] इस कथा से यह भी शिक्षा प्राप्त होती है कि नीच व्यक्ति संगति नही करनी चाहिए।

---

1. तृतीय तंत्र, कथा, 5
2. पंचम तंत्र, कथा, 10
3. प्रथम तंत्र, कथा-3
4. समुत्पन्नेस कार्येशु बुद्धिर्यस्य न हीयते।
   स एवं दुर्नं तरति जलस्थो वानरों यथा।। चतुर्थ तंत्र, कथा।

प्राय: संगति से पुरुषों में अधम, मध्य , और उत्तम गुण आ जाते हैं तथा नीचों की संगति से प्राय: हानि ही उठानी पड़ती है[2] सज्जनों एवं बड़ों का केवल नाम ग्रहण करना ही श्रेयस्कर है ।

शिक्षा भारतीय संस्कृति की प्रमुख देन है और उसके लिए एक कपोत विहवल और बहेलिए की कथा भारतीय कथाओं में महत्वपूर्ण स्थान रखती है जिसमें यह प्रदर्शित किया गया है कि कपोत दम्पत्ति ने अपने प्राणों की आहुति देकर भी शरणागत की रक्षा की । ऐसे ही एक कथा हंसों की है जिसमें कहा गया है जो पुरुष अपने शरण में आये हुए प्राणियों पर दया नही करता उसके निश्चित अर्थ इसी प्रकार नष्ट हो जाते हैं - जैसे कि पद्म - सरोवर में हंस नष्ट होगये ।[1]

दैवगति को भी अस्वीकृत नही किया जा सकता । यदि यह प्रयासों को विफल करती है तो समृद्धि भी प्रदान करती है। अत: मनुष्य को केवल दैव का आश्रय लेकर अकर्मण्य नही रहना चाहि । अपितु निष्ठापूर्वक अपना कर्म करना चाहिए । फल की प्राप्ति हो अथवा न हो । "अनागत विधाता" और प्रत्युत्पन्नमति इन दोनो को सुख प्राप्त होता है और यदि भविष्य § जो भाग्य में होगा- इस प्रकार भाग्य के ऊपर निर्भर होकर सोचने वाला §

---

1. तृतीय तंत्र, कथा-6

नष्ट हो जाता है जैसे- तीन मत्स्यों की एतदर्थ कथा द्रष्टव्य है ।[1] वैसे ही व्यक्ति प्राप्तव्य वस्तु को अवश्य प्राप्त करता है । दैव भी उसे रोक नही सकता । इस सन्दर्भ में सागरदत्तके पुत्र की कथा उल्लेखनीय है।[2] सोमलिक जुलाहे की कथा[3] में भी यह उल्लिखित है कि भाग्य के प्रतिकूल होने पर अर्जित किया प्रचुर धन भी उपभोग नहीं किया जा सकता ।

कथाएं मूर्खों और उनके उपहासास्पद नीतियों से सम्बन्धित है । मूर्ख से न मित्रता करनी चाहिए और न ही उसे उपदेश देना चाहिए यहाँ तक कहा गया है कि बुद्धिमान शत्रु से भी अच्छा है किन्तु मूर्ख हितकारी भी ठीक नही है । किसी राजा के प्रासाद में अत्यन्त भक्त, शरीर परिचारक, अन्तःपुर में स्वेच्छापूर्वक गमन करने वाला और राजा का परम विश्वासपात्र एक बन्दर था। एक बार राजा के सोजाने पर बन्दर पंखे से हवा कर रहा थीा कि राजा की छाती पर एक मक्खी बैठ गई बन्दर द्वारा पंखे से पुनः -2 उड़ाने पर भी वह फिर आकर बैठ जाती थी।

---

1. अनागतविधाता च प्रत्युत्पन्नमतिस्तथा।।
   द्वावेतो सुखमेधेते एवं विषयों विनश्यति §।
   § प्रथम तंत्र, कथा-14 §
2. प्राप्तव्यमर्थ------ हि तत्परेषाम् । द्वितीय तंत्र, कथा4'

तदन्तर स्वभाव से चंचल तथा मूर्ख बन्दर ने क्रुद्ध होकर एक तीक्ष्ण खड्ग लेकर उसके ऊपर प्रहार कर दिया इससे मक्खी तो उड़ गई किन्तु उस तीक्ष्ण धारवाली तरवार से राजा का उर:स्थल दो टुकड़े हो गया और वह तत्क्षण मर गया ।

कुछ समयोपरान्त उन ब्राह्मणों से प्राप्त धन से बहु-मूल्य रत्न खरीदे और उस धूर्त ब्राह्मण के सम्मुख ही उन रत्नों को जंघा में रखेर अपने देश को प्रस्तान करने के लिए तैयार हुए। यह देख उस धूर्त ब्राहमण ने सोचा कि इनका तो कुछ भी धन मेरे हाथ नही लगा अतः अब मैं इनके साथ जाकर मार्ग में कहीं विष देकर इन्हें मारकर समस्त रत्नों पर अधिकार कर लूँगा । ऐसा विचार कर उसने उन व्यापारियों के सम्मुख अपना स्नेह प्रद-र्शित करते हुए करुण विलाप किया जिससे दयार्द्र होकर उन्होने उसे भी साथ ले लिया । मार्ग में पल्लीपुर जाते हुए उन पांचों को कौवों ने इस प्रकार कहना आरम्भ किया- अरे अरे । भीलों दौड़ो-दौड़ो सवा लाख के धनी जा रहे हैं । इनको मारकर सब धन छीन लो । तदन्तर भीलों ने डण्डों की मार से उन्हे जरजर कर कपड़े उतार कर देखा किन्तु कुछ भी धन न मिला । तब उन भीलों ने कहा - ओ यात्रियों । पहले कभी भी कौवों ने झूठ नही बोला इसलिए तुमलोगों के समीप जो भी धन हो

उसे रख दो अन्यथा सबकों मार कर चमड़ा फाड़कर समस्त अंगो को देखकर हम लोग धन ले लेंगे । उनकी यह बात सुनकर धूर्त ब्राहमण ने मन में विचार किया यदि इन ब्राहमणों को मार कर और शरीर फाड़कर रत्नों को ले लेंगे, तो उनके पीछे मुझे भी मार डालेंगे । अतः सर्वप्रथम मैं ही रत्नरहित शरीर समर्पित कर इन ब्राहमणों को मुक्त करा दूँ । यह निश्चय कर उसने कहा - हे भिल्लों ! यदि ऐसी बात है तो पहले मुझे मारकर देख लो तब उन्होंने वैसा ही किया और उसे धनहीन देख कर अवशिष्ट चारों को भी मुक्त कर दिया ।

मूर्ख एवं कुपात्र को दिया गया उपदेश अपनी हानि के लिए ही होता है । जैसे मूर्ख बन्दर ने एक उत्तम गृहस्थ को गृह शून्य कर दिया [1] और दूसरे ने अपने उपदेशक का प्राणान्त कर दिया ।[2] ऐसे ही जो मनुष्य मूर्खता के कारण सद्गुणों द्वारा उपदिष्ट बचनों का तिरस्कार करता है - वह घण्टाधारी ऊँट के बच्चे के समान नाश को प्राप्त होता है । मूर्ख पण्डित कथा [3]

---

1. प्रथम तंत्र, कथा-18
2. प्रथम तंत्र, कथा - 17
3. प्रथम तंत्र, कथा- 5

में यह सिद्ध किया गया है केवल शास्त्र ज्ञान वाले लोग व्यवहार वंचित व्यक्ति जिस प्रकार दुखी होते हैं ।

स्त्रियों से सम्बन्धित पंचतंत्र में विभिन्न कथाओं का भी समावेश किया गया है इसमें अधिकांश कथाएं उनके दुष्चरित्र, कपटाचरण, एवं मिथ्या प्रेम को सूचित करती है । इनमें प्रायः यह उपदेश दिया गया है कि स्त्री का संसर्ग मनुष्य के लिए अधो-मार्ग का सूचक है । अतः स्त्रियों से सावधान रहने की शिक्षा दी गई है तथा कुलटा स्त्रियों की प्रभूत निन्दा की गई उनके विषय में कहा गया है कि अपने कुल का पतन, मनुष्यों की निन्दा, बन्धन और जीवन में संशय- ये सब बातें हर समय परपुरूष में मन लगाने वाली कुलटा स्त्री स्वीकार कर लेती है कौलिक की स्त्री की कथा में यह प्रदर्शित किया गया है कि व्यभिचारिणी स्त्रियां सर्वथा त्याज्य होती है जिसके साथ ही इसमें स्त्रियों को मायाकारणी, प्रवंचना में दक्ष, अनर्थकारिणी और अन्य अनेक प्रकार से निदित किया गया है ।

विष्णु रूपधारी कौलिक की कथा [1] में कन्या के विषय में कहागया है कि इस संसार में कन्या उत्पन्न हुई तब इतने

---

1. प्रथम तंत्र - कथा-5

से ही बड़ी भारी चिन्ता उत्पन्न हो जाती है इसे किसे देना चाहिए, यह महान वितर्क उत्तन्न हो जाता है कन्या दान कर देने पर भी सुख प्राप्त करेगी अथवा नही, अतः सत्य ही कन्या का पिता होना ही कष्टदायक है । यह भी नदियों और नारियों का प्रभाव समान होता है। नदियों के दोनो कूल §तट§ स्त्रियों के दोनो कूल §मातृ-पित्र§ कुल के समान है क्योंकि नदियां जल से अपने दोनो किनारों को और नारियां दोषों से अपने दोनो कुलों को पतित करती है। अतः कन्या को ऐसी विपत्ति कहा गया है ।

वीरवर रथकार की कामासक्त विलासिनी स्त्री की कथा [1] भी एक ऐसी स्त्री की कथा है जो परपुरुषगामिनी होते हुए अपनी कूटनीति से पति को भी विश्वस्त कर लेती है इतना ही नहीं बल्कि उसका पति उसके मित्र सहित उसे कन्धे पर बैठाकर पूरे गांव में घुमाता है । यज्ञदत्त ब्राह्मण की कथा [2] में भी स्त्री की दुष्चरित्रता का प्रदर्शन है । स्त्रियों का कदापि विश्वास नही करना चाहिए क्योंकि उनके लिए कितना भी

---

1. तृतीय तंत्र, कथा ।। तथा चतुर्थ तंत्र कथा-10
2. तृतीय तंत्र, कथा-16

उत्सर्ग किया जाय । किन्तु वह अपने स्वभाव का प्रचार नहीं कर सकती । यथा एक ब्राह्मण पत्नी की कथा,[1] है जिसने अपने अर्थायु देने वाले तथा स्त्री के कारण अपने कुटुम्ब का भी परित्याग करने वाले पति के साथ विश्वासघात किया ।

किसी देश में नन्द नामक राजा था। सकलशास्त्रवेत्ता वररूचि उसका मंत्री थी एक बार उसकी स्त्री प्रणय कलह से क्रोधित हो गई वह उसे अत्यन्त प्रिय थी, अतः अनेक प्रकार से प्रसन्न करने से भी जब वह संतुष्ट नहीं हुई तो उसका पति बोला - भद्रे ! तुम किस प्र कार प्रसन्न होगी ? वही कहो, मैं अवश्य करूँगा । तब उसने कहा यदि सिर मुण्डा कर मेरे चरणों में गिरे तो मैं प्रसन्न हो जाऊँगी । वररूचि के तदनुसार करने से वह प्रसन्न होगई । उधर राजा नन्द की भार्या स्त्री उसी प्रकार रूठी थी और किसी भी भांति प्रसन्न नहीं हो रही थी । तब राजा ने कहा- भद्रे ! तेरे बिना मैं क्षण भी नहीं जी सकता । मैं चरण पकड़ कर तुझे मनाता हूँ वह बोली - तुम मुख में लगाम डालों और तुम्हारी पीठ पर मैं चढ़कर शीघ्रता से तुम्हे दौड़ायूँगी दौड़ते समय घोड़े के समान तुम हिहिनाओं तो मैं प्रसन्न हो जाऊँगी । राजा ने भी वैसा किया । तब प्रातःकाल सभा

---

1. चतुर्थ तंत्र कथा 6

में बैठे राजा के समीप वररूचि आया । उसे देखकर राजा ने जब पूछा - वररूचि । तुमने किस पर्व में सिर मुड़ाया है तब वह बोला —

न कि द्यान्न किं कुर्यास्त्रीभिरभ्यर्थितो नरः ।
अनश्वा यत्र हे षन्ते शिरः पर्वाणि मुण्डितम् ।।

स्त्री स्वभाव की दुष्टता अस्थिरता और दोष बता कर उनसे सावधान रहने की शिक्षा दी गई है । अतः पंचतंत्र स्त्री संसर्ग का निषेध करते हुए उनसे सावधान रहने का उपदेश दिया है ।

अतः किसी भी कार्य को करने से पूर्व व्यक्ति को सम्यक-रूपेण विचार कर लेना चाहिए जिससे किसी दुष्परिणाम की संभा-वना न रहे । इस आशय से सम्बन्धित कुछ कथाएं भी प्राप्त होती हैं । क्षपणक कथा[1] बिना अच्छी तरह परीक्षा करके अनुकरण करने वाले एक ऐसे नाई की कथा है जिसने मणिभद्र नामक सेठ का अविचार पूर्वक अनुकरण करते हुए सन्यासियों के बध के दोष के कारण न्यायाधीशों द्वारा मृत्यु दण्ड प्राप्त किया अतः बिना परीक्षा एवं विचार करके राज्य करने वाला क्षपणक के सदृश मृत्यु हो जाता है[2]। ब्राह्मणी नकुल कथा [3] में एक ऐसे ब्राह्मणी

---

1. पंचतंत्र, कथा-1 §2§ कुदृष्टं---- यत्र कृतम §पंचतंत्र, प्रथमश्लोक§
3. पंचतंत्र कथा 2

का चित्रण है जिसने सर्प से अपने पुत्र की रक्षा करने वाले नेवले को भ्रमवश पुत्र घाती समझ कर मार डाला किन्तु वास्तविकता ज्ञात होने पर उसे त्यधिक पाश्चाताप हुआ ।

उपदेशों ं शिक्षाओं से सम्बन्धित पंचतंत्र में ऐसी अनेक कथाओं को स्थान प्राप्त हुआ है अतः एक ओर इनसे मनोरंजन होता है और दूसरी ओर शिंग प्रेषण का कर्ष भ सम्पर्क होता है । ला फान्टेन के अनुसार "कोरा उपदेश ग्राहय नही होता, जब कथा से उसे संबद्ध कर दिया जाता है तो कार्य अपेक्षाकृत सरल हो जाता है । विषतः बालकों के संबन्ध में तो यह उक्ति अच्छरशः सत्य है यही करण है ि विष्णु शर्मा ने कथा-ग्रन्थ का िर्माण किया जिसके द्वारा अलपबुद्धि बालको को भी राजनीति के बूढ़ तत्वों एवं व्यवहारिक जीवन के नैतिक उपदेशों का ज्ञान सरलता से कराया जा सके । इस उद्देश्य की पूर्ति ें विष्णु शर्मा का प्रयास सफल हुआ ईसी कारण पंचतंत्र ।१ का विश्वव्यापी प्रचार हुआ ।

---

1. अपरीक्ष न कर्तव्यं कर्तव्यं सुपरीक्षितम् ।
पश्चात भवति संतापो ब्राहमण्या नकुले यथा।।
§ पंचतंत्र श्लोक 17 §

हितोपदेश :-

पंचतंत्र से निकले हुए अनेक ग्रन्थों में से हितोपदेश की बंगाल में प्रमुखता है । यह ग्रन्थ मुख्यतः पंचतंत्र पर ही आधारित है, जिसका स्वयं लेखक ने स्पष्टतः उल्लेख भी किया है ।[1] इसमें पंचतंत्र की राजनीतिक रोचकता का पूर्णरूपेण निर्वाह किया गया है । नारायण पण्डित ने अपना उद्देश्य स्पष्ट रूप से आचरण की तथा संस्कृत की शिक्षा बतलाया है ।[2] नीति को अधिक ग्राह्य बनाने के लिए कथा का आश्रय लिया गया है जिस प्रकार कच्चे घड़े पर उत्तीर्ण नक्काशी उसके टूट जाने तक विनष्ट नहीं होती । उसी प्रकार कथा आदि के बहाने कहीं गई नीतिविधा बालकों के कोमल हृदय में अजन्म स्थिर रहती है ।[3] उसकी भाषा सरल एवं सुबोध हैं हितोपदेश के दो उद्देश्य पूर्ण पद्य द्रष्टव्य हैं ।

---

1. पंचतंत्रात्तथा नयस्माद, ग्रन्थादाकृत्य लिख्यते । प्रस्तावना श्लोक - 9
2. प्रस्तावना, श्लोक 2
3. यन्नवे भाजने लग्नः संस्कारो नान्यथा भवेत् ।
   कथाच्छलेन बालानां नीतिस्तदिह कथ्यते ।। प्रस्तावना, श्लोक 8

इस ग्रन्थ का प्रणयन नारायण ने अपने आश्रयदाता राजा धवलचन्द्र के आदेशानुसार किया था।[1] इसकी एक प्रति 1373 ई0 की प्राप्त होती है । अतः इसका समय 14वीं ई0 से पूर्ववर्ती है हितोपदेश में रविवार के लिए भट्टारकबार §छुट्टी का दिन§ प्रयोग किया है। इस उल्लेख के कारण इनका काल बहुत पहले नही माना जा सकता है। क्योंकि 900 ई0 तक इस शब्दावली के प्रयोग का प्रचलन नही था। अतः इस उपदेश का समय 900 ई0 के बाद अर्थात 10वीं शदी ई0 रहा होगा।

हितोपदेश का विभाजन पंचतंत्र की भांति पांच तंत्रों में न होकर चार तंत्रों में हुआ है । कथामुख पंचतंत्र के समान ही है केवल राजा का नाम भिन्न है । इसमें महिलारोप्य के राजा अमरशक्ति के स्थान पर पाटलिपुत्र के राजा सुदर्शन का उल्लेख हुआ है । पंचतंत्र के लेखक ने प्रथम तथा द्वितीय तंत्रों को लेकर उनका क्रम विपर्यय कर दिया, जिससे हितोपदेश मित्र लाभ से प्रारम्भ होता है । परन्तु तृतीय तथा चतुर्थ खण्डों में उन्होने अपनी ही रीति से काम लिया है ।

---

1. श्रीमान् धवलचन्द्रोऽसौ जीयान्माण्डलिको रिपून् ।
   येनायं संग्रही यत्नात्लेखयित्वा प्रचारितः ।।
   हितोपदेश 5- 134

पंचतत्र के चतुर्थ तंत्र को पूर्णरूप से छोड़ दिया गया और प्रथम तंत्र की अनेक कहानियां हितोपदेश के नवीन चतुर्थ खण्ड में रख दी गई। पुनश्च, पंचतंत्र की अनेक कहानियां हितोपदेश में बिल्कुल छोड़ दी गई। और अनेक नई कहानियां चारों खण्डों में समाविष्ट कर दी, जिसका परिणाम यह है कि हितोपदेश में पंचतंत्र के गद्य का 2/5 भाग और पद्यों का एक तिहाई भाग प्राप्त होता है ।[1]

हितोपदेश में कथाओं की कुल संख्या 43 हैं जिसमें पंचतंत्र की 25 कथाएं उपलब्ध होती है। 43 कहानियों में 17 कहानियां नई हैं इनमें सात पशु कथाए हैं, 3 लोक कथाएं है, 2 शिक्षा प्रद कथाएं हैं और 5 षडयंत्र कथाएं हैं ।[2]

पशु-पक्षियों द्वारा नीति शिक्षा, धर्म शिक्षा और व्यवहार ज्ञान का उपदेश । अधिक आकर्षित करता है अतः बालक से लेकर वृद्ध तक सभी के लिए यह कहानियां रोचक एवं शिक्षा-

---

1. ए०बी० कीथ, संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ० 314 भाषान्तरकार- डा० मंगलदेव शास्त्री, प्रका०- मोतीलाल, बनारसी दिल्ली- पटना- वाराणसी 1960

2. डा० कपिलदेव द्विवेदी संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास पृ० 282-83 संस्कृत साहित्तय संस्थान, इलाहाबाद ।

प्रद है । इसमें नागर में सागर भरा है । जीवन के गुण और दोष - दोनो पक्षों का चित्रण इन कथाओं में माध्यम से हुआ है ।मिथ्याधर्मियों का छल-प्रद व एवं पाखण्ड, त्रिया-चरित्र सेवकों का कपट- व्यवहार, चापलूसों का स्वार्थ, साधन, धूर्तों का छिद्रान्वेषण, राजाओं की अविवेकिता आदि दुर्गुणों का व्यंग्यात्मक रीति से उद्घाटन किया गया है ।

पशुओं में केवल 7 कथाये ऐसी है जो पंचतंत्र में उपलब्ध नही होती है। इसमें सर्वप्रथम मृग, काक और गीदड़ की कथा ।[1] है जिसके द्वारा यह शिक्षा दी गईहैकि भक्ष्य भक्षक की मित्रता विपत्ति बढ़ाती है अत: जिसके साथ मेल ठीक हो उसी से मित्रता करनी चाहिए अन्यथा सियार से मित्रता करने वाले मृग के समान घोर विपत्ति में फंसना पड़ता है। द्वितीय कथा [2] द्वारा यह बताया गया है कि जो कार्य उपाय द्वारा सिद्ध हो गया है वह कभी- कभी पराक्रम से भी

---

1. प्रथम तंत्र, कथा - 2
2. वही, कथा-8

सिद्ध नही होता । यथा पंग का मार्ग से नमक करते हुए पहदा हाथी को भी क्षुद्र गीदड़ ने मृत्युमुक्त में पहुँचा दिया - ब्रहम-वन में कर्पूरतिलक हाथी रहता था। उसको देखकर समस्त गीदड़ों ने विचार किया, यदि यह किसी उपाय द्वारा मार डाला जाए तो हमारे चार मास के भोजन का प्रबन्ध हो जाए । उनमें से एक वृद्ध श्रृगाल ने यह प्रतिज्ञा की कि मैं इसे बुद्धिबल से मारूंगा । फिर उस धूर्त में कर्पूरतिलक हाथी के पास जाकर साष्टांग प्रणाम करके कहा - महाराज- कृपादृष्टि कीजिए । हाथी बोला- तू कौन है । उसने कहा - मैं श्रृगाल हूँ, वन के समस्त पशुओं ने पंचायत करके आपके समीप भेजा है कि बिना राजा के यहाँ रहना योग्य नही है ।

कर्पूरतिलक भी राज्यलोभ के वशीभूत होकर श्रृगाल के पीछे दौड़ते हुए गहरे कीचड़ में फंस गया । तब उस हाथी ने कहा - मित्र । अब क्या करना चाहिए । मैं पंक में फंस गया और अब मरता हूँ । यह देखकर गीदड़ ने हंस कर कहा - महाराज! मेरी पूँछ का अवलम्बन कर उठो । जैसा तुमने मुझ सदृश्य व्यक्ति के कथन का विश्वास किया वैसा ही अब शरणरहित दुःख का अनुभव करो । अनन्तर सब श्रृगालों ने मिलकर उस हाथी का भक्षण

कर लिया । इसीलिए कहा है कि उपाय द्वारा व्यक्ति असम्भव और अशक्त कार्य करने में भी समर्थ हो जाता है ।

तृतीय पशुकथा [1] में राजनीति शिक्षा है कि जो स्वामी के हित में इच्छा से ~~xx~~ पराधिकार चर्चा करता है । वह धोबी के उस गधे के समान मारा जाता है जिसने घर में चोर घुस आने पर कुत्ते के स्थान पर स्वयं ही रेंकना प्रारम्भ कर दिया । था चतुर्थ कथा[2] भी स्वामी सेवक के व्यवहाररूप ज्ञान से संबन्धित है । जैसा कि कहा गया है - सेवकों द्वारा स्वामी को कभी निरपेक्ष नहीं करना चाहिए । क्योंकि सेवक स्वामी को निरपेक्ष करके दधिकर्ण मार्जार की भांति मारा जाता है --

अर्बुदशिखर नामक पर्वत पर दुर्दान्त नामक एक अत्यन्त पराक्रमी सिंह रहता था। उस पर्वतकन्दरा में सोते हुए सिंह के केसरों को एक चूहा नित्य काट जाया करता था। तब वह f सिंह केसराग्र को कटा हुआ देखकर क्रोध में विवर के भीतर घुसे

---

1. सुहृद्भेद - कथा 2
2. वही - कथा 3

हुए चूहे को न प्राप्त कर सकने के कारण सोचने लगा - यदि शत्रु छोटा हो और पराक्रम से भी अलभ्य हो तो उसे मारने के लिए उसके सदृश घातक को आगे कर देना चाहिए ।

यह विचार कर उसने गांव में जा और विश्वास देकर दधिकर्ण नामक विलाव को यत्न से मिलाकर मांस का आहार देकर अपनी कन्दरा में रख लिया । उसके भय से चूहा भी बिल में छिपा रहता था अतः सिंह भी निश्चिंत होकर सोता था और जब चूहे का शब्द सुनता था तब वह मांस के आहार से उस विडाल को तृप्त करता था ।

तदन्तर एक दिन क्षुधापीड़ित विवर से बाहर विचरण करते हुए उस चूहे को विडाल ने मार डाला और भक्षण कर लिया । बाद में उस सिंह ने बहुत साल तक उस चूहे को जब नही देखा और उसका किया हुआ शब्द भी नही सुना तो विलाव के उपयोगी न होने से उसके भोजन में भी कमी करने लगा फिर व दधिकर्ण आहार - विहार से दुर्बल होकर दुखी हुआ ।

एक दिन ग्रीष्म काल में कोई परिश्रान्त पथिक उस वृक्ष के नीचे धनुष वाण रख कर सो गया थोड़ी देर में उसके मुख पर से वृक्ष की छाया ढल गई। सूर्य के तेज से उसके मुख को तपता

देखकर वृक्ष पर बैठे हंस ने दया के वशी भूत होकर पंख फैलाकर उसके मुंख पर छाया कर दी फिर गहरी नींद के आनन्द से पथिक ने मुख फाड़ दिया । यह देख पराये सुख को सहने में असमर्थ कौवे ने दुष्टता के कारण उसके मुख में वीट त्याग कर दी और उड़ गया । अनन्तर उस पथिक ने जागकर जो ऊपर देखा तो पंख फैलाये हंस दिखा । अतः उसने उसे ही दोषी समझ कर वाण से मार दिया ।

एक बार गरूण जी की यात्रा के निमित्त सब पक्षी समुद्र तट पर गये फिर कौवे के साथ एक बटेर भी चल दिया मार्ग में जाते हुए एक अहीर की दधि की हांडी में से बार बार वह कौवा दही खाने लगा फिर ज्यों ही अहीर ने दही के पात्र को धरती पर रखकर इधर- उधर देखा त्योंही उसको कौवा और बटेर दिखाई दिए। फिर उसके द्वारा खदेड़े जाने से कौवा तो उड़ गया और अपराधहीन मन्दगति बटेर पकड़कर मार डाला गया ।

हितोपदेश में षडयंत्र कथाओं की संख्या 5 हैं इनमें प्रायः स्त्री दुष्चरित्रता का ही चित्रण है। वृद्ध चन्दनदास की और युवति स्त्री की कथा [1], राजकुमार तथा बनिए के पुत्रबधू की कथा[2]

---

1. प्रथम तंत्र, कथा-5 §2§ वही कथा 7

कन्दर्पकेतु नामक सन्यासी, ए वणिक, ग्वाला और उसकी व्यभिचारिणी स्त्री तथा दूती नायन की कथा[1] एक ग्वाले की व्यभिचारिणी स्त्री तथा कोतवाल और उसके पुत्र की कथा[2] और रत्नप्रभा तथा उसके सेवक की कथा[3], इसी कोटि की है। इन सभी कथाओं के द्वारा स्त्री स्वभाव की सफलता का उल्लेख किया गया है।

हितोपदेश की समस्त कथाएं किसी न किसी उपदेश अथवा शिक्षा का सम्प्रेक्षण करती है, जैसा कि उसके नाम से भी स्पष्ट है। किन्तु उन शिक्षा प्रद कथाओं की संख्या दो है जो अन्य संस्करणों मे अनुपलब्ध है। प्रथम कथा[4] उस चूहे की है जिसे महातपनाम एक धार्मिक तपस्वी ने क्रमशः बिल्ली, कुत्ते और व्याघ्र में बदल दिया, पर जब वह अपने उपकारी को ही विनष्ट करने का उद्धत हो गया तो तपस्वी ने पुनः उसके पूर्व रूप में

---

1. द्वितीय तंत्र, कथा -5
2. वही , कथा 6
3. चतुर्थ तंत्र , कथा 3
4. वही कथा 5

परिवर्तित कर दिया ।[1] अतः नीच व्यक्ति को उच्च पद कभी नही देना चाहिए क्यों कि वह उसका दुरूपयोग करने लगता है ।

हितोपदेश की रचना का भी प्रमुख ध्येय सरल मति बालको को भाषा ज्ञान के साथ - साथ व्यवहार ज्ञान भी कराना था इस लिए इसकी कथाओं में भी इसका उल्लेख मिलता है । इसी कारण हितोपदेश का प्रचार- प्रसार भी पंचतंत्र से न्यून नही है । प्रायः संस्कृत की प्रारम्भिक शिक्षा का ज्ञान कराने के लिए इसी ग्रन्थ का अध्ययन कराया जाता है ।

वेताल पंचविंशति :-

" वेतालपंचविंशति", एवं "सिंहासनद्वात्रिंशिका" कथाओं की गणना वैयक्तिक अथवा जीवन वृत्त से संबद्ध कथाओं के अन्तर्गत की जाती है । क्योंकि ऐतिहासिक अथवा ऐतिहासिक

---

1. यह कथा संभवतः महाभारत में दी गई है यह एक कुत्ते की उसी प्रकार की कथा का केवल एक संशोधित संस्करण है , पृ0 314, ए0बी0 कीथ, संस्कृत साहित्य का इतिहास भाषान्तरकार- डा मंगलदेव शास्त्री प्र0- मोतीलाल बनारसी दास, दिल्ली- पटना- वाराणसी 1960

प्राय व्यक्तियों से सम्बद्ध होती है। जन्तु तथा मानवीय कथा तथा अति मानवीय कथा, इन तीन पात्रानुसार विभाजनों के अन्तर्गत इन कथाओं के पात्र मुख्यत: यक्ष - यक्षिणियां, अप्सराएं, पुतलियां, भूत, पिशाच, वेताल आदि होते हैं। उनकी गणना अति मानवीय कथाओं के अन्तर्गत होती है। यह कथाएं मनो-रंजक होने के साथ - साथ मानव को उदात्त चरित्रों की ओर आकर्षित करती है।

वेताल पंचविंशति का भी इस साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान है संस्कृत की सुन्दर एवं सुनिर्मित कथाओं का यह एक रोचक संग्रह है। विक्रम और वेताल की कथाएं क्षेमेन्द्र तथा सोमदेव के वृहत्-कथा के संस्करणों में मिलती है। किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि यह एक स्वतंत्र कथा चक्र था जो मूलत: वृहत्कथा का अंग नही रहा होगा। ये बुद्धस्वामी के संस्करण में नही मिलती और इनमें से पचीस कहानियां स्वयं अपने में ही उस वेतालपंचविंशति में आती है जिसके अनेक पाठ उपलब्ध हैं। और जिनमें से सर्वा-धिक महत्वपूर्ण सम्भवत: 15वीं शताब्दी के शिवदास तथा जम्भल-दत्त के संस्करण है। शिवदास 1200 ई० कृत संस्करणों में गद्य और पद्य दोनो हैं।

वेताल पंचविंशति की कथाएं न केवल भारतीय साहित्य के

लिए भी समान्य रूप से महत्वपूर्ण हैं और विभिन्न कथाएं अनेक विदेशी भाषाओं में भी उपलब्ध होती है । इसकी आधार कथा का स्वरूप लोक कथा की भांति है जिसमें पंचविंश कथाएं गु - म्फित की गई हैं । कृष्ण चैतन्य इसकी आधार कथा को अत्यंन्त क्षीण मानते हैं । राजा त्रिविक्रमसेन प्रत्येक वर्ष एक तपस्वी[1] से एक फल प्राप्त करते हैं । अचानक एक दिन राजा को ज्ञात होता है कि प्रत्येक फल के भीतर एक रत्न छिपा हुआ है । आभार प्र- दर्शन हेतु वे जब उस तपस्वी के समीप जाते हैं तो तपस्वी उनसे श्मशान में जाकर वृक्ष से लटकता हुआ एक शव उतार कर लाने के लिए कहता है । वह शव तपस्वी किसी तांत्रिक कृत्य की सिद्धि के लिए प्राप्त करना चाहता है । उस शव में एक वेताल ने निवास बना रखा था । जो राजा के बोलते ही वापस वृक्ष पर चला जाता था । राजा ने साहस का त्याग नहीं किया और पुनः पुनः उस वेताल अधिष्ठित शव को लाने का प्रयास किया । राजा का साहस देखकर वेताल प्रसन्न हुआ और उसका मार्ग श्रम दूर करने

---

1. सोमदेव के संस्करण में वह भिक्षु है, क्षेमेन्द्र के संस्करण में श्रवण कथा शिवदास में दिगम्बर ।

के लिए कहानी सुनाने लगा उसने शर्त यह रखी कि मार्ग में यदि राजा ने मौन भंग किया तो वह वापस वृक्ष पर चला जायेगा कथा की समाप्ति एक पहेलिका के रूप में होती है जिसका उत्तर देना राजा के लिए अनिवार्य हो जाता है । और प्रतिज्ञानुसार मौन भंग होने पर वेताल पुनः वृक्ष पर लौट जाता है । उस बेताल ने क्रमशः 23 कथाएं कहीं और हर बार उत्तर प्राप्त कर बेताल वापस लौट गया राजा अंतिम कथा का समाधान नहीं कर पाता तब बेताल राजा को यह बताता है कि वह भिक्षु वास्तव में राजा को मारकर उसका राज्य प्राप्त करना चाहता है ।

अन्त में बेताल द्वारा बताये गये उपाय से भिक्षु को मार कर राजा स्वयं उसके अभिलषित्त विद्याधरों के चक्रवर्ती राजा होने की सिद्ध प्राप्त कर ली इस भांति कथानकों को एक पहेलिका की ओर अग्रसर करने वाला एक नवीन दृष्टिकोण जिसके अनुसार इन कथानकों को रचा गया है । इस चक्र को अन्य कथा चक्रों की अपेक्षा कहीं अधिक विचारोत्तेजक बना देता है ¹ अतः कथाएं प्रायेण विशेष उत्तेजक हैं जो रोचकता के साथ-साथ समाप्त होने

---

1. चैतन्य कृष्ण संस्कृत साहित्य का नवीन इतिहास पृ0 406.

पर प्रश्न का स्वरूप धारण कर लेती है । कथाएं इस प्रकार हैं :-

1. वज्र मुकुट नामक राजपुत्र और पदमावती की कथा
2. राजा और भिक्षु की कथा ।
3. शुक और सारिका की कथा।
4. सुद्रक और वीरवर की कथा ।
5. मन्दारवती नामक कन्या के विवाह की कथा।
6. राजा चन्द सिंह और राजपुत्र की कथा ।
7. सोमप्रभा के विवाह की कथा ।
8. धवल नामक धोबी और मदन सुन्दरी की कथा।
9. राजपुत्र वीरदेव की कथा ।
10. ब्राहमण पुत्र विष्णुशर्मा की कथा ।
11. राजा धर्मध्वज की रानियों की कथा ।
12. वणिक पुत्र अर्थदत्त की कथा ।
13. राजा वीरकेतु और वणिकपुत्री रत्नदत्त की कथा।
14. हरिस्वामी ब्राहमण की पत्नी लावण्यवती की कथा ।
15. राजा यश:केतु और राजमंत्री की कथा ।
16. राजा यशोधन और वैश्यपुत्री उन्मादिनी की कथा ।
17. राजपुत्री शशिप्रभा की कथा ।

18. जीमूतवाहन की कथा ।

19. धर्म नामक राजा और रानी की कथा

20. देवसोम नामक ब्राह्मण पुत्र की कथा ।

21. विष्णुस्वामी नामक ब्राह्मण पुत्र की कथा।

22. अनंगमंजरी नामक वैश्यपुत्री की कथा ।

24. राजा चन्द्रप्रभा और मंत्रिपुत्र चन्द्रस्वामी की कथा ।

25. राजा चन्द्रलोक और मुनिकन्या की कथा ।

26. राजा सूर्य प्रभा और वैश्यकन्या धनवती की कथा ।

इन समस्त कथाओं द्वारा मनोरंजन तो होता ही है उसके साथ ही राजा के बुद्धिमता पूर्ण उत्तरों से एक योग्य शासक की व्यवहार कुशलता , प्रत्युत्पन्नमति तथा उत्साह का भी ज्ञान होता है ।

कथाएं तो अत्यन्त रोचक हैं और विभिन्न भारतीय भाषाओं के साथ - साथ भारतीयेतर भाषाओं में भी उनके अनुवाद हुए है केवल अंतिम कथा का उत्तर देने में राजा असमर्थ रहा । जो उन बच्चों के पारस्परिक सम्बन्ध के विषय में भी जिनका पिता अपने ही पुत्र से विवाह करने वाली स्त्री की पुत्री से शादी कर लेता सहसा । की हुई प्रतिज्ञाओं और आत्मसम्मान की भावना के एकत्रित हो जाने से ही यह अद्भुत संकट उपस्थित हुआ था ।राजा

और उसके पुत्र ने दो स्त्रियों के पादचिन्हों को देखा पुत्र अपने पिता को राजी कर लेता है कि वह बड़े पैरो वाली स्त्री से और वह स्वयं छोटे पैरो वाली से विाह कर ले। वस्तुत: माता- छोटे पैरो वाली कनली और पुत्र बड़े पैरो वाली अत: पिता का पुत्री से तथा माता का पुत्र से विवाह हो गया।

एक अन्य कथा[1] ऐसी कन्या से सम्बन्धित है जिसके तीन प्रतिस्पर्धी रहते हैं। किन्तु वह कन्या मन्दारवती विवाह के पूर्व ही मर जाती है। उसके दाह संस्कार के उपरान्त एक ब्राहमण पुत्र उसी के भष्म पर कुटी बनाकर सयन करता हुआ समय बिताने लगा। दूसरा उसकी हस्थियों को गंगा जी में प्रवाहित करने के लिए ले गया। तीसरा साधू बनकर देश-भ्रमण करने लगा कुछ समय उपरान्त तृतीय व्यक्ति मरे को जिलाने की विद्यासीख कर आया और मन्त्र पढ़कर थोड़ा सा जल मंदारवती की भष्म पर डाल दिया जिससे वह पुनर्जीवित हो गई। अब तीनों में झगड़ा होने लगा कि वह किसकी पत्नी बने

---

1. मन्दारवती के विवाह को कथा पृ0 19-23
वेतालपंचविंशति : व्याख्याकार- पं0 दामोदर झा साहित्यचार्य चौखम्बा वाराणसी 1968

जिसने उसे जिलाया वह कहता है कि मैंने इसे जीवित किया अतः यह मेरी पत्नी होगी । दूसरे का कहना था कि मैंने इसकी अस्थियों का गंगा में प्रवाह किया, जिससे मृत्युत्पन्न करने वाला इसका पाप नष्ट हो गया जिससे यह जी गई । अतः यह मेरी पत्नी होगी । प्रथम कहता था कि यदि मैं इसका अवशेष भष्म सुरक्षित न रखता तो मंत्र से भी क्या यह जीवित हो सकती थी। अतः वेताल ने राजा से प्रश्न किया कि इन तीनों में से किसके साथ इस लड़की का विवाह होना न्यायसंगत है राजा ने उत्तर दिया- जिसने उसे मंत्र से जिला, वह पिता का कार्य करने से पिता होगा, पति नहीं । जिसने गंगा जी में अस्थि विसर्जन किया वह भी पुत्र का कार्य करने से उसका पुत्र है, पति नहीं । किन्तु जिसने उसके भष्म के साथ सयन करके समय बिताया है केवल उसी ने प्रेमी का कार्य किया इसलिए वह उसीकी पत्नी होगी ।

सुक और सारिका की कथा[1] में दो लघु कथाओं द्वारा स्त्री स्वभाव की दुष्टता तथा पुरुष स्वभाव की दुष्टता का चित्रण करके राजा से यह प्रश्न किया गया है कि दोनों में कौन अधिक दुष्ट स्वभाव का होता है । राजा उत्तर देते हैं कि पुरुष कहीं

---

1. पृ० 24-33, वही

कोई दुष्ट स्वभाव का पाया जाता है, स्त्रियां तो अधिकतर दुष्ट स्वभाव की होती ही हैं ।

एक अन्य कथा एक ही स्त्री से सम्बन्धित है जिसका पति और भावी एक देवी के मंदिर पर अपना- अपना सिर काट कर बलि दे देते हैं पत्नी दोनों सिर रहित शवों को प्राप्त करती है और विलाप करती हुई देवी की स्तुति करती है । देवी कृपा करती हैं और सिरों को धड़ों को जोड़ने को कहती है स्त्री घबराहट में पति का शरीर भाई के सिर पर और भाई का सिर पति के शरीर पर जोड़ देती है अब प्रश्न यहाँ यह है कि उसका पति कौन है । राजा उत्तर देता है कि - जिस धड़ पर उसके पति का सिर है वही उसका पति होगा । क्योंकि सम्पूर्ण शरीर में सिर ही उत्तमभाग है ।

दुराराध्य भोगासक्तों के दर्शन भी एक कथा [1] में होते है । विष्णुशर्मा के तीन पुत्रों में एक राजा प्रदत्त उच्चस्तरीय व्यंजनों का स्पर्श इसीलिए नही करता क्योंकि अपनी तीव्र घ्राण शक्ति से उसने यह ज्ञात कर लिया था कि उसके सामने प्रस्तुत चावल एक श्मशान है श्मशान के निकट के खेत में उगाया गया

---

1. विष्णुशर्मा, ब्राह्मण पुत्र की कथा पृ0 69-74, वही

था क्योंकि उसमें मुर्दे के जलने की गंध आरही थी ।

एक अन्य विचित्र कथा[1] एक ऐसी स्त्री से संबन्धित है जिसका उदार पति यह जानकर कि विवाह के पूर्व उसकी पत्नी एक अन्य व्यक्ति से प्रेम करती थी, उसे अपने प्रेमी से अन्तिमबार मिलने देता है । रात्रि में सजधजकर अपने प्रेमी के समीप जाते समय मार्ग में उसे एक डाकू मिलता है और सत्य घटना ज्ञात कर उसे जाने देता है । प्रेमी भी उस स्त्री की सत्य निष्ठा देखकर उसका धर्म नष्ट किये बगैर लौटा देता है । अब पति, प्रेमी और चोर इनमें सर्वाधिक सज्जन कौन है । राजा का उत्तर था - उसका पति तथा प्रेमी उच्चवंश के थे । वे परिस्थिति में उस प्रकार के त्याग उच्चकुल के व्यक्तियों के लिए उचित ही है ।

धनवती नामक एक वैश्य कन्या का विवाह शूली पर लटके एक चोर से हुआ जिसकी आज्ञा से कुछ अशर्फियो के बदले एक ब्राहमण कुमार से उसे एक क्षेत्रज पुत्र उत्पन्न हुआ चोर ने मृत्युपूर्व लाखों की असर्फियां उस वैश्यपुत्री तथा उसकी माता को दी । वैश्य -

---

1. धर्मध्वज नामक राजा की रानियों की कथा पृ0 79-85, वही ।

ने अपने पुत्र को स्वप्न दर्शन के अनुसार कुछ अशर्फियों सहित राज द्वार पर रखवा दिया । उधर राजा ने भी शिव की अनुकंपा जानकर उस बालक तथा अशर्फियों को मंगवा लिया और पुत्र वत पालन किया ।

कुछ कथाएं अधिक गहन स्तरों पर भी स्पर्श करती है । एक राजा को ज्ञात होता है कि उसके द्वारा अज्ञान वश किए गये पाप की मुक्ति एक सात वर्षीय बालक की बलि द्वारा हो सकती है ऐसे माता-पिता का पता लगता है जो अत्यन्त विपन्नता के कारण अपने बालक को बेचने के लिए तैयार हैं ।

एक अन्य कथा चार ब्राहमण पुत्रों से सम्बन्धित है जिन्होंने मूर्खता वश स्वयं अपना ही नाश किया । कुसुमपुर नगरमें विष्णुस्वामी ब्राहमण के चार पुत्र धन तथा मान प्राप्त करने के लिए चारों चार विभिन्न दिशाओं में विशेष गुण अर्जित करने गये लौटने पर एक ने कहा कि मैंने ऐसा विज्ञान सीखा है जिससे किसी भी प्राणी की हड्डी मिलने पर उसके योग्य मांस उत्पन्न कर सकता हूँ । दूसरे ने कहा कि मैं हड्डी

---

1. कथा 20, पृ0 178-190, वही

मांस से युक्त प्राणी के शरीर में चर्म तथा उचित रोवें उत्पन्न कर सकता हूँ तीसरे ने कहा कि मैं अपने विज्ञान के बल पर किसी पंछी के हड्डी मांस चर्म- रोम से युक्त शरीर में चक्षु आदि इन्द्रियों का निर्माण कर सकता हूँ । चौथे ने कहा कि मैं किसी भी प्राणी के सम्पूर्ण अवयवों से संयुक्त शरीर में प्राण संचार कर सकता हूँ । चौथे ने उसमें ज्यों ही प्राण संचार किया कि उस सिंह ने उठकर प्रथम अपने जिलाने वाले चारों को मार डाला और वन में चला गया ।

वैतालपंचविंशति कीकथाओं को प्रसिद्धि प्राप्त होने का कारण उनकी वह रोचक शैली है । जिसके द्वारा उन्हें प्रस्तुत किया गया है। यही कारण है कि पाठक में कुतूहल तथा जिज्ञासा उत्पन्न करके उनकी रूचि को बढ़ाकर अन्त में उनका उचित समाधान कर दिया गया है । मनोरंजन के साथ साथ यह कथा नीति अथवा उपदेश का ज्ञान भी कराती है ।

शुकसप्तति :-

नीतिकथाओं और लोक कथाओं में मुख्य अन्तर यह है कि नीति कथाओं का उद्देश्य उपदेशात्मक होता है तथा इनके पात्र प्रायः जीव जन्तु होते है, परन्तु लोककथाओं का उद्देश्य

मुख्यत: मनोरंजन होता है तथा इसके पात्र मनुष्य आदि होते हैं, उनमें श्रृंगार आदि रसों का परिपाक, भाषा की प्रौढ़ता तथा काव्य सौन्दर्य आदि गुण भी मिलते हैं ।[1]

कृष्ण चैतन्य का कथन है कि शुकसप्तति भयावह मनोरंजन का उदाहरण है विण्टरनित्स शुकसप्तति को भारत की सर्वप्रथम एवं सार्वजनिक लोक कथाओं में प्रतिष्ठित करते हैं । कीथ[2] एवं एस० एस० दास गुप्ता[3] की दृष्टि में कथायें उपदेशप्रद नहीं हैं । डा० कपिलदेव[3] ने इसे नीति कथाओं में सन्निविष्ट करते हैं वस्तुत: लोक कथाओं मनोरंजन के साथ-साथ शिक्षा सम्प्रेषण का भी कार्य करती हैं जिस प्रकार नीति कथाओं का उद्देश्य सदाचार एवं लोक-शिक्षा, राजनीति हैं वैसे ही लोककथाओं का उद्देश्य शिक्षा और मनोरंजन है ।[4] शुकसप्तत में कुटलाओं तथा परनारी

---

1. डा० कपिलदेव द्विवेदी, संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ०583
2. यह कहना कठिन है कि कथायें उपदेश प्रद हैं, उनमें से लगभग आधियों से सम्बन्ध वैवाहिक बंधन के भंग से हैं, शेषों में सामान्यत: वेश्याओं से संबद्ध मक्कारी के अन्य उदाहरणों का प्रदर्शन
3. संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास, पृ० 464
4. डा० बाबू राम त्रिपाठी, संस्कृत साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ० 384

पराजण पुरुषों के आचरणों को समने रखकर उनके प्रति घृणा उत्पन्न कर अप्रत्यक्ष रूप से सदाचार की शिक्षा का ही पोषण किया गया है ।[1]

शुकसप्तति की कथाएं विभिन्न सुभाषितों एवं नीति परक पद्यों से समन्वित हैं, जो किसी न किसी शिक्षा अथवा उप- देश का संप्रेषण करती है अतः ये कथाएं न केवल स्त्री चरित्र के विभिन्न पक्षों पर प्रकाश डालती है बल्कि जीवन के अनेक महत्व- पूर्ण तथ्यों पर भी प्रकाश डालती है और जन सामान्य को उन उद्देश्यों के पालन की शिक्षा देती है ।

पूर्णा की कथा[2] एक ऐसी स्त्री से सम्बन्धित है जो परपुरुष रमण के लिए प्रस्थान करती हैं किन्तु दुर्योगवश पर- पुरुष के स्थान पर उसका पति ही उपस्थित रहता है तब वह चतुराई से यह बहाना बनादेती हैं कि मैं तुम्हारी परीक्षा ले रही थी । कि तुम जो कहते हो कि – " मेरा अन्य कोई बल्लभा नहीं हैं वह सत्य है या नहीं इस प्रकार वह पति के साथ विश्वासघात

---

1. संस्कृत साहित्य का संक्षिप्त इतिहास, अध्यापक वृन्द, संस्कृत विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रकाशक- भट्ट संस्कृत साहित्य भण्डार । §2§ प्रथमा कथा, पृ0 10

करके भी स्वयं को निर्दोष सिद्ध करते हुए पति पर भी मिथ्या को दोषारोपण कर देती है ।

विषकन्या विवाह की कथा[1] गोविन्द नामक ब्राह्मण की है जो गुरुजनों की अवज्ञा करके विषकन्या से विवाह कर लेता है और अन्त में पराभव को प्राप्त होता है । अतः इस कथा का मुख्य ध्येय यही है कि वृद्धजनों की शिक्षा की अवहेलना नहीं करनी चाहिए । बालपण्डिता की कथा[2] में श्री स्त्री चरित्र की अगम्यता का प्रदर्शन है । दशम तथा शृंगारवती नामक स्त्री से सम्बन्धित है ।

शुकसप्तति में उपलब्ध इन अनेक कथाओं द्वारा जीवन के विभिन्न पक्षों का चित्रण हुआ है जिनमें स्त्री विषयक कथाओं का आधिक्य है । जिनमें पराया उसके दुष्चरित्र के सम्बन्धित कथा है । कुछ कथाओं में अश्लीलता का दोषारोपण भी किया जाता है किन्तु डा० रमाकान्त त्रिपाठी इसे एक उत्कृष्ट ग्रन्थ की कोटि में ही परिगणित करते हैं ।[3] अतः ये

---

1. चतुर्थ कथा, पृ० 22.

2. पंचत कथा पृ० 30

3. शुकसप्तति के अध्ययन से परिलक्षित होता है कि ग्रन्थकार ———था । पृ० 18.

कथाएं स्त्रीचरित्र के विविध पक्षों को प्रकाशित करने के साथ ही सा.थ अनेक सदाचार एवं नीति विषयक तथ्यों का भी उदघाटन करती हैं ।

सिंहासनद्वात्रिंशिका की कथा :-
=====================

वैतालपंचविंशति की भांति सिंहासनद्वात्रिंशिका की गणना भी अतिमानवोय कथाओं के द्वारा की जाती है । क्योंकि इसके पात्र मुखयतः पुतलिकाएं हैं, इसलिए इस ग्रन्थ को द्वात्रिंसत्पुतिलिका के नाम से भी जाना जाता है। 32 पुतलिकाएं मुख्य रूप से राजा विक्रमादित्य के न्याय से सम्बद्ध कथा का वर्णन करती हैं । इस दृष्टि से इन्हें वैयक्तिक अथवा जीवन वृत्त के सम्बद्ध कथाओं के अन्तर्गत भी रखा जा सकता है ।

आधार कथा द्वारा यह ज्ञात होता है कि ग्यारहवी शताब्दो के धारराज भोज भूमि में पड़ा एक सिंहासन प्राप्त करते है, जिसे मूलतः इन्द्र से राजा विक्रमादित्य ने प्राप्त किया था इस सिंहासन के चतुर्दिक 32 मूर्तियां अभिथिष्ठित थी जो वस्तुतः 32 कन्याओं की आत्माएं थी और पारवती के शापवश

मूर्तित्व हो गई थीं, राजा भोज ज्यों ही इस सिंहासन पर आ-
रूढ़ होने को उद्यत होते हैं त्यों ही एक मूर्ति सजीव होकर
उन्हे चेतावनी देती है कि विक्रमादित्य तुल्य महान व्यक्ति
इस सिंहासन पर बैठ सकता है ।

सिंहासनद्वात्रिंशिका में उपलब्ध 32 कथाएं वैतालपंचविंशति
की कथाओं की अपेक्षा म सजीव है उनका कुछ अंश प्रौढ़ता की
दृष्टि से न्यून है और उसमें लेखक की अपरिपक्वता परिलक्षित
होती है[1] । अधिकांश कथाए प्राय: राजा के वीरोचित कार्यों
को प्रदर्शित करने के लिए की गई हैं ।

विक्रमादित्य के शासन काल में अवन्ति नगरी के सामान्य
प्रजाजन बहुत अच्छे थे जो भी सामग्री बाजार में विक्रय के लिए
लाई जाती है, यदि संध्या तक उसमें कुछ अवशिष्ट रहा जाता
है तो राजाज्ञा से यथोचित मूल्य पर उसे खरीद लिया जाता
ताकि किसी को भी शासन के विरुद्ध यह शिकायत न हो कि
अमुक वस्तु का कोई ग्राहक नही था तदन्तर एक धूर्त ने निर्ध-
नता की एक लौह प्रतिमा निर्मित की और उसे अवन्ति लाकर
उसका मूल्य एक सहस्र दीनार निर्धारित किया । राजा
ने लक्ष्मी को रोकने का बहुत प्रयास किया किन्तु अन्त में उसे

1. विण्टरनित्स, पृ0 373

हार माननी पड़ी और लक्ष्मी राजा से विलग हो गई लक्ष्मी के जाने के उपरान्त " विवेक" उपस्थित हुआ और बोला, हे राजन !, जहाँ निर्धनता हो वहाँ हमारा निवास नही हो सकता । लक्ष्मी तो चली गई अत : मैं भी जा रहा हूँ यह कहकर वह भी प्रयाण कर गया । उसके गमन के कुछ समय उपरान्त " सत्य भी उपस्थित हुआ और बोला- महाराज- मैं भी ऐसे स्थान में नही रहा सकता जहा निर्धनता हो ।

इस पर राजा ने कहा कि इस निर्धनता के कारण मैं शीर्ष विहीन सदृश हुआ जा रहा हूँ क्योंकि तुम्हारे अभाव में जीवन व्यर्थ है यह कहकर वह शिरोच्छेदन का उद्दत हो जाता किन्तु " सत्य उसे ऐसा करने से रोकता है । और उसके पास ही रूकजाता है ।

संस्कृत कथा साहित्य में मुख्य रूप से यही दीक्षा दी गई है कि सत्यहीन व्यक्ति का जीवन निरर्थक हैं क्योंकि उसके अभाव में व्यक्ति का जीवन का कोई मुल्य नही रह जाता ।

संस्कृत साहित्य के मूल्यांकन की दृष्टि से भारतीय कथा

साहित्य भी उस कथा में सर्वश्रेष्ठ माना जाता है और अन्तत: भारतीय कथाएं ही विश्व कथा साहित्य का उद्गम श्रोत मानी जाती हैं। भारतीय साहित्य की विश्व साहित्य के लिए जो देन है उसमें इस साहित्य " कथा" का विशेष महत्व है।

इन कथा ग्रन्थों के अतिरिक्त अन्यानेक कथा ग्रन्थों की रचना संस्कृत साहित्य में परिवर्तित काल तक होती रही उन सभी का विस्तृत विरण देना सम्भव नही है अत: प्रमुख ग्रन्थों का नियंत्रण लिया गया है।

संस्कृत कथा कहानियों का संसार में इतना अधिक प्रचार हुआ है कि वह विश्व साहित्य का एक अंग बन गई हैं। संस्कृत आख्यान साहित्य का यह विश्वव्यापी प्रसार संसार के साहित्य का एक परम विस्मयोत्पादक एवं रोचक विषय है।

उपयुक्त अनुवादकों के द्वारा भारत की कहानियों का प्रचार देश देशान्तर में हुआ तथा भारतीय सभ्यता और संस्कृति का परिचय भी विदेशियों को मिला। एक आलोचक ने ठीक ही कहा है कि भारतीय आख्यान जितने विचित्र हैं, उससे कहीं अधिक वि" चित्र आर्य आख्यान साहित्य के विश्व विषय की कथा है।

———x———

प रि शि ष्ट

---x---

सहायक ग्रन्थों की नामावली

==========================

परिशिष्ट

सहायक ग्रन्थों की नामावली

1.7 संस्कृत साहित्य का इतिहास - डा० बचनदेव कुमार नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 23 दरियागंज, नई दिल्ली ।

2. संस्कृत साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास— डा० रा: बाहु त्रिपाठी, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा प्रथम संस्करण, 1973.

3. संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास-पं० कपिलदेव द्विवेदी, संस्कृत साहित्य संस्थान, इलाहाबाद ।

4. संस्कृत साहित्य का इतिहास — कीथ, अनुवादक- मंगलदेव शास्त्री, मोतीलाल बनारसी लाल, वाराणसी, द्वितीय संस्करण 1967.

5. संस्कृत साहित्य का संक्षिप्त इतिहास -- अध्यापक—वृन्द संस्कृत विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय इलाहाबाद ।

6. संस्कृत साहित्य का इतिहास-- कृष्णामाचार्य, मोतीलाल बनारसीदास, 1970.

7. प्राचीन भारतीय साहित्य-विण्टरनित्स , अनुवादक-
लाजपत राय, मोती लाल बनारसी दास जवाहर नगर दिल्ली

8. संस्कृत साहित्य का इतिहास - बलदेव उपाध्याय, शारदा
संस्था, वाराणसी 1973.

9. ऐतरेय ब्राह्मण- अनुवादक, पं० गंगा प्रसाद उपाध्याय
हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग ।

10. संस्कृत साहित्य में नीति कथा का उद्गम एवं विकास
डा० प्रभाकर नारायण कवठेकर, प्रकाशक - चौखम्बा
संस्कृति सीरीज़ आफिस वाराणसी, 1969.

11. संस्कृत साहित्य का नवीन इतिहास, - कृष्ण चैतन्य -
अनुवादक- विनय कुमार राय, चौखम्बा विद्याभवन ,
वाराणसी - 1965.

12. कथा सरित्सागर §प्रथम खण्ड एवं द्वितीय खण्ड§ - अनुवादक
पं० केदारनाथ शर्मा बिहार - राष्ट्रभाषा परिषद
पटना ।

13. वैदिक माइथोलाजी - मैक्डोनल, अनु०- रामकुमार राय,
चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी , 1961

14. कथा सरित्सागर §तृतीय खण्ड§ - अनुवादक - श्री जटा-
शंकर झा, श्री प्रफुल्ल चन्द्र ओझा , राष्ट्रभाषा परिषद पटना

15. मत्स्यपुराण - अनुवादक श्री रामप्रताप त्रिपाठी हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग ।

16. विष्णु पुराण - पं० श्री राम शर्मा आचार्य, संस्कृत संस्थान बरेली . 1967

17. स्कन्द पुराण §प्रथम खण्ड§ - पं० सीताराम शर्मा आचार्य संस्कृत संस्थान 1970.

18. वामनपुराण --द्वितीय खण्ड§ -- पं० सीताराम शर्मा, आचार्य संस्कृत संस्थान बरेली, 1970.

19. वायु महापुराण -- श्री राम प्रताप त्रिपाठी, हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग ।

20. श्रीमद्भागवत महापुराणं --§एकादशस्कन्ध§ श्री भगवत विद्यापीठ, दिव्यगिरि सोला, अहमदाबाद, 1973.

21. प्राचीन भारतीय साहित्य - विण्टरनित्स, अनु0- लाजपत राय सुन्दर लाल जैन, मोती लाल बनारसी दास दिल्ली.

21. इतिहास पुराण का अनुशीलन - श्री रामशंकर भट्टाचार्य इण्डोलाजिकल बुक हाउस वाराणसी 1963

22. शुकसप्तति - चिन्तामणि भट्ट, मोती लाल बनारसी दास दिल्ली, 1959.

23. वैतालपंचविंशति — व्याख्याकार - पं० दामोदर झा साहित्याचार्य चौखम्बा वाराणसी 1968

24. वैदिक साहित्य का इतिहास डा० राजकिशोर सिंह,, विनोद पुस्तक मंदिर आगरा, 1959

25. शिव महापुराण की दार्शनिक कथा धार्मिक समालोचना -- डा० हरिशंकर त्रिपाठी, डा० रमाशंकर त्रिपाठी, वाराणसी, 1976.

26. महाभारतांक (प्रथम खण्ड) द्वितीय खण्ड-2 से 12 2क) संपादक एच० पी० पोद्दार एवं सी० एल० गोस्वामी, गीता प्रेस गोरखपुर ।

27. पुराण- विमर्श -- बलदेव उपाध्याय चौखम्बा भवन वाराणी 1965.

28. पुराण दिग्दर्शन - पं० माधवाचार्य माधो पुस्तकालय देहली ।

29. छन्दोग्योपनिषद -- प्रथम भाग- तथा द्वितीय भाग - प्रो० सत्यव्रत सिद्धान्तलंकार विजयकृष्ण लखन पाल देहरादून ।

30. कथा एकादसी - सम्पादक - विजयपाल सिंह राधकृष्ण प्रकाशन, दरियागंज, दिल्ली । 1976.

31. पुराण -- पत्रिका भाग -7 अंक ।

32. गीताधर्म -- उपनिषद, - वार्षिक विशेषांक गीता प्रेस

बनारस 1950.

33. बुलेटिन आफ दि स्कूल आफ ओरियन्टल स्टडीज एस0

के0 डे0 लन्दन, जिल्द तीन ।

34. भारतीय कहानियों में पर्शियन साहित्य - समीम

अहमद कुरेशी, देहली विश्वविद्यालय 1966.

35. ऐतरेय आरण्यक -- एक अध्ययन -- सुमन शर्मा, दिल्ली

विश्वविद्यालय 1974.

36. शतपथ तथा ऐतरेय ब्राह्मण की कथाओं का आलोकनात्मक

अध्यय— प्रस्तुतकर्ता - डा0 हरिशंकर त्रिपाठी, वरिष्ठ

रीडर संस्कृत विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, 1968.

37. ब्राह्मण साहित्य में उपलब्ध सामाजिक एवं सांस्कृतिक तथ्यों

का समीक्षात्मक अध्ययन - प्रस्तुत कर्त्री डा0 शान्ता वर्मा,

इलाहाबाद विश्वविद्यालय 1968.

38. कथा सरित्सागर तथा भारतीय संस्कृत -- प्रस्तुत कर्ता

सिद्धान्त प्रसाद- प्रयाग विश्वविद्यालय ।

39. पुराणों की अमर कहानियां -- रामप्रताप त्रिपाठी,

साहित्य भवन प्रा० लि०, इलाहाबाद 1957.

40. पुराणों की अमर कहानियां - रामप्रताप त्रिपाठी,

तृतीय भाग - 1961

41. उपनिषदों की कहानियां — रामप्रताप त्रिपाठी, लोक-

भारती प्रकाशन इलाहाबाद, 1970.

42. जातक — प्रथम खण्ड भदन्त आनन्द कौसल्यायन, हिन्दी

साहित्य सम्मेलन, 1941.

43. बलदेव उपाध्याय, -- वैदिक कहानियां, द्वितीय संस्करण 1946

44. पौराणिक धर्म एवं समाज, - सीद्धेश्वरी नारायण राय,

पंचनन्दन पब्लिकेशन, इलाहाबाद प्रथम संस्करण, 1968.

45. भारतीय दर्शन -- उमेश मिश्र.

46. हिन्दी महाभारत - इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद ।

47. इण्डियन फिलासिफी — डा० राधा कृष्णन

48. हिस्ट्री आफ इण्डियन लिटरेचर-- एम० विण्टरनित्स 1963

49. हिस्ट्री आफ संस्कृत लिटरेचर- एस०एन० दास गुप्ता, युनिवर्सिटी

आफ कलकत्ता, 1947

----x----